प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-४

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १०४ वाँ रत्न

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-४

(पद २२-३६)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन

संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

[redacted]

✆ (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९, फेक्स नं. २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, **जोधपुर** © 2626145

२. **शाखा** - श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ,नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**

३. **महाराष्ट्र शाखा** - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. **कर्नाटक शाखा** - श्री सुधर्म जैन पौषधशाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़ चामराजपेट, **बैंगलोर**- १८ © : 25928439

५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७, **बम्बई-२**

६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊसिंग कॉ० सोसायटी ब्लॉक नं. १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)**

७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६**

८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**

९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा (महा.)**

१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** © 327788

११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** © : 25357775

१४. श्री संतोषकुमारजी जैन वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, **कोटा** © : 2360950

मूल्य : ४०-००

तृतीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
मई २००८

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा इसीलिए संसार को अनादि अनंत कहा जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के संबंध में भी समझना चाहिए। जैन धर्म भी अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा। हाँ भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है, अतएव इन क्षेत्रों में समय समय पर धर्म का विच्छेद हो जाता है, पर महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा जैन धर्म लोक की भांति अनादि अनंत एवं शाश्वत है। भरत क्षेत्र ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर भगवंतों के लिए विशेषण आता है, "**आइच्चेसु अहियं पयासयरा**" यानी सूर्य की भांति उनका व्यक्तित्व तेजस्वी होता है वे अपनी ज्ञान रश्मियों से विश्व की आत्माओं को अलौकिक करते हैं। वे साक्षात् ज्ञाता द्रष्टा होते हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर केवलज्ञान केवलदर्शन होने के बाद चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं और वाणी की वागरणा करते हैं। उनकी प्रथम देशना में ही जितने गणधर होने होते हैं उतने हो जाते हैं। तीर्थंकर प्रभु द्वारा बरसाई गई कुसुम रूप वाणी को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गुंथित करते हैं जो द्वादशांगी के रूप में पाट परंपरा से आगे से आगे प्रवाहित होती रहती है।

जैन आगम साहित्य जो वर्तमान में उपलब्ध है, उसके वर्गीकरण पर यदि विचार किया जाय तो वह चार रूप में विद्यमान है - अंग सूत्र, उपांग सूत्र, मूल सूत्र और छेद सूत्र। अंग सूत्र जिसमें दृष्टिवाद जो कि दो पाट तक ही चलता है उसके बाद उसका विच्छेद हो जाता है, इसको छोड़ कर शेष ग्यारह आगमों का (१. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अन्तकृतदशाङ्ग ९. अणुत्तरौपपातिकदशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र) अंग सूत्रों में समावेश माना गया है। इनके रचयिता गणधर भगवंत ही होते हैं। इसके अलावा बारह उपांग (१. औपपातिक २. राजप्रश्नीय ३. जीवाभिगम ४. प्रज्ञापना ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति ७. सूर्य प्रज्ञप्ति ८. निरयावलिका ९. कल्पावतंसिया १०. पुष्पिका ११. पुष्प चूलिका १२. वण्हिदशा) चार मूल (१. उत्तराध्ययन २. दशवैकालिक ३. नंदी सूत्र ४. अनुयोग द्वार) चार छेद (१. दशाश्रुतस्कन्ध २. वृहत्कल्प ३. व्यवहार सूत्र ४. निशीथ सूत्र) और आवश्यक सूत्र। जिनके रचयिता दस पूर्व या इनसे अधिक के ज्ञाता विभिन्न स्थविर भगवंत हैं।

प्रस्तुत पन्नवणा यानी प्रज्ञापना सूत्र जैन आगम साहित्य का चौथा उपांग है। संपूर्ण आगम साहित्य में भगवती और प्रज्ञापना सूत्र का विशेष स्थान है। अंग शास्त्रों में जो स्थान पंचम अंग भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र का है वही स्थान उपांग सूत्रों में प्रज्ञापना सूत्र का है। जिस प्रकार पंचम अंग शास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिए भगवती विशेषण प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार पन्नवणा उपांग सूत्र के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक पद की समाप्ति पर '**पण्णवणाए भगवईए**' कह कर पन्नवणा के लिए "**भगवती**" विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण इस शास्त्र की महत्ता का सूचक है। इतना ही नहीं अनेक आगम पाठों को "**जाव**" आदि शब्दों से संक्षिप्त कर पन्नवणा देखने का संकेत किया है। समवायांग सूत्र के जीव अजीव राशि विभाग में प्रज्ञापना के पहले, छठे, सतरहवें, इक्कीसवें, अट्ठाइसवें, तेतीसवें और पैतीसवें पद देखने की भलावण दी है तो भगवती सूत्र में पन्नवणा सूत्र के मात्र सत्ताईसवें और इकतीसवें पदों को छोड़ कर शेष ३४ पदों की स्थान-स्थान पर विषयपूर्ति कर लेने की भलामण दी गई है। जीवाभिगम सूत्र में प्रथम प्रज्ञापना, दूसरा स्थान, चौथा स्थिति, छठा व्युत्क्रांति तथा अठारहवें कायस्थिति पद की भलावण दी है। विभिन्न आगम साहित्य में पाठों को संक्षिप्त कर इसकी भलावण देने का मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना सूत्र में जिन विषयों की चर्चा की गयी है उन विषयों का इसमें विस्तृत एवं सांगोपांग वर्णन है। इस सूत्र में मुख्यता द्रव्यानुयोग की है। कुछ गणितानुयोग व प्रसंगोपात इतिहास आदि के विषय भी इसमें सम्मिलित है।

'**प्रज्ञा**' शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर हुआ है। जहाँ इसका अर्थ प्रसंगोपात किया गया है। कोषकारों ने प्रज्ञा को बुद्धि कहा है और इसे बुद्धि का पर्यायवाची माना है जबकि आगमकार महर्षि बहिरंग ज्ञान के अर्थ में बुद्धि का प्रयोग करते हैं एवं अंतरंग चेतना शक्ति को जागृत करने वाले ज्ञान को "प्रज्ञा" के अंतर्गत लिया है। वास्तव में यही अर्थ प्रासंगिक एवं सार्थक है। क्योंकि इसमें समाहित सभी विषय जीव की आन्तरिक और बाह्य प्रज्ञा को सूचित करने वाले हैं।

चूंकि प्रज्ञापना सूत्र में जीव अजीव आदि का स्वरूप, इनके रहने के स्थान आदि का व्यवस्थित क्रम से सविस्तार वर्णन है एवं इसके प्रथम पद का नाम प्रज्ञापना होने से इसका नाम '**प्रज्ञापना सूत्र**' उपयुक्त एवं सार्थक है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया कि इस सूत्र में प्रधानता द्रव्यानुयोग की है और द्रव्यानुयोग का विषय अन्य अनुयोगों की अपेक्षा काफी कठिन, गहन एवं दुरुह है इसलिए इस सूत्र की सम्यक् जानकारी विशेष प्रज्ञा संपन्न व्यक्तित्व के गुरु भगवन्तों के सान्निध्य से ही संभव है।

प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालकाचार्य (श्यामाचार्य) माने जाते हैं। इतिहास में तीन कालकाचार्य प्रसिद्ध हैं - १. प्रथम कालकाचार्य जो निगोद व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध है जिनका जन्म वीर नि० सं० २८० दीक्षा वीर निर्वाण सं० ३०० युग प्रधान आचार्य के रूप में वीर नि० सं० ३३५ एवं कालधर्म वीर नि० सं० ३७६ में होने का उल्लेख मिलता है। दूसरे गर्दभिल्लोच्छेदक कालकाचार्य का समय वीर नि० सं० ४५३ के आसपास का है एवं तीसरे कालकाचार्य जिन्होंने संवत्सरी पंचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनायी उनका समय वीर निर्वाण सं० ९९३ के आसपास है। तीनों कालकाचार्यों में प्रथम कालकाचार्य जो श्यामाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं अपने युग के महान् प्रभावक आचार्य हुए। वे ही प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता होने चाहिए। इसके आधार से प्रज्ञापना सूत्र का रचना काल वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ के बीच का ठहरता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी परंपरा में उन्हीं शास्त्रों को आगम रूप में मान्य किया है जो लगभग दस पूर्वी या उससे ऊपर वालों की रचना हो। नंदी सूत्र में वर्णित अंग बाह्य कालिक और उत्कालिक सूत्रों का जो क्रम दिया गया है उसका आधार यदि रचनाकाल माना जाय तो प्रज्ञापना सूत्र की रचना दशवैकालिक, औपपातिक, रायपसेणइ तथा जीवाभिगम सूत्र के बाद एवं नंदी, अनुयोग द्वार के पूर्व हुई है। अनुयोगद्वार के कर्त्ता आर्यरक्षित थे। उनके पूर्व का काल आर्य स्थूलिभद्र तक का काल दश पूर्वधरों का काल रहा है। यह बात इतिहास से सिद्ध है। आर्य श्यामाचार्य इसके मध्य होने वाले युगप्रधान आचार्य हुए। इससे निश्चित हो जाता है कि प्रज्ञापना दशपूर्वधर आर्य श्यामाचार्य की रचना है।

प्रज्ञापना सूत्र उपांग सूत्रों में सबसे बड़ा उत्कालिक सूत्र है। इसकी विषय सामग्री ३६ प्रकरणों में विभक्त है जिन्हें **'पद'** के नाम से संबोधित किया गया है। वे इस प्रकार हैं - १. प्रज्ञापना पद २. स्थान पद ३. अल्पाबहुत्व ४. स्थिति पद ५. पर्याय पद ६. व्युत्क्रांति पद ७. उच्छ्वास पद ८. संज्ञा पद ९. योनि पद १०. चरम पद ११. भाषा पद १२. शरीर पद १३. परिणाम पद १४. कषाय पद १५. इन्द्रिय पद १६. प्रयोग पद १७. लेश्या पद १८. कायस्थिति पद १९. सम्यक्त्व पद २०. अंतक्रिया पद २१. अवगाहना संस्थान पद २२. क्रिया पद २३. कर्मप्रकृति पद २४. कर्मबंध पद २५. कर्म वेद पद २६. कर्मवेद बंध पद २७. कर्मवेद वेद पद २८. आहार पद २९. उपयोग पद ३०. पश्यत्ता पद ३१. संज्ञी पद ३२. संयत पद ३३. अवधि पद ३४. परिचारणा पद ३५. वेदना पद ३६. समुद्घात पद।

आदरणीय रतनलालजी सा. डोशी के समय से ही इस विशिष्ट सूत्रराज के निकालने की संघ की योजना थी, पर किसी न किसी कठिनाई के उपस्थित होते रहने पर इस सूत्रराज का प्रकाशन न हो सका। चिरकाल के बाद अब इसका प्रकाशन संभव हुआ है। संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसके हिन्दी अनुवाद का प्रमुख आधार आचार्यमलयगिरि की संस्कृत टीका एवं मूल पाठ के लिए संघ द्वारा प्रकाशित सुत्तागमे एवं जंबूविजय जी की प्रति का सहारा लिया गया है। टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पारसमलजी चण्डालिया ने किया। इसके बाद उस अनुवाद को मैंने देखा। तत्पश्चात् श्रीमान् हीराचन्द जी पींचा, इसे पंडित रत्न श्री घेवरचन्दजी म. सा. "वीरपुत्र" को पन्द्रहवें पद तक ही सुना पाये कि पं. र. श्री वीरपुत्र जी म. सा. का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद हमारे अनुनय विनय पर पूज्य श्रुतधर जी म. सा. ने पूज्य पंडित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को सुनने की आज्ञा फरमाई तदनुसार सेवाभावी श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी सा. चपलोत सनवाड़ निवासी ने सनवाड़ चातुर्मास में म. सा. को सुनाया। पूज्य गुरु भगवन्तों ने जहाँ भी आवश्यकता समझी संशोधन कराने की महती कृपा की। अतएव संघ पूज्य गुरु भगवन्तों एवं श्रीमान् हीराचन्दजी पींचा तथा श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी चपलोत का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

अवलोकित प्रति का पुनः प्रेस कॉपी तैयार करने से पूर्व हमारे द्वारा अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन में हमारे द्वारा पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गयी फिर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम अनुवाद का विशेष अनुभव नहीं होने से भूलों का रहना स्वाभाविक है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में यदि कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की महती कृपा करावें। प्रस्तुत सूत्र पर विवेचन एवं व्याख्या बहुत विस्तृत होने से इसका कलेवर इतना बढ़ गया कि सामग्री लगभग १६०० पृष्ठ तक पहुँच गयी। पाठक बंधु इस विशद सूत्र का सुगमता से अध्ययन कर सके इसके लिए इस सूत्रराज को चार भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में १ से ३ पद का, दूसरे भाग में ४ से १२ पद का, तीसरे भाग में १३ से २१ पद का और चौथे भाग में २२ से ३६ पद का समावेश है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय **श्री जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबेन शाह** की सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम **अर्द्ध मूल्य** में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अन्तर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

प्रज्ञापना सूत्र की प्रथम आवृत्ति का जून २००२ एवं द्वितीय आवृत्ति सितम्बर २००६ में प्रकाशन किया गया जो अल्प समय में ही अप्राप्य हो गयी। अब इसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण इसके प्रत्येक भाग का **मूल्य मात्र ४०)** ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.) — **संघ सेवक**

दिनांक: २५-५-२००८ — **नेमीचन्द बांठिया**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

प्रज्ञापना सूत्र भाग ४

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	बाईसवां क्रिया पद	**१-४३**
१.	क्रिया भेद-प्रभेद	१
२.	जीवों की सक्रियता अक्रिया	४
३.	अठारह पापों से जीव को लगने वाली क्रियाएं	५
४.	अष्ट विध कर्मबंध आश्रित क्रियाएं	११
५.	एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा क्रियाएं	१२
६.	चौबीस दण्डकों में क्रियाएं	१९
७.	क्रियाओं के परस्पर सहभाव की विचारणा	१९
८.	आयोजिका क्रियाएं	२३
९.	क्रियाओं से स्पृष्ट-अस्पृष्ट की चौभंगी	२४
१०.	पंचविध क्रियाएं और उनके स्वामी	२५
११.	जीव में क्रियाओं का सहभाव	२८
१२.	अठारह पापों से विरमण	३२
१३.	पापों से विरत जीवों के कर्म प्रकृति बंध	३४
१४.	पापों से विरत जीवों के क्रिया भेद	४०
१५.	क्रियाओं का अल्पबहुत्व	४२

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	तेईसवां कर्म प्रकृति पद	
	प्रथम उद्देशक	**४४-६७**
१.	कर्म प्रकृतियों के नाम और अर्थ	४४
२.	कर्म बंध के प्रकार	४७
३.	कर्म बंध के कारण	४९
४.	वेदन की जाने वाली कर्म-प्रकृतियों की गणना	५०
५.	किस कर्म प्रकृति का कितने प्रकार का विपाक है?	५१
६.	कर्मों की मूल एवं उत्तर प्रकृतियां	६८
	१. ज्ञानावरणीय कर्म के भेद	**६९**
	२. दर्शनावरणीय कर्म के भेद	**७०**
	३. वेदनीय कर्म के भेद	**७१**
	४. मोहनीय कर्म के भेद	**७२**
	१. कषाय वेदनीय भेद	७३
	२. नोकषाय वेदनीय भेद	७६
	५. आयुष्य कर्म के भेद	**७६**
	६. नाम कर्म के भेद	**७७**
	१. गति नाम कर्म भेद	७८
	२. जाति नाम कर्म भेद	७८
	३. शरीर नाम कर्म	७९
	४. शरीर अंगोपांग नाम	७९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	५. शरीर बंधन नाम कर्म	८०
	६. शरीर संघात नाम कर्म	८०
	७. संहनन नाम कर्म	८२
	८. संस्थान नाम कर्म	८३
	९. वर्ण नाम कर्म	८४
	१०. गंध नाम कर्म	८४
	११. रस नाम कर्म	८४
	१२. स्पर्श नाम कर्म	८५
	१३. अगुरु लघु नाम कर्म	८५
	१४. आनुपूर्वी नाम कर्म	८६
	१५. शेष नाम कर्म की प्रकृतियाँ- विहायोगति नाम कर्म भेद	८६
	७. गोत्र कर्म के भेद	८९
	८. अंतराय कर्म के भेद	९०
७.	ज्ञानावरणीय कर्म स्थिति अबाधाकाल और निषेक काल	९१
८.	दर्शनावरणीय कर्म स्थिति अबाधाकाल और निषेक काल	९२
९.	वेदनीय कर्म स्थिति अबाधाकाल और निषेक काल	९३
१०.	कषायों और नो कषायों की स्थिति	९४
११.	आयुष्य कर्म की स्थिति	९७
१२.	नाम कर्म के भेदों की स्थिति आदि	९८
१३.	गोत्र कर्म की स्थिति आदि	११०
१४.	अन्तराय कर्म की स्थिति आदि	११०
१५.	एकेन्द्रिय आदि जीवों का कर्म बंध काल	११९
१६.	बेइन्द्रिय जीवों का कर्म बंध काल	१२२
१७.	तेइन्द्रिय जीवों का कर्म बंध काल	१२३
१८.	चउरिन्द्रिय जीवों का कर्म बंध काल	१२४
१९.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का कर्म बंध काल	१२५
२०.	संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का बंध काल	१२७
२१.	ज्ञानावरणीय आदि का जघन्य स्थिति बंधक	१३०
२२.	मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति का बंधक	१३१
२३.	आयुष्य कर्म का जघन्य स्थिकि का बंधक	१३१
२४.	उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले कर्म बंधक	१३३

चौबीसवां कर्म बंध पद १३७-१४५

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	ज्ञानावरणीय आदि कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?	१३०
२.	वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?	१४२
३.	मोहनीय कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?	१४४
४.	आयुष्य कर्म	१४४

पच्चीसवां कर्म बंध पद १४६-१४७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ वेदता है	१४६
२.	वेदनीय कर्म बांधता हुआ	१४६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
छब्बीसवां कर्म वेद बंध पद		**१४८-१५४**
१.	ज्ञानावरणीय आदि कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है	१४८
२.	वेदनीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है	२४१
सत्ताईसवां कर्म वेद वेदक पद		**१५५-१५७**
१.	ज्ञानावरणीय आदि कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है	१५५
२.	वेदनीय आदि कर्म	१५६
अट्ठाईसवां आहार पद		
	प्रथम उद्देशक	**१५८-१८४**
१.	सचित्त आहार द्वार	१५८
२-८.	आहारार्थी आदि द्वार	१५९
९.	एकेन्द्रिय शरीर आदि द्वार	१७९
१०.	लोमाहार द्वार	१८१
११.	मनोभक्षी आहार द्वार	१८२
	द्वितीय उद्देशक	**१८५-२०७**
१२.	आहार द्वार	१८५
१३.	भव्य द्वार	१८७
१४.	संज्ञी द्वार	१८९
१५.	लेश्या द्वार	१९३
१६.	दृष्टि द्वार	१९५
१७.	संयत द्वार	१९६
१८.	कषाय द्वार	१९८
१९.	ज्ञान द्वार	२००
२०.	योग द्वार	२०२
२१.	उपयोग द्वार	२०२
२२.	वेद द्वार	२०३
२३.	शरीर द्वार	२०३
२४.	पर्याप्ति द्वार	२०५
उनतीसवां उपयोग पद		**२०८-२१५**
१.	उपयोग भेद	२०८
२.	साकारोपयोग के भेद	२०८
३.	अनाकारोपयोग के भेद	२०९
४.	नैरयिक आदि में उपयोग	२०९
तीसवां पश्यत्ता पद		**२१६-२२६**
१.	पश्यत्ता के भेद	२१६
२.	साकार पश्यत्ता के भेद	२१६
३.	अनाकार पश्यत्ता के भेद	२१७
४.	नैरयिक आदि में पश्यत्ता	२१८
५.	साकारदर्शी-अनाकारदर्शी	२२०
६.	केवली रत्नप्रभा को आकारों आदि से जानते देखते हैं	२२३
इकतीसवां संज्ञी पद		**२२७-२२९**
१.	संज्ञा परिणाम	२२७
२.	चौबीस दण्डकों में संज्ञी आदि की प्ररूपणा	२२८
बत्तीसवां संयत पद		**२३०-२३२**
१.	संयम परिणाम	२३०
२.	चौबीस दण्डकों में संयत असंयत आदि की प्ररूपणा	२३१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
तेतीसवां अवधि पद		**२३३-२४७**
१.	अर्थाधिकार गाथा	२३३
२.	भेद द्वार	२३३
३.	विषय द्वार	२३४
४.	संस्थान द्वार	२४१
५.	आभ्यंतर द्वार	२४४
६.	देश सर्व अवधि द्वार	२४५
७.	शेष द्वार	२४६
चौतीसवां परिचारणा पद		**२४८-२६३**
१.	अनन्तरागत आहार द्वार	२४८
२.	आभोग अनाभोग आहार द्वार	२५०
३.	पुद्‌गल ज्ञान द्वार	२५१
४.	अध्यवसाय द्वार	२५५
५.	सम्यक्त्व अभिगम द्वार	२५५
६.	परिचारणा द्वार	२५६
७.	अल्प बहुत्व द्वार	२६२
पेतीसवां वेदना पद		**२६४-२७४**
१.	अर्थाधिकार गाथा	२६४
२.	शीत आदि वेदना द्वार	२६५
३.	शारीरिक आदि	२६८
४.	साता आदि	२६९
५.	दुःख आदि	२७०
६.	आभ्युपगमिकी और औप-क्रमिकी के द्वार	२७०
७.	निदा-अनिदा वेदना द्वार	२७१
छत्तीसवां समुद्घात पद		**२७५-३४०**
१.	समुद्‌घात के भेद	२७५
२.	समुद्‌घात काल	२७६
३.	चौबीस दण्डकों में समुद्‌घात	२७७
४.	एकएक जीव के अतीत-अनागत समुद्‌घात	२७९
५.	नैरयिक आदि भावों में वर्तते हुए एक एक जीव के अतीत अनागत समुद्‌घात	२८६
६.	चौबीस दण्डकों में बहुत्व की अपेक्षा अतीत आदि समुद्‌घात	२९८
७.	समवहत और असमवहत जीवों के अल्पबहुत्व	३०३
८.	कषाय समुद्‌घात के भेद	३११
९.	चौबीस दण्डकों में कषाय समुद्‌घात	३११
१०.	छाद्‌मस्थिक समुद्‌घात	३१७
११.	चौबीस दण्डकों में छाद्‌मस्थिक समुद्‌घात	३१८
१२.	वेदना समुद्‌घात आदि से समवहत जीवों के क्षेत्र, काल एवं क्रिया	३२०
१३.	केवलि समुद्‌घात समवहत भावितात्मा अनगार के चरम निर्जरा पुद्‌गल	३२९
१४.	केवली समुद्‌घात क्यों और क्यों नहीं?	३३१
१५.	आवर्जीकरण का समय	३३३
१६.	केवली समुद्‌घात की प्रक्रिया	३३३
१७.	केवली द्वारा योग निरोध का क्रम	३३५
१८.	योग निरोध के बाद सिद्ध होने तक की स्थिति	३३७
१९.	सिद्धों का स्वरूप	३४०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्रीमदार्यश्यामाचार्य विरचित

प्रज्ञापना सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

भाग - ४

बावीसइमं किरियापयं

बाईसवाँ क्रियापद

प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें पद में गति के परिणाम रूप शरीर की अवगाहना आदि का विचार किया गया है। अब इस बाईसवें पद में नरक आदि गति परिणाम रूप परिणत हुई जीवों की प्राणातिपात आदि स्वरूप वाली क्रियाओं का विचार किया जाता है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

क्रिया भेद-प्रभेद

कइ णं भंते! किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तं जहा-काइया १, अहिगरणिया २, पाओसिया ३, पारियावणिया ४, पाणाइवायकिरिया ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रियाएं कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! क्रियाएँ पांच कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - १. कायिकी २. आधिकरणिकी ३. प्राद्वेषिकी ४. पारितापनिकी और ५. प्राणातिपात क्रिया।

विवेचन - कर्मबंध के कारण भूत जीव की चेष्टा-प्रवृत्ति को क्रिया कहते हैं। जो कायिकी आदि पांच प्रकार की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काइया णं भंते! किरिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-अणुवरयकाइया य दुप्पउत्तकाइया य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कायिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - अनुपरतकायिकी और दुष्प्रयुक्तकायिकी।

विवेचन - शरीर आदि प्रमत्त योगों के व्यापार से होने वाली हलन-चलन आदि की क्रिया कायिकी क्रिया कहलाती है। इसके दो भेद हैं - १. अनुपरत कायिकी - विरति के अभाव में असंयमी जीव के शरीर आदि से होने वाली क्रिया और २ दुष्प्रयुक्त कायिकी-अयतना से शारीरिक आदि प्रवृत्ति से होने वाली क्रिया।

अहिगरणिया णं भंते! किरिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-संजोयणाहिगरणिया य णिव्वत्तणाहिगरणिया य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आधिकरणिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - संयोजनाधिकरणिकी और निर्वर्त्तनाधिकरणिकी।

विवेचन - आधिकरणिकी (अहिगरणिया) क्रिया - अनुष्ठान विशेष को अथवा बाह्य शस्त्रादि को अधिकरण कहते हैं। अधिकरण में अथवा अधिकरण से होने वाली क्रिया को आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं। आधिकरणिकी क्रिया के दो भेद हैं-संयोजनाधिकरणिकी (संजोयणा) और निर्वर्तनाधिकरणिकी (निर्वर्तना)। पहले बने हुए शस्त्रादि के पृथक् पृथक् अंगों को जोड़ना संयोजनाधिकरणिकी क्रिया है। नये शस्त्रादि बनाना निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया है । पांच प्रकार का शरीर बनाना भी आधिकरणिकी क्रिया है क्योंकि दुष्प्रयुक्त शरीर भी संसार वृद्धि का कारण है ।

पाओसिया णं भंते! किरिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता। तंजहा-जेणं अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा असुभं मणं संपधारेइ, से त्तं पाओसिया किरिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राद्वेषिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्राद्वेषिकी क्रिया तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - जिससे स्व का, पर का अथवा स्व-पर दोनों का मन अशुभ कर दिया जाता है वह प्राद्वेषिकी क्रिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्राद्वेषिकी (पाउसिया) क्रिया - मत्सरभाव रूप जीव के अकुशल परिणाम विशेष को प्रद्वेष कहते हैं। प्रद्वेष में अथवा प्रद्वेष से होने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है । स्व, पर और उभय के भेद से प्राद्वेषिकी क्रिया तीन प्रकार की हैं । स्व प्राद्वेषिकी - अपनी आत्मा पर प्रद्वेष करना, अकुशल परिणाम रखना। पर प्राद्वेषिकी - दूसरे पर प्रद्वेष करना। उभय प्राद्वेषिकी- अपनी आत्मा पर तथा दूसरे पर प्रद्वेष करना।

पारियावणिया णं भंते! किरिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - जेणं अप्पणो वा परस्स वा तदुभयस्स वा अस्सायं वेयणं उदीरेइ, से त्तं पारियावणिया किरिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पारितापनिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पारितापनिकी क्रिया तीन प्रकार की कही गई है, जैसे कि - जिस प्रकार से स्व के लिए, पर के लिए या स्व-पर दोनों के लिए असाता (दुःखरूप) वेदना उत्पन्न की जाती है, वह तीन प्रकार की पारितापनिकी क्रिया है।

विवेचन - पारितापनिकी (परितावणिया) क्रिया - परिताप का अर्थ है कष्ट देना। परिताप में अथवा परिताप से होने वाली क्रिया पारितापनिकी क्रिया है । पारितापनिकी क्रिया भी स्व, पर और उभय के भेद से तीन प्रकार की है । जैसे - अपनी आत्मा को कष्ट देना, दूसरे को कष्ट देना तथा स्व और पर दोनों को कष्ट देना ।

पाणाइवाय किरिया णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता। तं जहा-जेणं अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा जीवियाओ ववरोवेइ, से त्तं पाणाइवाय किरिया॥ ५८२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणातिपात क्रिया कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणातिपात क्रिया तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - ऐसी क्रिया जिससे स्वयं को, दूसरे को, अथवा स्व-पर दोनों को जीवन से रहित कर दिया जाता है, वह त्रिविध प्राणातिपात क्रिया है।

विवेचन - प्राणातिपातिकी क्रिया - इन्द्रिय आदि प्राण हैं उनका नाश करना अर्थात् प्राणों का घात करना प्राणातिपात है। प्राणातिपात से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया है । अपने प्राणों का घात करना, दूसरे के प्राणों का घात करना तथा स्व और पर दोनों के प्राणों घात करना, इस तरह प्राणातिपातिकी क्रिया भी स्व, पर और तदुभय के भेद से तीन प्रकार की है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवों की सक्रियता-अक्रियता

जीवा णं भंते! किं सकिरिया अकिरिया?

गोयमा! जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि?'

गोयमा! जीवा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य। तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अकिरिया। तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-सेलेसिपडिवण्णगा य असेलेसिपडिवण्णगा य।

तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अकिरिया।

तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते णं सकिरिया, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जीवा सकिरिया वि अकिरिया वि'॥ ५८३॥

कठिन शब्दार्थ - **सकिरिया** - सक्रिय-क्रियाओं से युक्त, **अकिरिया** - अक्रिय-क्रियाओं से रहित, **संसारसमावण्णगा** - संसार समापन्नक-चतुर्गति भ्रमण रूप संसार को प्राप्त, **असंसारसमावण्णगा**-असंसारसमापन्नक-संसारपरिभ्रमण से मुक्त, **सेलेसिपडिवण्णगा** - शैलेशी प्रतिपन्नक-शैलेशी (अयोगी) अवस्था को प्राप्त, **असेलेसिपडिवण्णगा** - अशैलेशी प्रतिपन्नक-शैलेशी अवस्था से रहित।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जीव सक्रिय (क्रिया-युक्त) होते हैं, अथवा अक्रिय (क्रिया रहित) होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव सक्रिय भी होते हैं और अक्रिय भी होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जीव सक्रिय भी होते हैं और अक्रिय भी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वह इस प्रकार है - संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक। उनमें से जो असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध जीव हैं। सिद्ध अक्रिय होते हैं और उनमें से जो संसारसमापन्नक हैं, वे भी दो प्रकार के हैं - शैलेशीप्रतिपन्नक और अशैलेशीप्रतिपन्नक। उनमें से जो शैलेशी-प्रतिपन्नक होते हैं, वे अक्रिय हैं और जो अशैलेशी-प्रतिपन्नक होते हैं, वे सक्रिय होते हैं। हे गौतम! इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि जीव सक्रिय भी हैं और अक्रिय भी हैं।

विवेचन - सिद्ध जीव शरीर एवं मनोवृत्ति आदि से रहित होने के कारण अक्रिय-क्रिया रहित होते हैं और शैलेशीप्रतिपन्नकों के सूक्ष्म व बादर मन, वचन और काया के योगों का निरोध हो जाने के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण वे अक्रिय कहलाते हैं। जबकि अशैलेशी प्रतिपन्नकों के योगों का निरोध नहीं होने के कारण वे सक्रिय कहलाते हैं।

अठारह पापों से जीव को लगने वाली क्रियाएं

अत्थि णं भंते! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ?

हंता गोयमा! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! छसु जीवणिकाएसु।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीवों को प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया लगती है?

उत्तर - हाँ गौतम! प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया लगती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस विषय में जीवों को प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया लगती है?

उत्तर - हे गौतम! छह जीवनिकायों के विषय में प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया लगती है।

विवेचन - जीवों को प्राणातिपात के अध्यवसाय (परिणाम) से प्राणातिपात क्रिया लगती है। यह कथन ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से किया गया है। ऋजु सूत्र नय के मत से हिंसा के परिणाम के समय ही प्राणातिपात क्रिया कही जाती है किन्तु अन्य प्रकार के परिणाम हो तब प्राणातिपात क्रिया नहीं कही जाती है क्योंकि पुण्य और पाप कर्म का उपादान (ग्रहण) और अनुपादान (अग्रहण) अध्यवसाय के अनुसार ही होता है। अतः भगवान् ने भी इस का उत्तर ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ही दिया है कि प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया होती है। क्योंकि - **'परिणामियं पमाणं निच्छय मवलंबमाणाणं'** निश्चय नय का अवलम्बन लेने वालों के लिए परिणाम प्रमाण भूत है - ऐसा आगम वचन है। इसी वचन के अनुसार आवश्यक में भी यह सूत्र है - **"आया चेव अहिंसा, आया हिंस त्ति निच्छओ एस"** - आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है - यह निश्चय नय का वचन है। अतः यह कहा गया है कि प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया होती है।

प्राणातिपात क्रिया किस विषय में होती है? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि प्राणातिपात क्रिया छह जीव निकाय के विषय में होती है क्योंकि मारने का परिणाम जीव के विषय में ही होता है, अजीव के विषय में नहीं। रस्सी आदि में सर्पादि की बुद्धि से जो मारने का विचार होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह भी 'यह सर्प है' इस बुद्धि से प्रवृत्ति होने से जीव विषयक ही है, इसीलिए कहा गया है कि प्राणातिपात क्रिया छह जीवनिकाय के विषय में होती है।

अत्थि णं भंते! णेरइयाणं पाणाइवाएणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिकों को प्राणातिपात के अध्यवसाय से प्राणातिपात क्रिया लगती है?

उत्तर - हाँ गौतम! ऐसा पूर्ववत् ही कह देना चाहिए।

एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिकों के आलाप के समान नैरयिकों से लेकर निरन्तर वैमानिकों तक का आलापक कहना चाहिए।

अत्थि णं भंते! जीवाणं मुसावाएणं किरिया कज्जइ?

हंता! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाणं मुसावाएणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! सव्वदव्वेसु।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीवों को मृषावाद के अध्यवसाय से मृषावाद क्रिया लगती है?

उत्तर - हाँ गौतम! मृषावाद के अध्यवसाय से मृषावाद क्रिया लगती है।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! किस विषय में मृषावाद के अध्यवसाय से मृषावाद क्रिया लगती है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वद्रव्यों के विषय में मृषावाद क्रिया लगती है।

विवेचन - सत् का अपलाप और असत् की प्ररूपणा करना मृषावाद है और मृषावाद लोकालोक में रही हुई सभी वस्तुओं के विषय में संभव होने से '**सव्वदव्वेसु**' कहा गया है। द्रव्य का ग्रहण पर्याय का सूचक होने से सभी पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

एवं णिरंतरं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्वोक्त कथन के समान नैरयिकों से लेकर लगातार वैमानिकों तक का कथन करना चाहिए।

अत्थि णं भंते! जीवाणं अदिण्णादाणेणं किरिया कज्जइ? हंता! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाणं अदिण्णादाणेणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु - ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों के विषय में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीवों को अदत्तादान के अध्यवसाय से अदत्तादान क्रिया लगती है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रहण और धारण करने योग्य द्रव्यों के विषय में यह क्रिया होती है।

एवं णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार समुच्चय जीवों के आलापक के समान नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक की अदत्तादान क्रिया का कथन करना चाहिए।

विवेचन - जो वस्तु ग्रहण या धारण की जा सकती है उसका ही आदान-ग्रहण होता है शेष का आदान नहीं होता। अतः उपरोक्त सूत्र में '**गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु**' अदत्तादान क्रिया ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों के विषय में होती है, ऐसा कहा गया है।

अत्थि णं भंते! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ?

हंता! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाणं मेहुणेणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु।

कठिन शब्दार्थ - रूवसहगएसु - रूप सहगत के विषय में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीवों को मैथुन के अध्यवसाय से मैथुन क्रिया लगती है?

उत्तर - हाँ गौतम! मैथुन के अध्यवसाय से मैथुन क्रिया लगती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस विषय में जीवों के मैथुन के अध्यवसाय से मैथुन क्रिया लगती है?

उत्तर - हे गौतम! रूपों अथवा रूपसहगत स्त्री आदि द्रव्यों के विषय में यह क्रिया लगती है।

एवं णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार समुच्चय जीवों के मैथुन क्रिया विषयक आलापकों के समान नैरयिकों से लेकर निरन्तर लगातार वैमानिकों तक मैथुन क्रिया के आलापक कहने चाहिए।

विवेचन - मैथुन का विचार चित्र, लेप और काष्ठ आदि के बनाये हुए रूपों में और रूप सहित स्त्री आदि में होता है इसलिए उपरोक्त सूत्र में "**रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु**" मैथुन क्रिया रूपों और रूप सहित द्रव्यों में होती है, ऐसा कहा गया है।

अत्थि णं भंते! जीवाणं परिग्गहेणं किरिया कज्जइ?

हंता! अत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम्हि णं भंते! जीवाणं परिग्गहेणं किरिया कज्जइ?

गोयमा! सव्वदव्वेसु।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! क्या जीवों के परिग्रह के अध्यवसाय से परिग्रह क्रिया लगती है?

उत्तर - हाँ गौतम! जीवों के परिग्रह के अध्यवसाय से परिग्रह क्रिया लगती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस विषय में जीवों के परिग्रह के अध्यवसाय से परिग्रह क्रिया लगती है?

उत्तर - हे गौतम! समस्त द्रव्यों के विषय में यह क्रिया लगती है।

एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी तरह समुच्चय जीवों के परिग्रह क्रिया विषयक आलापकों के समान नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक परिग्रह क्रिया विषयक आलापक कहने चाहिए।

विवेचन - स्वत्व या स्वामित्व भाव से मूर्च्छा होने को परिग्रह कहते हैं और परिग्रह प्राणियों को अतिशय लोभ के कारण सभी वस्तुओं के विषय में होता है। अतः उपरोक्त सूत्र में '**सव्वदव्वेसु**' - परिग्रह क्रिया सभी द्रव्यों के विषय में होती है, ऐसा कहा गया है।

एवं कोहेणं माणेणं मायाए लोभेणं पेज्जेणं दोसेणं कलहेणं अब्भक्खाणेणं पेसुण्णेणं परपरिवाएणं अरइरईए मायामोसेणं मिच्छादंसणसल्लेणं। सव्वेसु जीवणेरइयभेएणं भाणियव्वा णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ति, एवं अट्ठारस एए दंडगा १८॥ ५८४॥

भावार्थ - इसी प्रकार क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, परपरिवाद से, अरति-रति से, मायामृषा से एवं मिथ्यादर्शनशल्य के अध्यवसाय से लगने वाली क्रोधादि क्रियाओं के विषय में पूर्ववत् समस्त समुच्चय जीवों तथा नैरयिकों के भेदों से लेकर लगातार वैमानिकों तक के क्रोधादि क्रिया विषयक आलापक कहने चाहिए। इस प्रकार ये अठारह पापस्थानों के अध्यवसाय से लगने वाली क्रियाओं के अठारह दण्डक (आलापक) हुए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अठारह पापस्थानों से लगने वाली क्रियाओं और उसके विषयों की प्ररूपणा की गयी है।

जीवे णं भंते! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक जीव प्राणातिपात के अध्यवसाय से कितनी कर्म प्रकृतियाँ बाँधता है?

उत्तर - हे गौतम! एक जीव प्राणातिपात से सात अथवा आठ कर्म प्रकृतियाँ बांधता है।

एवं णेरइए जाव णिरंतरं वेमाणिए।

भावार्थ - इसी प्रकार एक नैरयिक से लेकर एक वैमानिक देव तक के प्राणातिपात के अध्यवसाय से होने वाली कर्म प्रकृतियों के बन्ध का कथन करना चाहिए।

विवेचन - जब आयुष्य कर्म का बन्ध नहीं होता तब जीव सात कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है और जब आयुष्य का बन्ध करता है तब जीव आठों कर्म प्रकृतियाँ बांधता है।

जीवा णं भंते! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक जीव प्राणातिपात से कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक जीव प्राणातिपात से सप्तविध कर्म प्रकृतियाँ भी बांधते हैं और अष्टविध कर्म प्रकृतियाँ भी बांधते हैं।

विवेचन - बहुवचन में अनेक जीवों के बंध के विचार में सामान्य रूप से जीव पद की अपेक्षा सात प्रकृतियों का बंध करने वाले और आठ प्रकृतियों का बन्ध करने वाले बहुत जीव होते हैं अतः दोनों स्थानों पर बहुवचन रूप एक ही भंग होता है।

णेरइया णं भंते! पाणाइवाएणं कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक प्राणातिपात से कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नैरयिक सप्तविध कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं अथवा अनेक नैरयिक सप्तविध कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं और एक नैरयिक अष्टविध कर्म बन्धक होता है, अथवा अनेक नैरयिक सप्तविध कर्मबन्धक होते हैं और अनेक अष्टविध कर्मबन्धक भी होते हैं।

विवेचन - नैरयिकों में सात प्रकृतियों का बन्ध करने वाले अवस्थित ही होते हैं क्योंकि हिंसादि परिणाम वाले बहुत जीवों को सदैव सात प्रकृतियों का बन्ध अवश्य होता है इसलिए जब एक भी नैरयिक आठ प्रकृतियों को बांधने वाला नहीं होता है तब "सभी नैरयिक सात प्रकृतियाँ बांधने वाले होते हैं" - यह एक भंग होता है। जब एक नैरयिक आठ प्रकृतियाँ बांधने वाला होता है और शेष सभी सात प्रकृतियाँ बांधने वाले होते हैं तब "अनेक नैरयिक सात प्रकृतियों को बांधने वाले और एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिक आठ प्रकृतियों का बंधक" - यह दूसरा भंग होता है। जब आठ प्रकृतियों को बांधने वाले बहुत जीव होते हैं तब दोनों स्थानों पर बहुवचन रूप 'अनेक नैरयिक सात प्रकृतियों को बांधने वाले और अनेक आठ प्रकृतियों को बांधने वाले' - यह तीसरा भंग होता है।

एवं असुरकुमार वि जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमार तक के प्राणातिपात के अध्यवसाय से होने वाले कर्म-प्रकृतिबन्ध के तीन-तीन भंग समझने चाहिए।

विवेचन - नैरयिकों की तरह असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति देवों के विषय में भी इस प्रकार तीन-तीन भंग समझने चाहिये - १. अनेक देव सात प्रकृतियों के बंधक २. अनेक देव सात प्रकृतियों के बंधक और एक देव आठ प्रकृतियों का बंधक ३. अनेक देव सात प्रकृतियों के बंधक और अनेक देव आठ प्रकृतियों के बंधक।

पुढवि आउ तेउ वाउ वणस्सइ काइया य एए सव्वे वि जहा ओहिया जीवा।

भावार्थ - पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति कायिक जीवों के प्राणातिपात से होने वाले कर्मप्रकृतिबन्ध के विषय में औघिक (सामान्य) अनेक जीवों के कर्मप्रकृतिबन्ध के समान कहना चाहिए।

अवसेसा जहा णेरइया।

भावार्थ - अवशिष्ट समस्त जीवों (वैमानिकों तक) के, प्राणातिपात से होने वाले कर्मप्रकृतिबन्ध के विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

एवं ते जीवेगिंदियवज्जा तिण्णि तिण्णि भंगा सव्वत्थ भाणियव्वत्ति जाव मिच्छादंसणसल्ले।

भावार्थ - इस प्रकार समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष दण्डकों के जीवों के प्रत्येक के तीन-तीन भंग सर्वत्र कहने चाहिए तथा मृषावाद से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक के अध्यवसायों से होने वाले कर्मबन्ध का भी कथन करना चाहिए।

एवं एगत्तपोहत्तिया छत्तीसं दंडगा होंति॥ ५८५॥

भावार्थ - इस प्रकार एकत्व (एक वचन) और पृथक्त्व (बहुवचन) को लेकर छत्तीस दण्डक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्राणातिपात आदि क्रियाओं से होने वाले कर्म प्रकृति बंध का निरूपण किया गया है। जिस प्रकार सामान्य जीवों के विषय में कहा उसी प्रकार पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय के विषय में कहना यानी दोनों स्थानों पर बहुवचन की अपेक्षा एक ही भंग कहना क्योंकि हिंसा के परिणाम वाले पृथ्वीकायिक आदि जीव सात प्रकृतियों का बंध करने वाले या आठ प्रकृतियों

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

का बंध करने वाले सदैव बहुत होते हैं। शेष बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों के विषय में नैरयिकों की तरह तीन-तीन भंग कहना चाहिये। जिस प्रकार प्राणातिपात के एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा दो दण्डक कहे उसी प्रकार सभी पापस्थानों के एक वचन और बहुवचन के भेद से प्रत्येक के दो-दो दण्डक होने से अठारह पापस्थानकों के कुल १८×२=३६ दण्डक होते हैं।

यहाँ पर जो प्राणातिपात से कर्म प्रकृतियों का बन्ध एवं क्रिया की पृच्छाएं की गई है। वे प्रमत्त अवस्था की ही समझनी चाहिए।

अष्टविध कर्मबंध आश्रित क्रियाएं

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ कायिकी आदि पांच क्रियाओं में से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! वह कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

भावार्थ - इसी प्रकार एक नैरयिक से लेकर यावत् एक वैमानिक तक के आलापक कहने चाहिए।

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइकिरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए, कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे तीन क्रियाओं वाले, चार क्रियाओं वाले और पांच क्रियाओं वाले भी होते हैं।

एवं णेरइया णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - इस प्रकार (सामान्य अनेक जीवों के आलापक के समान) नैरयिकों से लेकर लगातार वैमानिकों तक के आलापक कहने चाहिए।

एवं दरिसणावरणिज्जं वेयणिज्जं मोहणिज्जं आउयं णामं गोत्तं अंतराइयं च अट्ठविहकम्मपगडीओ भाणियव्वाओ, एगत्त पोहत्तिया सोलस दंडगा भवंति॥ ५८६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ज्ञानावरणीय कर्म के समान दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठों प्रकार की कर्म प्रकृतियों को बांधता हुआ एक जीव या एक नैरयिक से यावत् वैमानिक अथवा बांधते हुए अनेक जीवों या अनेक नैरयिकों से यावत् वैमानिकों को लगने वाली क्रियाओं के आलापक कहने चाहिए। एकत्व और पृथक्त्व के आश्रयी कुल सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव प्राणातिपात आदि से ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधते हुए कितनी क्रियाओं वाला होता है इसकी प्ररूपणा की गयी है। जब तीन क्रियाओं वाला होता है तब कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया होती है। कायिकी से हाथ, पैर आदि अवयवों की प्रवृत्ति आधिकरणिकी से खड्ग (तलवार) आदि को तेज या ठीक कर के रखना और प्राद्वेषिकी से 'उसे मारूँ' इस प्रकार मन में अशुभ विचार करता है। जब वह चार क्रियाओं वाला होता है तब कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी क्रिया से युक्त होता है। पारितापनिकी अर्थात् तलवार आदि से प्रहार कर पीड़ा पहुँचाना। जब वह पांच क्रियाओं वाला होता है तब पूर्वोक्त चार के अलावा पांचवीं प्राणातिपातिकी से भी युक्त हो जाता है। प्राणातिपातिकी क्रिया अर्थात् जीवन से रहित करना। ज्ञानावरणीय कर्म बांधने वाले जीव सदैव बहुत होते हैं अतः तीन क्रिया वाले, चार क्रिया वाले और पांच क्रिया वाले भी बहुत होते हैं। इस प्रकार एक जीव, एक नैरयिक आदि तथा अनेक जीव या अनेक नैरयिक आदि चौबीस दण्डकों के जीवों को लेकर क्रियाओं का कथन किया गया है।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के एक जीव और अनेक जीव की अपेक्षा दो दण्डक कहे हैं उसी प्रकार दर्शनावरणीय आदि शेष कर्मों के भी प्रत्येक के दो-दो दण्डक कहने चाहिये। इस प्रकार कुल ८×२=१६ दण्डक होते हैं।

एक जीव और बहुत जीव की अपेक्षा क्रियाएं

जीवे णं भंते! जीवाओ कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक जीव, एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक जीव, एक जीव की अपेक्षा कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला, कदाचित् पांच क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय (क्रिया रहित) होता है।

जीवे णं भंते! णेरइयाओ कइकिरिए ?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक जीव, एक नैरयिक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक जीव, एक नैरयिक की अपेक्षा कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय होता है।

एवं जाव थणियकुमाराओ।

भावार्थ - पूर्वोक्त एक जीव की एक नैरयिक की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान एक जीव की, एक असुरकुमार से लेकर एक स्तनितकुमार की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।

पुढविकाइयाओ आउक्काइयाओ तेउक्काइयाओ वाउक्काइय वणस्सइकाइय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्साओ जहा जीवाओ।

भावार्थ- एक जीव का एक पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यंच योनिक एवं एक मनुष्य की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक एक जीव की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाओ जहा णेरइयाओ।

भावार्थ - इसी तरह एक जीव का एक वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक की अपेक्षा क्रिया सम्बन्धी आलापक एक नैरयिक की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक जीव के दूसरे जीव की अपेक्षा लगने वाली क्रियाओं की प्ररूपणा की गयी है। पूर्व जन्म के शरीर का ममत्व नहीं छोड़ने के कारण जीव को कायिकी आदि क्रियाएं इस प्रकार लगती है-अतीतभव की अपेक्षा उसके शरीर के अथवा शरीर के एक भाग का उपयोग होने से कायिकी क्रिया लगती है। उसके पूर्व जन्म के शरीर से जोड़े हुए अथवा तैयार किये हुए हल, कूटयंत्र आदि अथवा उससे बनाये हुए तलवार, भाला आदि का दूसरों के घात के लिए उपयोग किये जाने से अथवा शरीर भी अधिकरण है इसलिए आधिकरणिकी क्रिया लगती है। पूर्वजन्म के शरीर संबंधी अशुभ परिणामों का प्रत्याख्यान-त्याग नहीं किया होने से प्राद्वेषिकी क्रिया भी लगती है। कदाचित् पारितापनिकी क्रिया होने से जीव चार क्रियाओं वाला होता है क्योंकि उसके शरीर से या शरीर के एक भाग रूप अधिकरण से परिताप दिया जाता है। जब पूर्वजन्मगत शरीर से दूसरे का घात कर दिया जाता है तो प्राणातिपातिकी क्रिया लगने से जीव कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है। जब जीव पूर्व जन्म के शरीर का तीन करण तीन योग से त्याग कर देता है तब वह अक्रिय होता है। यह अक्रियता मनुष्य की अपेक्षा से ही समझनी चाहिये क्योंकि मनुष्य ही सर्वविरति हो सकता है। अथवा सिद्धों की अपेक्षा अक्रियता समझनी चाहिये क्योंकि शरीर और मनोवृत्ति के अभाव में सिद्ध जीव अक्रिय होते हैं।

देवों और नैरयिकों की अपेक्षा जीव चार क्रियाओं वाला ही होता है क्योंकि किसी भी कारण से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनके जीवन का घात संभव नहीं है। '**अनपवर्त्यायुषो नारक देवाः**' - देव और नैरयिक अनपवर्तनीय आयुष्य वाले होते हैं - ऐसा शास्त्र वचन है। शेष संख्यात वर्ष की आयुष्य वालों की अपेक्षा जीव पांच क्रियाओं वाला होता है क्योंकि उनका अपवर्तनीय आयुष्य होने से उनका जीवन से वियोग संभव है। इस प्रकार एक जीव की एक जीव की अपेक्षा लगने वाली क्रियाएँ कही गयी है। अब बहुत जीवों की अपेक्षा एक जीव की क्रियाओं का विचार किया जाता है।

जीवे णं भंते! जीवेहिंतो कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक जीव, अनेक जीवों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला, कदाचित् पांच क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय होता है।

जीवे णं भंते! णेरइएहिंतो कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए एवं जहेव पढमो दंडओ तहा एसो बिइओ भाणियव्वो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक जीव, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक जीव अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् अक्रिय होता है। इस प्रकार जैसा प्रथम दंडक है वैसे ही यह द्वितीय दंडक भी कहना चाहिए।

जीवा णं भंते! जीवाओ कइकिरिया?

गोयमा! सिय तिकिरिया वि, सिय चउकिरिया वि, सिय पंचकिरिया वि, सिय अकिरिया वि।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अनेक जीव एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक जीव एक जीव की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाले, कदाचित् चार क्रियाओं वाले, कदाचित् पांच क्रियाओं वाले भी और कदाचित् अक्रिय होते हैं।

जीवा णं भंते! णेरइयाओ कइकिरिया?

गोयमा! जहेव आइल्ल दंडओ तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियत्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अनेक जीव, एक नैरयिक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार प्रारम्भिक दण्डक में कहा गया था, उसी प्रकार से यह दण्डक भी वैमानिक तक कहना चाहिए।

जीवा णं भंते! जीवेहिंतो कइकिरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक जीव, अनेक जीवों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक जीव अनेक जीवों की अपेक्षा से तीन क्रियाओं वाले भी होते हैं, चार क्रियाओं वाले भी, पांच क्रियाओं वाले भी और अक्रिय भी होते हैं।

जीवा णं भंते! णेरइएहिंतो कइकिरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, अकिरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक जीव, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक जीव अनेक जीवों की अपेक्षा से तीन क्रियाओं वाले भी होते हैं, चार क्रियाओं वाले भी और अक्रिय भी होते हैं।

असुरकुमारेहिंतो वि एवं चेव जाव वेमाणिएहिंतो, ओरालिय सरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो।

भावार्थ - इसी प्रकार अनेक जीवों के अनेक असुरकुमारों से लेकर यावत् अनेक वैमानिकों की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि अनेक औदारिक शरीरधारकों (पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्यों) की अपेक्षा से जब क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने हों, तब जीवों की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

णेरइए णं भंते! जीवाओ कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रिया वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइए णं भंते! णेरइयाओ कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक एक नैरयिक की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक एक नैरयिक की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाला और कदाचित् चार क्रियाओं वाला होता है।

एवं जाव वेमाणियाओ। णवरं ओरालिय सरीराओ जहा जीवाओ।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्वोक्त आलापक के समान एक असुरकुमार से लेकर यावत् एक वैमानिक की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि एक औदारिक शरीर धारक जीव की अपेक्षा से जब क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने हों, तब जीव की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

णेरइए णं भंते! जीवेहिंतो कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक अनेक जीवों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक अनेक जीवों की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाला, कदाचित् चार क्रियाओं वाला और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए। एवं जहेव पढमो दंडओ तहा एसो वि बिइओ भाणियव्वो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाला और कदाचित् चार क्रियाओं वाला होता है। इस प्रकार जैसा प्रथम दण्डक कहा है उसी प्रकार यह द्वितीय दण्डक भी कहना चाहिए।

एवं जाव वेमाणिएहिंतो, णवरं णेरइयस्स णेरइएहिंतो देवेहिंतो य पंचमा किरिया णत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् अनेक वैमानिकों की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि एक नैरयिक के अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक में पंचम क्रिया नहीं होती है।

णेरइया णं भंते! जीवाओ कइकिरिया?

गोयमा! सिय तिकिरिया, सिय चउकिरिया, सिय पंचकिरिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक एक जीव की अपेक्षा से कदाचित् तीन क्रियाओं वाले, कदाचित् चार क्रियाओं वाले और कदाचित् पांच क्रियाओं वाले होते हैं।

एवं जाव वेमाणियाओ, णवरं णेरइयाओ देवाओ य पंचमा किरिया णत्थि।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्वोक्त आलापक के समान एक असुरकुमार से ले कर यावत् एक वैमानिक की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि एक नैरयिक या एक देव की अपेक्षा से क्रिया सम्बन्धी आलापक में पंचम क्रिया नहीं होती।

विवेचन - नैरयिक एवं देवों को निरूपक्रमिक आयुष्य वाले तिर्यंच एवं मनुष्य से भी पंचमक्रिया (प्राणातिपातिकी) नहीं लगती है।

णेरइया णं भंते! जीवेहिंतो कइकिरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक अनेक जीवों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक अनेक जीवों की अपेक्षा से तीन क्रियाओं वाले भी होते हैं, चार क्रियाओं वाले भी होते हैं और पांच क्रियाओं वाले भी होते हैं।

णेरइया णं भंते! णेरइएहिंतो कइकिरिया ?

गोयमा! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक, अनेक नैरयिकों की अपेक्षा से तीन क्रियाओं वाले भी होते हैं और चार क्रियाओं वाले भी होते हैं।

एवं जाव वेमाणिएहिंतो, णवरं ओरालिय सरीरेहिंतो जहा जीवेहिंतो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार अनेक असुरकुमारों से लेकर अनेक वैमानिकों की अपेक्षा से, क्रियासम्बन्धी आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि अनेक औदारिक शरीरधारी जीवों की अपेक्षा से, क्रिया सम्बन्धी आलापक जीवों के क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान कहने चाहिए।

असुरकुमारे णं भंते! जीवाओ कइकिरिए?

गोयमा! जहेव णेरइए चत्तारि दंडगा तहेव असुरकुमारे वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, एवं च उवउज्जिऊणं भावेयव्वं ति। जीवे मणूसे य अकिरिए वुच्चइ, सेसा अकिरिया ण वुच्चंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक असुरकुमार, एक जीव की अपेक्षा से कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे नैरयिक की अपेक्षा से क्रियासम्बन्धी चार दण्डक कहे गए हैं, वैसे ही एक असुरकुमार की अपेक्षा से भी क्रिया सम्बन्धी चार दण्डक कहने चाहिए।

इस प्रकार का उपयोग लगाकर विचार कर लेना चाहिए कि एक जीव और एक मनुष्य ही अक्रिय कहा जाता है, शेष सभी जीव अक्रिय नहीं कहे जाते। सर्व जीव, औदारिक शरीरधारी अनेक जीवों की अपेक्षा से-पांच क्रिया वाले होते हैं। नैरयिकों और देवों की अपेक्षा से पांच क्रियाओं वाले नहीं कहे जाते।

एवं एक्केक्क जीवपए चत्तारि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा एवं एयं दंडगसयं सव्वे वि य जीवाईया दंडगा॥ ५८७॥

भावार्थ - इस प्रकार एक-एक जीव के पद में चार-चार दण्डक कहने चाहिए। यों कुल मिलाकर सौ दण्डक होते हैं। ये सब एक जीव आदि से सम्बन्धित दण्डक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीवों को दूसरे जीवों की अपेक्षा लगने वाली क्रियाओं का कथन किया गया है। जैसे नैरयिक पद में चार दण्डक कहे हैं उसी प्रकार शेष असुरकुमार आदि तेइस दंडकों में भी चार चार दण्डक कहने चाहिये किन्तु जीव पद और मनुष्य पद में क्रिया रहित भी होते हैं ऐसा कहना चाहिए। विरति में शरीर को वोसिरा देने के कारण शरीर निमित्तक क्रियाएं असंभव है। शेष जीव अक्रिय नहीं होते क्योंकि विरति के अभाव में भवान्तर के शरीर को नहीं वोसिराने के कारण क्रिया लगती है। इस प्रकार सामान्यतया जीव पद में एक दण्डक और नैरयिक आदि के २४ दण्डक ये कुल मिला कर २५ दण्डक हुए। फिर एक एक पद के चार-चार दण्डक (एक जीव, अनेक जीव, एक नैरयिक, अनेक नैरयिक) हुए। इस प्रकार कुल मिला कर २५×४=१०० दण्डक हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस दण्डकों में क्रियाएं

कइ णं भंते! किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तंजहा-काइया जाव पाणाइवाय किरिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रियाएं कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! क्रियाएँ पांच कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - कायिकी यावत् प्राणातिपातक्रिया।

णेरइयाणं भंते! कइ करियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तंजहा-काइया जाव पाणाइवाय किरिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितनी क्रियाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों में पांच क्रियाएं कही गई हैं वे इस प्रकार है - कायिकी यावत् प्राणातिपातक्रिया।

एवं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार का क्रिया सम्बन्धी कथन असुरकुमार से लेकर वैमानिकों के सम्बन्ध में करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि किस जीव को कितनी क्रियाएं होती हैं? समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक में पांच क्रियाएं पाई जाती हैं।

क्रियाओं के परस्पर सहभाव की विचारणा

जस्स णं भंते! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया णियमा कज्जइ, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स वि काइया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, क्या उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है? तथा जिस जीव के आधिकरणिकी क्रिया होती है, क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, उसके नियम से आधिकरणिकी क्रिया होती है और जिसके आधिकरणिकी क्रिया होती है, उसके भी नियम से कायिकी क्रिया होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जस्स णं भंते! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पाओसिया किरिया कज्जइ, जस्स पाओसिया किरिया कज्जइ तस्स काइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है क्या उसके प्राद्वेषिकी क्रिया होती है? और जिसके प्राद्वेषिकी क्रिया होती है, क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार पूर्ववत् दोनों परस्पर नियम से समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन क्रियाओं का एक जीव की अपेक्षा परस्पर नियत संबंध बताया गया है। प्रारम्भ की तीन क्रियाएं जीव में नियम से परस्पर सहभाव रूप में (एक साथ) रहती है तीनों क्रियाओं का परस्पर नियत संबंध इस प्रकार है - शरीर अधिकरण है। काय अधिकरण होने से जहाँ कायिकी क्रिया होती है वहाँ आधिकरणिकी क्रिया अवश्य होती है और जहाँ आधिकरणिकी होती है वहाँ कायिकी अवश्य होती है। विशिष्ट कायिकी क्रिया प्रद्वेष के बिना नहीं होती अतः प्राद्वेषिकी क्रिया के साथ भी उनका परस्पर नियत संबंध है क्योंकि प्रद्वेष के चिह्न शरीर पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं कहा भी है -

"रूक्षयति रुष्यतो ननु वक्त्रं स्निह्यति रज्यतः पुंसः।
औदारिकोऽपि देहो भाववशात् परिणमत्येवम्।"

- क्रोधित होने वाला का मुंह सूख जाता है और स्नेह करने वाले पुरुष का चेहरा स्निग्ध होता है। इस प्रकार औदारिक शरीर भी भावों के वश इस प्रकार परिणमता है। अतः कायिकी के साथ प्राद्वेषिकी क्रिया प्रत्यक्ष देखी जाती है।

जस्स णं भंते! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ, जस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, क्या उसके पारितापनिकी क्रिया होती है? तथा जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है, क्या उसके कायिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, उसके पारितापनिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है, किन्तु जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है, उसके कायिकी क्रिया नियम से होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं पाणाइवायकिरिया वि।

भावार्थ - पारितापनिकी और कायिकी क्रिया के परस्पर सहभाव-कथन के समान प्राणातिपात क्रिया और कायिकी क्रिया का परस्पर सहभाव-कथन भी कहना चाहिए।

एवं आइल्लाओ परोप्परं णियमा तिण्णि कज्जंति। जस्स आइल्लाओ तिण्णि कज्जंति तस्स उवरिल्लाओ दोण्णि सिय कज्जंति, सिय णो कज्जंति, जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति तस्स आइल्लाओ णियमा तिण्णि कज्जंति।

भावार्थ - इस प्रकार प्रारम्भ की तीन क्रियाओं का परस्पर सहभाव नियम से होता है। जिसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएँ होती हैं, उसके आगे की दो क्रियाएं पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया कदाचित् होती हैं, कदाचित् नहीं होती हैं परन्तु जिसके आगे की दो क्रियाएं होती हैं, उसके प्रारम्भ की तीन क्रियाएं कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी नियम से होती हैं।

जस्स णं भंते! जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स पाणाइवाय किरिया कज्जइ, जस्स पाणाइवाय किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स पाणाइवाय किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण पाणाइवाय किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिसके पारितापनिकी क्रिया होती है, क्या उसके प्राणातिपात क्रिया होती है? तथा जिसके प्राणातिपात क्रिया होती है, क्या उसके पारितापनिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के पारितापनिकी क्रिया होती है, उसके प्राणातिपात क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं भी होती है, किन्तु जिस जीव के प्राणातिपात क्रिया होती है, उसके पारितापनिकी क्रिया नियम से होती है।

विवेचन - परिताप और प्राणातिपात का प्रथम की तीन क्रियाओं के सद्भाव में नियतपना नहीं है क्योंकि जब कोई घातक-शिकारी वध्य मृग आदि को धनुष खींच कर बाण आदि से बींध देता है तब उसका परिताप या मरण होता है या नहीं भी होता अतः दोनों का अनियतपना है अर्थात् पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया एक जीव में कदाचित् एक साथ होती है कदाचित् नहीं भी होती। जब बाण आदि के प्रहार से जीव को प्राण रहित कर दिया जाता है तब प्राणातिपात क्रिया होती है, शेष समय में नहीं होती। किन्तु जिसके प्राणातिपात क्रिया होती है उसके नियम से पारितापनिकी क्रिया होती है क्योंकि परितापना के बिना प्राणघात संभव नहीं है। किन्तु प्राणातिपात और परिताप के सद्भाव में पूर्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की तीन क्रियाएँ अवश्य होती है। क्योंकि पूर्व की तीन क्रियाओं के अभाव में परिताप और प्राणातिपात क्रिया संभव नहीं है।

जस्स णं भंते! णेरइयस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जहेव जीवस्स तहेव णेरइयस्स वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस नैरयिक के कायिकी क्रिया होती है क्या उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार जीव सामान्य (समुच्चय जीव) में कायिकी आदि क्रियाओं के परस्पर सहभाव की चर्चा की गई है उसी प्रकार नैरयिक के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए।

एवं णिरंतरं जाव वेमाणियस्स॥ ५८८॥

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिक के समान वैमानिक तक क्रियाओं के परस्पर सहभाव का कथन करना चाहिए।

जं समयं णं भंते! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तं समयं अहिगरणिया किरिया कज्जइ, जं समयं अहिगरणिया किरिया कज्जइ तं समयं काइया किरिया कज्जइ?

एवं जहेव आइल्लाओ दंडओ तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस समय जीव के कायिकी क्रिया होती है, क्या उस समय उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है? तथा जिस समय उसके आधिकरणिकी क्रिया होती है, क्या उस समय कायिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार क्रियाओं के परस्पर सहभाव के सम्बन्ध में प्रारम्भिक दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी वैमानिक तक कह देना चाहिए।

जं देसं णं भंते! जीवस्स काइया किरिया तं देसं णं अहिगरणिया किरिया तहेव जाव वेमाणियस्स।

जं पएसं णं भंते! जीवस्स काइया किरिया तं पएसं णं अहिगरणिया किरिया एवं तहेव जाव वेमाणियस्स। एवं एए जस्स जं समयं जं देसं जं पएसं णं चत्तारि दंडगा होंति॥ ५८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस देश में जीव कायिकी क्रिया होती है, क्या उस देश में आधिकरणिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! यहाँ भी पूर्वोक्त सूत्रों की तरह यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस प्रदेश में जीव के कायिकी क्रिया होती है, क्या उस प्रदेश में आधिकरणिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! यहाँ भी पूर्वोक्त सूत्रों की तरह यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए। इस प्रकार- १. जिस जीव के २. जिस समय में ३. जिस देश में और ४. जिस प्रदेश में ये चार दण्डक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांच क्रियाओं के जीव, समय, देश और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर सहभाव (संबंध) का निरूपण किया गया है। यहाँ 'समय' शब्द से सामान्य काल का ग्रहण समझना चाहिए किन्तु काल के सूक्ष्मतम अंश रूप समय नहीं समझना। 'देश' शब्द से बड़ा क्षेत्र समझना किन्तु 'प्रदेश' शब्द से उसी का छोटा क्षेत्र समझना चाहिए।

आयोजिका क्रियाएं

कइ णं भंते! आओजियाओ किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच आओजियाओ किरियाओ पण्णत्ताओ। तंजहा - काइया जाव पाणाइवाय किरिया।

कठिन शब्दार्थ - आओजियाओ - आयोजिका-जीव को संसार में आयोजित करने (जोड़ने वाली)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आयोजिका क्रियाएं कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! आयोजिका क्रियाएं पांच कही गई हैं, वह इस प्रकार है-कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया।

विवेचन - सभी क्रियाएं आयोजिका होते हुए भी इनको ही आयोजिका क्रियाएं कही गई हैं। क्योंकि बहुत से मतान्तरों का खण्डन करने के लिए बहुत से दर्शन दृष्टि परिवर्तन होते ही वे ही क्रियाएं संसार को तोड़ने वाली हो जाती है। किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है ये तो आयोजिका ही होती है।

एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक इन पांचों आयोजिका क्रियाओं का इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जस्स णं भंते! जीवस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि तस्स अहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि, जस्स अहिगरणिया आओजिया किरिया अत्थि तस्स काइया आओजिया किरिया अत्थि?

एवं एएणं अभिलावेणं ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, जस्स जं समयं जं देसं जं पएसं जाव वेमाणियाणं॥ ५९०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के कायिकी आयोजिका क्रिया होती है, क्या उसके आधिकरणिकी आयोजिका क्रिया होती है? और जिसके आधिकरणिकी आयोजिका क्रिया होती है, क्या उसके कायिकी आयोजिका क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! इस प्रकार इस अभिलाप के साथ १. जिस जीव में २. जिस समय में ३. जिस देश में और ४. जिस प्रदेश में ये चारों दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आयोजिका क्रियाओं का वर्णन किया गया है। '**आयोजयति जीवं संसारे इत्यायोजिकाः**' - जो क्रिया जीव को संसार के साथ जोड़ती है उसे आयोजिका क्रिया कहते हैं। आयोजिका क्रिया के कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया ये पांच भेद हैं।

क्रियाओं से स्पृष्ट-अस्पृष्ट की चौभंगी

जीवे णं भंते! जं समयं काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए पुट्ठे, पाणाइवायकिरियाए पुट्ठे?

गोयमा! अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे, पाणाइवायकिरियाए पुट्ठे १, अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए पुट्ठे, पाणाइवायकिरियाए अपुट्ठे २, अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए पुट्ठे तं समयं पारियावणियाए किरियाए अपुट्ठे, पाणाइवाय किरियाए अपुट्ठे ३, अत्थेगइए जीवे एगइयाओ जीवाओ जं समयं काइयाए आहिगरणियाए पाओसियाए किरियाए अपुट्ठे तं समयं परियावणियाए किरियाए अपुट्ठे पाणाइवाय किरियाए अपुट्ठे ४॥ ५९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **पुट्ठे** - स्पृष्ट (युक्त), **अपुट्ठे** - अस्पृष्ट (अयुक्त)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस समय जीव कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, क्या उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है अथवा प्राणातिपातिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है।

उत्तर - हे गौतम! १. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट होता है २. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, किन्तु प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता, ३. कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपात क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है ४. तथा कोई जीव, एक जीव की अपेक्षा से जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया से अस्पृष्ट होता है, उस समय पारितापनिकी क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है और प्राणातिपात क्रिया से भी अस्पृष्ट होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांच क्रियाओं से स्पृष्ट-अस्पृष्ट की अपेक्षा चौभंगी कही गयी है।

पंचविधक्रियाएं और उनके स्वामी

कइ णं भंते! किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तंजहा-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रियाएं कितनी प्रकार की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! क्रियाएं पांच प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४. अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्णित पांच क्रियाओं का स्वरूप इस प्रकार है - **१. आरंभिकी (आरंभिया) क्रिया** - पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों की हिंसा करना आरंभ है । आरंभ से लगने वाली क्रिया को आरंभिकी क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं - जीव आरंभिकी और अजीव आरंभिकी । जीव की हिंसा से लगने वाली क्रिया जीव आरंभिकी है। अजीव में जीव का आरोप कर भावों से उसकी हिंसा करना अजीव आरंभिकी क्रिया है।

२. पारिग्रहिकी - जीव अजीव पर ममत्व-मूर्छा से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी क्रिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके दो भेद हैं-जीव पारिग्रहिकी और अजीव पारिग्रहिकी। द्विपद-दास, दासी और चतुष्पद-गाय, घोड़े आदि का संग्रह कर उन पर ममत्व-मूर्छा भाव रखना जीव पारिग्रहिकी है। धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, सोने, चांदी आदि अजीव पदार्थों का संग्रह कर उन पर ममत्व-मूर्छा रखना अजीव पारिग्रहिकी है।

३. माया प्रत्ययिकी - माया के आचरण से लगने वाली क्रिया माया प्रत्ययिकी है । इसके दो भेद हैं - आत्मभाव वंचनता, परभाव वंचनता । अन्तर के कुटिल भावों को छिपा कर बाहर सरलता का प्रदर्शन करना, धर्माचरण में प्रमत्त होते हुए भी अपने को क्रियान्वत दिखाना आत्मभाव वंचनता है । जाली लेख, झूठे तोल माप आदि से दूसरों को ठगना परभाव वंचनता है ।

४. अप्रत्याख्यान क्रिया - त्याग प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया है। त्याग प्रत्याख्यान जीव विषयक और अजीव विषयक होते हैं, इसलिये इस क्रिया के, जीव प्रत्याख्यान क्रिया और अजीव प्रत्याख्यान क्रिया - ये दो भेद हैं ।

५. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी (मिच्छादंसण वत्तिया) - तत्त्व में अतत्त्व का और अतत्त्व में तत्त्व का श्रद्धान रखना अथवा हीन अधिक मानना मिथ्यादर्शन है। मिथ्यादर्शन से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी है। इसके दो भेद हैं - १. अनभिगृहीत मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी और २. अभिगृहीत मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी। जिन जीवों ने अन्यतीर्थियों के मत को बिल्कुल नहीं जाना है और न ग्रहण किया है, ऐसे संज्ञी या असंज्ञी जीवों के अनभिगृहीत मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया होती है । अभिगृहीत मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया के दो भेद - १. हीनातिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी (ऊणाइरित्त मिच्छा दंसण वत्तिया) और २. तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी (तव्वइरित्त मिच्छा दंसण वत्तिया) सर्वज्ञ भगवान् ने जो वस्तु का स्वरूप बताया है उससे हीन एवं अधिक मानना हीनातिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया है । जैसे आत्मा तिल, जौ अथवा अंगुष्ठ प्रमाण है अथवा आत्मा सर्वव्यापक है इस प्रकार आत्मा का प्रमाण हीन, अधिक मानना। वस्तु का जैसा स्वरूप है उससे भिन्न विपरीत श्रद्धान करना तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया है जैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को सच्चे देव, गुरु, धर्म समझना ।

आरंभिया णं भंते! किरिया कस्स कज्जइ?

गोयमा! अण्णयरस्स वि पमत्तसंजयस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरम्भिकी क्रिया किसके होती है?

उत्तर - हे गौतम! आरम्भिकी क्रिया किसी प्रमत्तसंयत के होती है।

परिग्गहिया णं भंते! किरिया कस्स कज्जइ?

गोयमा! अण्णयरस्स वि संजयासंजयस्स।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पारिग्रहिकी क्रिया किसके होती है?

उत्तर - हे गौतम! पारिग्रहिकी क्रिया किसी संयतासंयत के होती है।

मायावत्तिया णं भंते! किरिया कस्स कज्जइ?

गोयमा! अण्णयरस्स वि अपमत्तसंजयस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माया प्रत्यया क्रिया किसके होती है?

उत्तर - हे गौतम! माया प्रत्यया क्रिया किसी अप्रमत्तसंयत के होती है।

अपच्चक्खाणकिरिया णं भंते! कस्स कज्जइ?

गोयमा! अण्णयरस्स वि अपच्चक्खाणिस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अप्रत्याख्यान क्रिया किसके होती है?

उत्तर - हे गौतम! अप्रत्याख्यान क्रिया किसी अप्रत्याख्यानी के होती है।

मिच्छादंसणवत्तिया णं भंते! किरिया कस्स कज्जइ?

गोयमा! अण्णयरस्स वि मिच्छादंसणिस्स॥ ५९२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया किसके होती है?

उत्तर - हे गौतम! मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया किसी मिथ्यादर्शनी के होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में किस क्रिया का कौन स्वामी होता है ? इसका कथन किया गया है। उसका वर्णन इस प्रकार है - **१. आरंभिकी क्रिया-'अण्णयरस्स पमत्त संजयस्स'** आरम्भिकी क्रिया छठे गुणस्थान तक के सभी जीवों को लगती है। शुभयोगी प्रमत्त संयत को भी आरम्भिकी क्रिया लगती है। परन्तु बहुत सूक्ष्म रूप में लगने से भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक १ में उसको गौण करके शुभयोगी प्रमत्त संयत को अनारम्भी बता दिया है - जब की यहाँ पर सूक्ष्म रूप से लगने पर भी उसको क्रिया लगना बताया है। यहाँ पर उसे गौण नहीं किया है अथवा आगमकारों को **'अण्णयरस्स'** शब्द से मात्र 'अशुभयोगी प्रमत्तसंयत' ही इष्ट होगा। शुभ योगी को आरम्भिकी क्रिया लगना इष्ट नहीं होगा। **तत्त्व केवली गम्य॥**

२. पारिग्रहिकी क्रिया - 'अण्णयरस्स वि संजयासंजयस्स' - पारिग्रहिकी क्रिया पांचवें गुणस्थान तक के सभी जीवों को लगती है। एक व्रतधारी को भी "अप्रत्याख्यान क्रिया" नहीं लगती है। व्रतधारी के जो पाप खुले हैं अर्थात् जिसका त्याग नहीं किया है उनसे आने जाने वाली क्रिया 'पारिग्रहिकी क्रिया' लगेगी। पांचवें गुणस्थान में ११ अव्रत (थोकड़े में) अपेक्षा से कह दिये हैं क्योंकि वह व्रती तो मात्र त्रसकाय का ही बना है। शेष अव्रतों की क्रियाओं का पारिग्रहिकी क्रिया में समाविष्ट होना समझा। अतः ११ अव्रत बोलने में भी बाधा नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. मायाप्रत्ययाक्रिया - 'अण्णयरस्स वि अप्पमत्तसंजयस्स'- यहाँ पर अप्रमत्तसंयतों में मात्र 'सराग अप्रमत्तसंयतों' का ही ग्रहण हुआ समझना चाहिए। वीतराग संयत को यह क्रिया नहीं लगती है। माया प्रत्यया क्रिया कषाय से सम्बन्धित होने के कारण दसवें गुणस्थान तक लगती है। यहाँ ''माया'' शब्द से चारों कषायों का ग्रहण किया गया है।

४. अप्रत्याख्यान क्रिया - 'अण्णयरस्स वि अपच्चक्खाणीस्स' पहले से चौथे गुणस्थान तक के सभी जीवों को यह क्रिया लगती है। अप्रत्याख्यान क्रिया वाले को प्रत्याख्यान के भाव भी नहीं आते हैं और अनुपरतकायिकी क्रिया वाला विरति को प्राप्त नहीं कर सकता है। ऐसा अर्थ टीका से निकलता है।

५. मिथ्यादर्शन प्रत्ययाक्रिया - 'अण्णयरस्स वि मिच्छादिट्ठिस्स' - मिथ्यादर्शन की क्रिया अपेक्षा से पहले, दूसरे तीसरे गुणस्थान तक समझना। दूसरे गुणस्थान में भी मिथ्यात्वाभिमुख होने से एवं हीयमान परिणाम होने से सास्वादन समकित होने पर भी मिथ्यात्व की क्रिया लगती है। विकलेन्द्रियों में पांचों क्रियाओं की नियमा बताई है।

जीव में क्रियाओं का सहभाव

णेरइयाणं भंते! कइ किरियाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ। तंजहा - आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितनी क्रियाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के पांच क्रियाएँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

एवं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ- इसी प्रकार नैरयिकों के समान वैमानिकों तक प्रत्येक में पांच क्रियाएं समझनी चाहिए।

जस्स णं भंते! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स परिग्गहिया किरिया कज्जइ, जस्स परिग्गहिया किरिया कज्जइ तस्स आरंभिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स परिग्गहिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण परिग्गहिया किरिया कज्जइ तस्स आरंभिया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है क्या उसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है? तथा जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है, क्या उसके आरम्भिकी क्रिया होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है, उसके पारिग्रहिकी क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है, जिसके पारिग्रहिकी क्रिया होती है, उसके आरम्भिकी क्रिया नियम से होती है।

विवेचन - जिसके आरम्भिकी क्रिया होती है उसके पारिग्रहिकी क्रिया भजना से होती है क्योंकि पारिग्रहिकी क्रिया संयत के नहीं होती है, शेष के होती है।

जस्स णं भंते! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ पुच्छा?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स मायावत्तिया किरिया णियमा कज्जइ, जस्स पुण मायावत्तिया किरिया कज्जइ तस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव को आरम्भिकी क्रिया होती है, क्या उसको मायाप्रत्यया क्रिया होती है? तथा जिसके माया प्रत्यया क्रिया होती है क्या उसके आरम्भिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है, उसके नियम से मायाप्रत्यया क्रिया होती है और जिसको मायाप्रत्यया क्रिया होती है, उसके आरम्भिकी क्रिया कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।

विवेचन - जिसके आरम्भिकी क्रिया होती है उसके मायाप्रत्यया क्रिया नियम से होती है किन्तु जिसके माया प्रत्यया क्रिया होती है उसके आरम्भिकी क्रिया भजना से होती है क्योंकि जो अप्रमतसंयत होता है उसके आरम्भिकी क्रिया नहीं होती, शेष के होती हैं।

जस्स णं भंते! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ पुच्छा?

गोयमा! जस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तस्स अपच्चक्खाणकिरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ तस्स आरंभिया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव को आरम्भिकी क्रिया होती है, क्या उसको अप्रत्याख्यानी क्रिया होती है तथा जिसको अप्रत्याख्यानी क्रिया होती है, क्या उसको आरम्भिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव को आरम्भिकी क्रिया होती है, उसको अप्रत्याख्यानी क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है, किन्तु जिस जीव को अप्रत्याख्यानी क्रिया होती है, उसके आरम्भिकी क्रिया नियम से होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जिसके आरम्भिकी क्रिया होती है उसके अप्रत्याख्यानी क्रिया भजना से होती है क्योंकि प्रमत्त संयत और देश विरत को अप्रत्याख्यानी क्रिया नहीं होती किन्तु जो अविरत सम्यग् दृष्टि आदि हैं उनके होती है। जिसके अप्रत्याख्यानी क्रिया होती है उसके आरम्भिकी क्रिया नियमा से होती है। क्योंकि अप्रत्याख्यानी-अविरति को अवश्य आरंभ का होना संभव है।

एवं मिच्छादंसणवत्तियाए वि समं।

भावार्थ - इसी प्रकार आरम्भिकी क्रिया के साथ अप्रत्याख्यानी क्रिया के सहभाव के कथन के समान आरम्भिकी क्रिया के साथ मिथ्यादर्शनप्रत्यया के सहभाव का कथन करना चाहिए।

विवेचन - जिसको आरम्भिकी क्रिया होती है उसको मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया कदाचित् होती है कदाचित् नहीं होती क्योंकि मिथ्यादृष्टि को तो यह क्रिया होती है किन्तु शेष को नहीं होती। जिसको मिथ्यादर्शन क्रिया होती है उसको आरंभिकी क्रिया अवश्य होती है क्योंकि मिथ्यादृष्टि विरति रहित होने से उससे अवश्य आरंभ का होना संभव है।

एवं परिग्गहिया वि तिर्हि उवरिल्लाहिं समं संचारेयव्वा।

भावार्थ - इसी प्रकार आरम्भिकी क्रिया के साथ जैसे पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानी क्रिया के सहभाव का प्रश्नोत्तर है, उसी प्रकार आगे की तीन क्रियाओं (मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानी एवं मिथ्यादर्शनप्रत्यया) के साथ सहभाव-सम्बन्धी-प्रश्नोत्तर समझ लेना चाहिए।

जस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ तस्स उवरिल्लाओ दो वि सिय कज्जंति, सिय णो कज्जंति, जस्स उवरिल्लाओ दो कज्जंति तस्स मायावत्तिया किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - जिसके मायाप्रत्यया क्रिया होती है, उसके आगे की दो क्रियाएं अप्रत्याख्यानी और मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती हैं, किन्तु जिसके आगे की दो क्रियाएं अप्रत्याख्यानी एवं मिथ्यादर्शनप्रत्यया होती है, उसके मायाप्रत्यया क्रिया नियम से होती है।

जस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ तस्स अपच्चक्खाणकिरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - जिसके अप्रत्याख्यानी क्रिया होती है, उसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती, किन्तु जिसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होती है, उसके अप्रत्याख्यान क्रिया नियम से होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयस्स आइल्लियाओ चत्तारि परोप्परं णियमा कज्जंति, जस्स एयाओ चत्तारि कज्जंति तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया भइज्जइ, जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ तस्स एयाओ चत्तारि णियमा कज्जंति।

कठिन शब्दार्थ - परोप्परं - परस्पर।

भावार्थ - नैरयिक को प्रारम्भ की चार क्रियाएं आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यान क्रिया नियम से होती है। जिसके ये चार क्रियाएं होती हैं, उसको मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया भजना (विकल्प) से होती है, किन्तु जिसके मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होती है, उसके ये चारों क्रियाएं नियम से होती हैं।

विवेचन - नैरयिक आदि उत्कृष्ट अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक होते हैं इसके बाद नहीं। इसलिए नैरयिकों में प्रथम की चार क्रियाएं परस्पर नियत रूप से होती है। जिनको ये चारों क्रियाएं होती है उनको मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया भजना से होती है क्योंकि मिथ्यादृष्टि को मिथ्यादर्शन क्रिया होती है शेष जीवों को नहीं। जिनको मिथ्यादर्शन क्रिया होती है उनको प्रथम की चार क्रियाएं नियम से होती है क्योंकि मिथ्यादर्शन के सद्भाव में आरंभिकी आदि क्रियाएं अवश्य होती है।

एवं जाव थणियकुमारस्स।

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिकों में क्रियाओं के परस्पर सहभाव के कथन के समान असुरकुमार से स्तनितकुमार तक दसों भवनवासी देवों में क्रियाओं के सहभाव का कथन करना चाहिए।

पुढविकाइयस्स जाव चउरिंदियस्स पंच वि परोप्परं णियमा कज्जंति।

भावार्थ - पृथ्वीकायिक से लेकर चउरिन्द्रिय तक के जीवों के पांचों ही क्रियाएं परस्पर नियम से होती हैं।

विवेचन - पृथ्वीकाय से लेकर चउरिन्द्रिय पर्यंत जीवों में पांचों क्रियाएं परस्पर नियत रूप से होती है क्योंकि पृथ्वीकायिक आदि जीवों को मिथ्यादर्शन क्रिया अवश्य होती है।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स आइल्लियाओ तिण्णि वि परोप्परं णियमा कज्जंति, जस्स एयाओ कज्जंति तस्स उवरिल्लिया दोण्णि भइज्जंति, जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति तस्स एयाओ तिण्णि वि णियमा कज्जंति। जस्स अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ तस्स मिच्छादंसणवत्तिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, जस्स पुण मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ तस्स अपच्चक्खाण किरिया णियमा कज्जइ।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक को प्रारम्भ की तीन क्रियाएं परस्पर नियम से होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसको ये तीनों क्रियाएं होती हैं, उसको आगे की दो क्रियाएं अप्रत्याख्यानी एवं मिथ्यादर्शनप्रत्यया भजना से होती हैं। जिसको, आगे की दोनों क्रियाएं होती हैं, उसको ये प्रारम्भ की तीनों क्रियाएं नियम से होती हैं। जिसको अप्रत्याख्यान क्रिया होती है, उसको मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है। किन्तु जिसको मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होती है, उसको अप्रत्याख्यान क्रिया नियम से होती है।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों को प्रथम की तीन क्रियाएं परस्पर नियत होती है क्योंकि देशविरति तक ये क्रियाएं अवश्य होती है। बाद की दो क्रियाएं भजना से होती है। अप्रत्याख्यान क्रिया अविरत सम्यग् दृष्टि के और मिथ्यादर्शन प्रत्यया मिथ्यादृष्टि के होती है।

मणूसस्स जहा जीवस्स।

भावार्थ - मनुष्य में पूर्वोक्त क्रियाओं के सहभाव का कथन सामान्य जीव में क्रियाओं के सहभाव के कथन की तरह समझना चाहिए।

वाणमंतर-जोइसिय वेमाणियस्स जहा णेरइयस्स।

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में क्रियाओं के परस्पर सहभाव का कथन नैरयिक में क्रियाओं के सहभाव-कथन के समान समझना चाहिए।

जं समयं णं भंते! जीवस्स आरंभिया किरिया कज्जइ तं समयं पारिग्गहिया किरिया कज्जइ?

एवं एए जस्स जं समयं जं देसं जं पएसेणं च चत्तारि दंडगा णेयव्वा, जहा णेरइयाणं तहा सव्वदेवाणं णेयव्वं जाव वेमाणियाणं॥ ५९३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस समय जीव के आरम्भिकी क्रिया होती है, क्या उस समय पारिग्रहिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! क्रियाओं के परस्पर सहभाव के सम्बन्ध में इसी तरह समझना चाहिये।

इस प्रकार - १. जिस जीव के २. जिस समय में ३. जिस देश में और ४. जिस प्रदेश में - यों चार दण्डकों के आलापक कहने चाहिए। जैसे नैरयिकों के विषय में ये चारों दण्डक कहे उसी प्रकार समस्त देवों के विषय में यावत् वैमानिकों तक कहने चाहिए।

अठारह पापों से विरमण

अत्थि णं भंते! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ?

हंता! अत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम्हि णं भंते! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ?

गोयमा! छसु जीवणिकाएसु।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीवों का प्राणातिपात से विरमण होता है?

उत्तर - हाँ गौतम! जीवों का प्राणातिपात से विरमण होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस विषय में प्राणातिपातविरमण होता है?

उत्तर - हे गौतम! वह षड् जीवनिकायों के विषय में होता है।

अत्थि णं भंते! णेरइयाणं पाणाइवायवेरमणे कज्जइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिकों का प्राणातिपात से विरमण होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं जाव वेमाणियाणं, णवरं मणूसाणं जहा जीवाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार का कथन वैमानिकों तक के प्राणातिपात से विरमण के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह कि मनुष्यों का प्राणातिपात विरमण सामान्य जीवों के समान कहना चाहिए।

एवं मुसावाएणं जाव मायामोसेण जीवस्स य मणूसस्स य, सेसाणं णो इणट्ठे समट्ठे। णवरं अदिण्णादाणे गहणधारणिज्जेसु दव्वेसु, मेहुणे रूवेसु वा रूवसहगएसु वा दव्वेसु, सेसाणं सव्वेसु दव्वेसु।

भावार्थ - इसी प्रकार मृषावाद से लेकर मायामृषा पापस्थान तक से विरमण सामान्य जीवों का और मनुष्य का होता है, शेष में यह नहीं होता। विशेषता यह है कि अदत्तादानविरमण ग्रहणधारण करने योग्य द्रव्यों में, मैथुन विरमण रूपों में अथवा रूपसहगत स्त्री आदि द्रव्यों में होता है। शेष पापस्थानों से विरमण सर्वद्रव्यों के विषय में होता है।

अत्थि णं भंते! जीवाणं मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जइ?

हंता! अत्थि।

कम्हि णं भंते! जीवाणं मिच्छादंसणसल्लवेरमणे कज्जइ?

गोयमा! सव्वदव्वेसु।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीवों का मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण होता है?

उत्तर - हाँ गौतम! होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस विषय में जीवों का मिथ्यादर्शनशल्य से विरमण होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! वह सर्वद्रव्यों के विषय में होता है।

एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, णवरं एगिंदियविगलेंदियाणं णो इणट्ठे समट्ठे॥ ५९४॥

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के मिथ्यादर्शन शल्य से विरमण का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में यह नहीं होता।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अठारह पापस्थानों से विरमण का कथन किया गया है। मनुष्य के अलावा अन्य जीवों में भवनिमित्तक सर्वविरति का अभाव है। मिथ्यादर्शन विरमण सर्वद्रव्यों के विषय में कहा है किन्तु उपलक्षण से सर्व पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिये क्योंकि यदि ऐसा नहीं हो तो एक द्रव्य की पर्याय के विषय में जो मिथ्यात्व होता है उसका विरमण असंभव है, कारण कि -

"सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्स भवति नरः।
मिथ्यादृष्टिः सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम्॥"

- सूत्र में कहे हुए एक भी अक्षर के प्रति अरुचि होने से मनुष्य मिथ्यादृष्टि होता है क्योंकि जिनेश्वर भगवन्तों का कहा हुआ सूत्र हमारे लिए प्रमाण है - ऐसा शास्त्र वचन है। मिथ्यादर्शन शल्य का विरमण एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के अलावा जीवों में होता है यद्यपि बेइन्द्रिय आदि जीवों में करणपर्याप्तावस्था में सास्वादन सम्यक्त्व होती है किन्तु वह मिथ्यात्वाभिमुख और सम्यक्त्व के प्रतिकूल जीवों को होती है अतः उनमें मिथ्यादर्शन शल्य विरमण का निषेध किया गया है।

पापों से विरत जीवों के कर्म प्रकृति बंध

पाणाइवायविरए णं भंते! जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा। एवं मणूसे वि भाणियव्वे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणातिपात से विरत एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का बन्ध करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सप्तविध कर्म बन्धक होता है, अथवा अष्टविध कर्म बन्धक होता है, अथवा षट्विधबन्धक, एकविधबन्धक या अबन्धक होता है। इसी प्रकार मनुष्य के द्वारा कर्मप्रकृतियों के बन्ध के विषय में भी कथन करना चाहिए।

पाणाइवायविरया णं भंते! जीवा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य १,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अबंधए य ६,

अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अबंधगा य ७, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य १, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ४, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य अबंधए य १, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य अबंधगा य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य अबंधए य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य अबंधगा य ४।

अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधए य १ अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधगा य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य अबंधए य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य अबंधगा य ४। अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य अबंधए य १, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य अबंधगा य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य अबंधए य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य अबंधगा य, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधए य ५, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधगा य ६, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य अबंधए य ७, अहवा सत्तविहबंधगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य अबंधगा य ८, एवं एए अट्ठ भंगा, सव्वे वि मिलिया सत्तावीसं भंगा भवंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणातिपात से विरत अनेक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. समस्त जीव सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं।

१. अथवा अनेक सप्तविध-बन्धक अनेक एकविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, अनेक एकविधबन्धक और अनेक अष्टविधबन्धक होते हैं ३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधबन्धक होता है ४. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक एकविधबन्धक तथा षड्विधबन्धक होते हैं ५. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं और एक अबन्धक होता है ६. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अबन्धक होते हैं।

१. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, अनेक एकविधबन्धक और एक अष्टविधबन्धक और एक षड्विधबन्धक होता है २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक तथा एक अष्टविधबन्धक और अनेक षड्विधबन्धक होते हैं ३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं और एक षड्विधबन्धक होता है ४. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं। १. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक और एक अबन्धक होता है २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक एवं अनेक अबन्धक होते हैं ३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं और एक अबन्धक होता है ४. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और अबन्धक होते हैं। १. अथवा अनेक सप्तविध-बन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक षड्विधबन्धक एवं अबन्धक होता है २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक षड्विधबन्धक एवं अनेक अबन्धक होते हैं ३. अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं और एक अबन्धक होता है ४. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होते हैं।

१. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होता है २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होता है एवं अनेक अबन्धक होते हैं ३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक, अनेक षड्विधबन्धक और एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अबन्धक होता है ४. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक एवं एकविधबन्धक होते हैं तथा एक अष्टविधबन्धक होता है और अनेक षड्विधबन्धक एवं अबन्धक होते हैं ५. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं तथा एक षड्विधबन्धक और अबन्धक होता है ६. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक और अष्टविधबन्धक होते हैं तथा एक षड्विधबन्धक एवं अनेक अबन्धक होते हैं ७. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक और षड्विधबन्धक होते हैं तथा एक अबन्धक होता है ८. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक, एकविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक और अबन्धक होते हैं। ये कुल आठ भंग हुए। सब मिलाकर कुल २७ भंग होते हैं।

विवेचन - प्राणातिपात आदि से विरत जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का बंध करता है? इसके उत्तर में कहा है - १. सभी जीव सात प्रकृति के बांधने वाले और एक प्रकृति के बांधने वाले होते हैं। प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्वकरण और अनिवृति बादर संपराय सात प्रकृतियाँ बांधते हैं उनमें प्रमत्त और अप्रमत्त आयुष्य के बंध के समय आठ प्रकृतियाँ बांधते हैं क्योंकि वे आयुष्य का भी बंध करते हैं और आयुष्य का बंध कदाचित् होता है इसलिए किसी समय सर्वथा भी नहीं होते अतः प्रमत्त और अप्रमत्त सदैव बहुत होते हैं। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादर कदाचित् नहीं भी होते हैं क्योंकि आगम में उनका विरह भी कहा गया है। एक प्रकृति बांधने वाले उपशांत मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली हैं उनमें उपशान्तमोह और क्षीण मोह कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता है क्योंकि उनका भी अन्तर संभव है। सयोगी केवली हमेशा होते हैं क्योंकि अन्य-अन्य क्षेत्रों में होने के कारण उनका विच्छेद नहीं होता है। इसलिए सात प्रकृतियों के बंधक और एक प्रकृति के बंधक बहुत अवस्थित (विद्यमान) होते हैं। इस प्रकार आठ प्रकृतियों के बंध करने वाले आदि के अभाव में प्रथम भंग होता है। अथवा २. सात प्रकृति के बांधने वाले और एक प्रकृति के बांधने वाले बहुत होते हैं और एक आठ प्रकृतियों को बांधने वाला होता है यह दूसरा भंग। ३. आठ प्रकृतियों को बांधने वाले बहुत, यह तीसरा भंग। ४. छह प्रकृतियों के बांधने वाले भी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते क्योंकि उनके उत्कृष्ट छह मास का विरह होता है। जब वे होते हैं तब जघन्य एक या दो उत्कृष्ट १०८ होते हैं इसलिये जब आठ प्रकृतियों के बांधने वाले नहीं होते हैं तब छह प्रकृतियों के बांधने वालों के भी दो भंग होते हैं। अबन्धक अयोगी केवली होते हैं और वे भी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। क्योंकि उनका भी उत्कृष्ट छह मास का विरह होता है जब वे होते हैं तब जघन्य एक यावत् उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं इसलिए आठ प्रकृतियों के बांधने वाले नहीं होते हैं तब अबंधक के भी दो भंग होते हैं। इस प्रकार एक पहला भंग और एक-एक के संयोग से छह दूसरे भंग इस प्रकार सभी मिल कर सात भंग होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्विक संयोगी भंगों में सप्तविध बंधक और एकविधबन्धक अवस्थित है क्योंकि दोनों सदैव बहुत होते हैं। अतः प्रत्येक अष्टविधबन्धक और षड्विधबंधक में एक वचन रूप प्रथम भंग। अष्टविध बंधक में एक वचन और षड्विधबंधक में बहुवचन रूप दूसरा भंग। ये दो भंग अष्टविध बंधक में एक वचन से होते हैं और ये ही दो भंग बहुवचन से होते हैं इस प्रकार ये चार भंग हुए। इसी प्रकार चार भंग अष्टविधबंधक और अबन्धक के जानना चाहिए। इसी प्रकार चार भंग षड्विध बंधक और अबंधक के जानना चाहिए, ये सभी मिल कर द्विक संयोगी के बारह भंग होते हैं।

अष्टविध बन्धक और अबन्धक रूप तीन पद के संयोग में प्रत्येक के एक वचन और बहुवचन से आठ भंग होते हैं ये सभी मिल कर २७ भंग होते हैं।

शंका - विरति बन्ध का हेतु नहीं है फिर भी विरति वाले के बंध कैसे होता है?

समाधान - विरति बन्ध का हेतु नहीं है किन्तु विरति वाले के जो कषाय और योग हैं वे बंध के कारण हैं जो इस प्रकार है - सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्धि चारित्र में भी जो उदय प्राप्त संज्वलन कषाय और शुभ योग हैं उनके कारण विरतिवाले को भी देवायुष्य आदि शुभ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

एवं मणूसाण वि एए चेव सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

भावार्थ - इसी प्रकार प्राणातिपातविरत मनुष्यों के भी कर्मप्रकृति बन्ध सम्बन्धी ये ही २७ भंग कहने चाहिए।

एवं मुसावायविरयस्स जाव मायामोसविरयस्स जीवस्स य मणूसस्स य।

भावार्थ - प्राणातिपातविरत एक जीव और एक मनुष्य के समान मृषावाद विरत यावत् मायामृषाविरत एक जीव तथा एक मनुष्य के भी कर्मप्रकृतिबन्ध का कथन करना चाहिए।

विवेचन - जिस प्रकार प्राणातिपात की विरति वाले के २७ भंग कहे गये हैं उसी प्रकार मृषावाद की विरति वाले यावत् माया मृषा की विरति वाले के भी २७ भंग समझना चाहिये।

मिच्छादंसणसल्लविरए णं भंते! जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य विरत एक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सप्तविधबन्धक, अष्टविधबन्धक, षड्विधबन्धक, एकविधबन्धक अथवा अबन्धक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मिथ्यादर्शन शल्य की विरति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगी केवली गुणस्थान तक होती है।

मिच्छादंसणसल्लविरए णं भंते! णेरइए कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत एक नैरयिक कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सप्तविधबन्धक अथवा अष्टविधबन्धक होता है, यह कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तक समझना चाहिए।

मणूसे जहा जीवे।

भावार्थ - एक मनुष्य के सम्बन्ध में कर्मप्रकृतिबन्ध का आलापक सामान्य जीव के आलापक के समान कहना चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिए जहा णेरइए।

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के सम्बन्ध में कर्मप्रकृति बन्ध का आलापक एक नैरयिक के कर्मप्रकृतिबन्ध सम्बन्धी आलापक के समान कहना चाहिए।

विवेचन - नैरयिक आदि चौबीस दण्डकों के विचार में मनुष्य के सिवाय बाकी सभी स्थानों में सप्तविधबंधक या अष्टविध बंधक होते हैं किन्तु षड्विधबन्धक आदि नहीं होते क्योंकि उन जीवों को श्रेणि की प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य के लिए सामान्य जीव की तरह आलापक कहना चाहिये।

मिच्छादंसणसल्लविरया णं भंते! जीवा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! ते चेव सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत अनेक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पूर्वोक्त ही २७ भंग यहाँ कहने चाहिए।

मिच्छादंसणसल्लविरया णं भंते! णेरइया कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत अनेक नैरयिक कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सभी भंग इस प्रकार होते हैं - १. सभी जीव सप्तविधबन्धक होते हैं, २. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक होते हैं और एक अष्टविधबन्धक होता है ३. अथवा अनेक सप्तविधबन्धक और अनेक अष्टविधबन्धक होते हैं।

एवं जाव वेमाणिया, णवरं मणूसाणं जहा जीवाणं॥ ५९५॥

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् अनेक वैमानिकों के कर्मप्रकृतिबन्ध के आलापक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि अनेक मनुष्यों के कर्मप्रकृति सम्बन्धी आलापक समुच्चय अनेक जीवों के कर्म प्रकृति सम्बन्धी आलापक के समान कहना चाहिए।

विवेचन - मिथ्यादर्शन शल्य से विरति वाले अनेक जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं? इसके उत्तर में भी पूर्व में कहे अनुसार २७ भंग समझने चाहिये। नैरयिकों में तीन भंग होते हैं - १. सभी सात कर्म बांधने वाले, जब एक भी जीव आठ कर्म प्रकृतियों को बांधने वाला नहीं होता है तब यह प्रथम भंग होता है २. जब एक नैरयिक आठ कर्म प्रकृतियों का बंध करता है तथा बहुत से सात कर्म प्रकृति बांधने वाले और एक आठ प्रकृति बांधने वाला होता है - यह दूसरा भंग ३. जब आठ कर्म प्रकृति बांधने वाले बहुत होते हैं तथा सात कर्म प्रकृति बांधने वाले और आठ कर्म प्रकृति बांधने वाले बहुत होते हैं - यह तीसरा भंग होता है। इस प्रकार तीन भंग वैमानिक पर्यंत समझने चाहिये। मनुष्यों में २७ भंग सामान्य जीव के अनुसार कहना चाहिये।

पापों से विरत जीवों में क्रिया भेद

पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! पाणाइवायविरयस्स णं जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! प्राणातिपात से विरत जीव के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणातिपातविरत जीव के आरम्भिकी क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है।

पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स परिग्गहिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! प्राणातिपात विरत जीव के क्या पारिग्रहिकी क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स मायावत्तिया किरिया कज्जइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणातिपात विरत जीव के माया प्रत्यया क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

पाणाइवायविरयस्स णं भंते! जीवस्स अपच्चक्खाणवत्तिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! प्राणातिपात विरत जीव के क्या अप्रत्याख्यान प्रत्यया क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

मिच्छादंसणवत्तियाए पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार की पृच्छा मिथ्यादर्शन प्रत्यया के सम्बन्ध में करनी चाहिए।

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं पाणाइवायविरयस्स मणूसस्स वि।

भावार्थ - इसी प्रकार प्राणातिपात विरत मनुष्य का भी आलापक कहना चाहिए।

एवं जाव मायामोसविरयस्स जीवस्स मणूसस्स य।

भावार्थ - इसी प्रकार मायामृषा विरत जीव और मनुष्य के सम्बन्ध में भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते! जीवस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ?

गोयमा! मिच्छादंसणसल्लविरयस्स जीवस्स आरंभिया किरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, एवं जाव अपच्चक्खाणकिरिया। मिच्छादंसणवत्तिया किरिया ण कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत जीव के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है, यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! मिथ्यादर्शनशल्य से विरत जीव के आरम्भिकी क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यान क्रिया तक कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है। किन्तु मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया नहीं होती।

मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते! णेरइयस्स किं आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणवत्तिया किरिया कज्जइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! आरंभिया किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाण किरिया वि कज्जइ, मिच्छादंसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादर्शनशल्य विरत नैरयिक के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है, यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया होती है?

उत्तर - हे गौतम! मिथ्यादर्शनशल्य विरत नैरयिक के आरम्भिकी क्रिया भी होती है, यावत् अप्रत्याख्यान क्रिया भी होती है, किन्तु मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया नहीं होती है।

एवं जाव थणियकुमारस्स।

भावार्थ - मिथ्यादर्शन विरत नैरयिक के क्रिया सम्बन्धी आलापक के समान असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के क्रिया सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।

मिच्छादंसणसल्लविरयस्स णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स एवमेव पुच्छा?

गोयमा! आरंभिया किरिया कज्जइ जाव मायावत्तिया किरिया कज्जइ, अपच्चक्खाणकिरिया सिय कज्जइ, सिय णो कज्जइ, मिच्छादंसणवत्तिया किरिया णो कज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार की पृच्छा मिथ्यादर्शनशल्य विरत पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक की क्रिया सम्बन्धी है?

उत्तर - हे गौतम! उसके आरम्भिकी क्रिया होती है, यावत् मायाप्रत्यया क्रिया होती है। अप्रत्याख्यान क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है, किन्तु मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया नहीं होती है।

मणूसस्स जहा जीवस्स।

भावार्थ - मिथ्यादर्शनशल्य विरत मनुष्य की क्रिया सम्बन्धी प्ररूपणा सामान्य जीव के क्रियासम्बन्धी प्ररूपणा के समान समझना चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णेरइयस्स॥ ५९६॥

भावार्थ - मिथ्यादर्शनशल्य विरत वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों का क्रिया सम्बन्धी कथन नैरयिक के क्रिया सम्बन्धी कथन के समान समझना चाहिए।

क्रियाओं का अल्पबहुत्व

एयासि णं भंते! आरंभियाणं जाव मिच्छादंसणवत्तियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवाओ मिच्छादंसणवत्तियाओ किरियाओ, अपच्चक्खाण किरियाओ विसेसाहियाओ, परिग्गहियाओ विसेसाहियाओ, आरंभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ, मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ॥ ५९७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन आरम्भिकी से लेकर मिथ्यादर्शनप्रत्यया तक की क्रियाओं में कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रियाएं हैं। उनसे अप्रत्याख्यान क्रियाएं विशेषाधिक हैं। उनसे पारिग्रहिकी क्रियाएं विशेषाधिक हैं। उनसे आरम्भिकी क्रियाएं विशेषाधिक हैं और इन सबसे मायाप्रत्यया क्रियाएं विशेषाधिक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्रियाओं के अल्प-बहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार है-सबसे थोड़ी मिथ्यादर्शन प्रत्यय क्रिया है क्योंकि यह मिथ्यादृष्टि, सास्वादन सम्यग्दृष्टि और मिश्र दृष्टि जीवों को ही होती है, उससे अप्रत्याख्यान क्रिया विशेषाधिक है क्योंकि वह अविरति सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि आदि को होती है, उससे भी पारिग्रहिकी क्रिया विशेषाधिक है क्योंकि वह देशविरति वालों और पूर्व (प्रारम्भ के चार गुणस्थान) वालों को होती है, उससे भी आरंभिकी क्रिया विशेषाधिक है क्योंकि वह प्रमत्त संयत और उसे पहले के जीवों (प्रारम्भ के पांच गुणस्थान वालों) को होती है उससे भी मायाप्रत्यया क्रिया विशेषाधिक है क्योंकि यह अप्रमत्त संयतों (सातवें से दसवें गुणस्थान वालों) को तथा प्रारम्भ के छह गुणस्थान वालों को होती है।

॥ पण्णवणाए भगवईए बावीसइमं किरियापयं समत्तं॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का बाईसवाँ क्रियापद समाप्त॥

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेवीसइमं कम्मपगडिपयं : पढमो उद्देसओ

तेईसवाँ कर्म प्रकृति पद : प्रथम उद्देशक

प्रज्ञापना सूत्र के बाईसवें क्रिया पद में नरक आदि गति के परिणाम से परिणत हुए जीवों के प्राणातिपात आदि क्रिया विशेष का विचार किया गया है। इस तेईसवें पद में कर्म बन्ध आदि परिणाम विशेष का विचार किया जाता है। उसमें पांच अधिकारों का प्रतिपादन करने वाली गाथा इस प्रकार हैं -

कइ पगडी कह बंधइ कइहि वि ठाणेहिं बंधए जीवो।

कइ वेएइ य पगडी अणुभावो कइविहो कस्स॥

कठिन शब्दार्थ - पगडी - प्रकृति, **बंधइ** - बांधता है, **वेएइ** - वेदन करता है, **अणुभावो** - अनुभाव।

भावार्थ - १. कर्म प्रकृतियाँ कितनी हैं? २. किस प्रकार बंधती हैं? ३. जीव कितने स्थानों से कर्म बांधता है? ४. कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है? ५. किस कर्म का अनुभाव कितने प्रकार का होता है? इस प्रकार ये पांच द्वार इस उद्देशक में कहे जायेंगे। प्रथम द्वार का निरूपण करने के लिए सूत्रकार फरमाते हैं -

१. प्रथम द्वार

कर्म प्रकृतियों के नाम और अर्थ

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा-णाणावरणिज्जं १, दंसणावरणिज्जं २, वेयणिज्जं ३, मोहणिज्जं ४, आउयं ५, णामं ६, गोयं ७, अंतराइयं ८।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. ज्ञानावरणीय २. दर्शनावरणीय ३. वेदनीय ४. मोहनीय ५. आयु ६. नाम ७. गोत्र और ८. अन्तराय।

णेरइयाणं भंते! कइ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! एवं चेव, एवं जाव वेमाणियाणं १॥ ५९८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितनी कर्म प्रकृतियाँ कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार पूर्ववत् आठ कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं। नैरयिकों के ही समान यावत् वैमानिक तक आठ कर्मप्रकृतियाँ समझनी चाहिए।

विवेचन - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, ये आठ कर्म प्रकृतियाँ हैं। सभी संसारी जीवों में ये आठों कर्म प्रकृतियाँ पाई जाती है। इनका स्वरूप इस प्रकार है -

१. ज्ञानावरणीय - पदार्थों के विशेष धर्म को जानना ज्ञान है। जिस कर्म द्वारा ज्ञान का आवरण हो, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे घाणी के बैल की आँखों पर पट्टी बांध देने से उसे नहीं दिखाई देता उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से आत्मा पदार्थ के विशेष स्वरूप को नहीं जान पाती, उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

२. दर्शनावरणीय - पदार्थ की सत्ता-सामान्य धर्म को जानना दर्शन है। जिस कर्म के द्वारा दर्शन का आवरण हो, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाल के समान है। जैसे द्वारपाल जिस पुरुष से नाराज है उसे राजा के पास जाने से रोक देता है चाहे राजा उसे देखना भी चाहता हो। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के दर्शन में रुकावट उत्पन्न करता है।

३. वेदनीय - अनुकूल और प्रतिकूल विषयों की प्राप्ति होने पर जो सुख दुःख रूप से अनुभव किया जाय, वह वेदनीय कर्म है। शहद लिपटी तलवार की धार के समान यह वेदनीय कर्म है। शहद को चाटने के समान साता वेदनीय है और धार से जीभ कट जाने के समान असातावेदनीय है।

४. मोहनीय - जिस कर्म के उदय से आत्मा अच्छे बुरे के विवेक को खो देती है, हित अहित को नहीं समझती, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। यह कर्म मदिरा के समान है। मदिरा पीने से जैसे प्राणी अपना विवेक खो देता है, अपना भूला बुरा नहीं सोच सकता, इसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय से जीव हित, अहित, अच्छे, बुरे का विवेक खो देता है तथा बेभान हो जाता है।

५. आयुष्य - जिस कर्म के उदय से जीव स्व कर्मोपार्जित नरकादि गति में नियत काल तक रहता है, उसे आयु कर्म कहते हैं। यह कर्म कारागार के समान है। जैसे कैदी को कारागार की अवधि समाप्त होने तक कारागार में रहना पड़ता है, पहले नहीं छूट सकता, उसी प्रकार जीव को आयुष्य कर्म के उदय से निश्चित काल तक नरक आदि गतियों में रहना पड़ता है।

६. नाम - जिस कर्म से जीव नरकादि गति पा कर विविध पर्यायों का अनुभव करता है उसे नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म चित्रकार के समान है। जैसे चित्रकार विविध रंगों से विविध रूप बनाता है उसी प्रकार नाम कर्म के उदय से जीव अच्छे बुरे नाना प्रकार के रूप पाता है और विविध पर्यायों का अनुभव करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. गोत्र - जिस कर्म के उदय से जीव उच्च, नीच कुलों में जन्म लेकर उच्च नीच कहलाता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। यह कर्म कुम्भकार के समान हैं। जैसे कुम्भकार अनेक तरह के घड़े बनाता है। उनमें कुछ घड़े कलश रूप होते हैं और अक्षत चन्दन आदि से पूजने योग्य होते हैं तथा कुछ घड़े शराब आदि घृणित पदार्थों के रखने योग्य होने से घृणास्पद होते हैं।

८. अन्तराय - जिस कर्म के उदय से जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य-पराक्रम में अन्तराय यानी विघ्न बाधा उपस्थित होती है, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। यह कर्म भण्डारी के समान है। जैसे राजा किसी याचक को दान देना चाहता है और दान देने के लिए आज्ञा भी देता है किन्तु भण्डारी उसमें बाधा उत्पन्न कर राजा की इच्छा और आज्ञा को सफल नहीं होने देता। इसी प्रकार अन्तराय कर्म भी जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न रूप होता है और जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य से वंचित कर देता है।

क्रम का कारण - ज्ञानावरणीय आदि कर्म का उपरोक्तानुसार क्रम रखने का कारण इस प्रकार समझना चाहिये - ज्ञान और दर्शन जीव का स्वरूप है क्योंकि इनके अभाव में जीवत्व संभव नहीं है। ज्ञान और दर्शन में भी ज्ञान प्रधान है क्योंकि ज्ञान से ही सभी शास्त्र आदि के विचार की परम्परा चलती है और सभी लब्धियाँ भी साकार उपयोग वाले जीव को ही उत्पन्न होती है - **"सव्वाओ लद्धीओ सागारोवओवउत्तस्स, न अणागारोवओवउत्तस्स"** - सर्व लब्धियाँ साकार उपयोग वाले को प्राप्त होती है किन्तु अनाकार उपयोग वाले को प्राप्त नहीं होती-ऐसा शास्त्र वचन प्रमाण रूप है। इसके अलावा जिस समय जीव सर्व कर्म से विमुक्त होता है उस समय ज्ञानोपयोग वाला होता है परन्तु दर्शनोपयोग वाला नहीं होता क्योंकि उसे दूसरे समय में दर्शनोपयोग होता है इसलिए ज्ञान प्रधान है। ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म सबसे पहले कहा है। इसके बाद दर्शनावरणीय कर्म कहा है क्योंकि ज्ञानोपयोग से गिर कर जीव दर्शनोपयोग में आता है। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय अपना विपाक दिखाते हुए यथायोग्य रूप से सुख दुःख रूप वेदनीय कर्म के विपाक का निमित्त होते हैं। जैसे अत्यंत उपचित बने हुए ज्ञानावरणीय कर्म के विपाक का अनुभव करते, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर वस्तु का विचार करने में अपने को असमर्थ मानते हुए बहुत से लोग खेदित होते हैं और ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न हुई बुद्धि की पटुता से युक्त होकर सूक्ष्म और सूक्ष्मतर वस्तुओं को अपनी प्रज्ञा से जानते हुए बहुत से मनुष्य अपने को श्रेष्ठ मान कर सुख का अनुभव करते हैं। अति गाढ दर्शनावरण के विपाकोदय से बहुत से जीव जन्मान्धता आदि दुःख का अनुभव करते हैं तो दर्शनावरणीय कर्म की क्षयोपशम जन्य पटुता युक्त प्राणी स्पष्ट चक्षु आदि इन्द्रियों सहित यथार्थ रूप से वस्तुओं को देखते हुए प्रमोद का अनुभव करता है इसलिए दर्शनावरणीय कर्म के बाद वेदनीय कर्म का ग्रहण किया गया है। वेदनीय कर्म इष्ट और अनिष्ट विषयों के संबंध से सुख दुःख उत्पन्न करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इष्ट और अनिष्ट विषयों के संबंध में संसारी प्राणी को राग द्वेष अवश्य होता है और राग-द्वेष मोहनीय के निमित्तक है। इसीलिए वेदनीय के बाद मोहनीय कर्म लिया गया है। मोहनीय कर्म से मूढ बने प्राणी अत्यंत आरंभ और परिग्रह में आसक्त होकर नरक आदि का आयुष्य बांधते हैं इसलिए मोहनीय कर्म के बाद आयुष्य कर्म का ग्रहण किया गया है। नरक आदि आयुष्य के उदय में नरक गति आदि नाम कर्म का अवश्य उदय होता है इसलिए आयुष्य के बाद नाम कर्म लिया गया है। नाम कर्म के उदय से उच्च या नीच गोत्र कर्म का अवश्य विपाकोदय होता है अतः नाम कर्म के बाद गोत्र कर्म का कथन किया गया है। गोत्र कर्म के उदय में उच्च गोत्र में उत्पन्न हुए प्राणी को प्रायः दानान्तराय, लाभान्तराय आदि का क्षयोपशम होता है तो राजा आदि प्रमुख लोगों में देखा जाता है तथा नीच कुल में उत्पन्न हुए प्राणी को दानान्तराय लाभान्तराय आदि का उदय होता है क्योंकि हीन जातियों में प्रायः ऐसा देखा जाता है इसलिए गोत्र कर्म के बाद अन्तराय कर्म का ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार प्रथम द्वार का कथन करने के बाद अब सूत्रकार दूसरे द्वार-कर्म बन्ध के प्रकार का निरूपक द्वार में जीव इन आठ कर्म प्रकृतियों को किस प्रकार बांधता है इसका प्रतिपादन करते हैं -

द्वितीय द्वार

कर्म बंध के प्रकार

कहं णं भंते! जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जं कम्मं णियच्छइ, दंसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं णियच्छइ, दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मिच्छत्तं णियच्छइ, मिच्छत्तेणं उदिएणं गोयमा! एवं खलु जीवो अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ।

कठिन शब्दार्थ - णियच्छइ - निर्गच्छति-अवश्य प्राप्त होता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव आठ कर्म प्रकृतियों को किस प्रकार बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव दर्शनावरणीय कर्म को निश्चय ही प्राप्त करता है, दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव दर्शनमोहनीय कर्म को प्राप्त करता है। दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व को निश्चय ही प्राप्त करता है और हे गौतम! इस प्रकार मिथ्यात्व के उदय होने पर जीव निश्चय ही आठ कर्म प्रकृतियों को बांधता है।

विवेचन - जीव का मूलभूत गुण ज्ञान-दर्शनोपयोग है। इनका जितना जितना तीव्र (गाढ़) आवरण होगा उतना उतना दर्शनावरणीय का भी तीव्र आवरण होगा (क्योंकि दोनों सहभावी होते हैं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इनके आवरण से जितनी ज्ञानादि की मन्दता होगी उतनी ही दर्शनमोहनीय के उदय प्राप्त होने से मूढ़ता अधिक होगी। फिर उस मूढता से मिथ्यात्व को उदय प्राप्त करता है-अर्थात् मिथ्यात्व को गाढ़ करता है। इस प्रकार के मिथ्यात्व के उदय प्राप्त होने से जीव आठ कर्म प्रकृतियों को बान्धता है। अनादि काल से (बहुलता से) जीवों के कर्म बन्धन का इस प्रकार का क्रम चल रहा है। इसलिए उसका संसार परिभ्रमण चालू ही है। इसमें सबसे पहली गलती तो हमारी गफलत (असावधानी) है। अर्थात् हमने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय के आवरण को दूर नहीं किया, इसलिए दर्शन मोह के शक्तिशाली डाकू तो आयेंगे ही। असावधानी में ही डाकूओं का जोर बढ़ता है। जैसे मकान का द्वार खुला होवे तो चोर आयेंगे ही। दर्शन मोहनीय के तीनों भेदों में भी मिथ्यात्व मोहनीय मुख्य होने से वह ही आयेगा। मिथ्यात्व के क्षयोपशम से उसको अन्य धर्मों पर दृढ़ श्रद्धा होती है। जैसे हालाहालीन कुंभकारीन को आजीविकमत पर दृढ़ श्रद्धा (**अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते**) थी मिथ्यात्व होने से ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से ज्ञान बढ़ने पर भी वह पीलिये के रोगी की तरह होता है। आँख के औजार की शक्ति तेज होने पर भी विपरीत देखता है। अर्थात् मिथ्यात्व के उदय प्राप्त में भी ज्ञानावरणीय आदि के क्षयोपशम से ज्ञान आदि बढ़ सकता है।

कहं णं भंते! णेरइए अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! एवं चेव, एवं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक आठ कर्मप्रकृतियों को किस प्रकार बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार नैरयिक आठ कर्म प्रकृतियों को बांधता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए।

कहण्णं भंते! जीवा अट्ठ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! एवं चेव, एवं जाव वेमाणिया॥ ५९९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से जीव आठ कर्म प्रकृतियाँ किस प्रकार बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पूर्ववत् जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् बहुत-से वैमानिकों तक समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव किस प्रकार इन कर्म प्रकृतियों को बांधता है इसका निरूपण किया गया है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से दर्शनावरणीय कर्म का उदय होता है। यहाँ पर दर्शनमोहनीय में मिथ्यात्व मोहनीय का ही ग्रहण किया गया है। क्योंकि अनादि मिथ्यात्वी के शेष दो भेद नहीं होते हैं। दर्शन मोहनीय का ही अविशुद्ध रूप मिथ्यात्व मोहनीय कहा जाता है। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से दर्शन मोहनीय कर्म का उदय होता है। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व का उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से जीव आठ कर्म प्रकृतियाँ बांधता है। बहुधा ऐसा होता है इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण यह नियम बताया गया है। वैसे सम्यग्दृष्टि भी आठ कर्म बांधता है उसके मिथ्यात्व का उदय नहीं होता है। सूक्ष्म संपराय आदि गुणस्थान वाले आठ कर्म भी नहीं बांधते हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्व कर्म के परिणाम से उत्तर कर्म उत्पन्न होता है जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से पत्र आदि। कहा है -

जीव परिणाम हेऊ, कम्मत्ता पोग्गला परिणमंति।

पुग्गल कम्म निमित्तं, जीवो वि तहेव परिणमइ॥

अर्थात् - जीव के परिणाम से पुद्गल कर्म रूप से परिणत होते हैं और कर्म पुद्गलों के कारण जीव का वैसा परिणाम होता है।

तृतीय द्वार

कर्म बंध के कारण

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधइ?

गोयमा! दोहिं ठाणेहिं, तंजहा - रागेण य दोसेण य। रागे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-माया य लोभे य। दोसे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - कोहे य माणे य, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं विरओवग्गहिएहिं एवं खलु जीवे णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ, एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

कठिन शब्दार्थ - **विरओवग्गहिएहिं** - वीर्योपगृहितैः-वीर्य से उपगृहित-उपस्थित। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से कृत योगों के उपग्रह से। वीर्य हेतु (कारण) है और योग कार्य है। यहाँ पर करण वीर्य की अपेक्षा कथन है। चौदहवें गुणस्थान में लब्धि वीर्य होने से योगों की प्रवृत्ति नहीं होती है।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जीव कितने स्थानों से ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव दो स्थानों से ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है यथा - राग से और द्वेष से। राग दो प्रकार का कहा है, यथा - माया और लोभ। द्वेष भी दो प्रकार का कहा गया है, यथा - क्रोध और मान। इस प्रकार जीव वीर्य से उपार्जित चार स्थानों से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है। नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव किन-किन कारणों से कर्म प्रकृतियाँ बांधता है? इसका निरूपण किया गया है। जीव राग और द्वेष इन दो स्थानों से ज्ञानावरणीय आदि कर्म प्रकृतियाँ बांधता है। माया और लोभ राग रूप हैं तथा क्रोध और मान द्वेष रूप हैं। इस प्रकार वीर्य (शक्ति) से उपार्जित चार कारणों से जीव आठ कर्म प्रकृतियाँ बांधता है। आठ कर्म बांधने के ये सामान्य कारण यहाँ बताये गये हैं। भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ९ में आठ कर्मों के बन्ध के अलग-अलग कारण बताये हैं। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधंति?

गोयमा! दोहिं ठाणेहिं एवं चेव। एवं णेरइया जाव वेमाणिया। एवं दंसणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, एवं एए एगत्तपोहत्तिया सोलस दंडगा॥ ६००॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव कितने स्थानों (कारणों) से ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत जीव पूर्वोक्त दो कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं।

इसी प्रकार बहुत से नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिए। दर्शनावरणीय से लेकर यावत् अन्तरायकर्म तक कर्मबन्ध के ये ही कारण समझने चाहिए।

इस प्रकार एकत्व-एकवचन और बहुत्व-बहुवचन की विवक्षा से ये सोलह दण्डक होते हैं तथा उन दो के भी पूर्ववत् चार प्रकार समझने चाहिए।

चौथा द्वार

वेदन की जाने वाली कर्म प्रकृतियों की गणना

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ?

गोयमा! अत्थेगइए वेएइ, अत्थेगइए णो वेएइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता है?

उत्तर - हे गौतम! कोई जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता है और कोई जीव वेदन नहीं करता है।

णेरइए णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ?

गोयमा! णियमा वेएइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म का नियम से वेदन करता है।

एवं जाव वेमाणिए, णवरं मणूसे जहा जीवे।

भावार्थ - असुरकुमार से लेकर यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु मनुष्य के विषय में जीव के समान समझना चाहिए।

विवेचन - जिस जीव ने घाती कर्मों का क्षय कर दिया है वह ज्ञानावरणीय कर्म नहीं वेदता, शेष सभी जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हैं।

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेंति?

गोयमा! एवं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या बहुत जीव ज्ञानावरणीयकर्म का वेदन-अनुभव करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पूर्ववत् सभी कथन जानना चाहिए।

एवं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - इसी प्रकार बहुत से नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए।

एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दंसणावरणिज्ज मोहणिज्जं अंतराइयं च,

भावार्थ - जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के सम्बन्ध में कथन किया गया है, उसी प्रकार दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तरायकर्म के वेदन के विषय में समझना चाहिए।

वेयणिज्जाउयणामगोयाइं एवं चेव, णवरं मणूसे वि णियमा वेएइ,

भावार्थ - वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के जीव द्वारा वेदन के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि मनुष्य इन चारों कर्मों का वेदन नियम से करता है।

एवं एए एगत्तपोहत्तिया सोलस दंडगा॥ ६०१॥

भावार्थ - इस प्रकार एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा से ये सोलह दण्डक होते हैं।

विवेचन - ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म वेदने का कह देना चाहिए। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार कर्म जीव वेदता भी है और नहीं भी वेदता है। सिद्धात्माओं ने इन चारों अघाती कर्मों का क्षय कर दिया है इसलिए ये इन कर्मों को नहीं वेदते। शेष सभी जीव नियम पूर्वक इन चारों कर्मों को वेदते हैं।

पांचवां द्वार

किस कर्म प्रकृति का कितने प्रकार का विपाक है?

णाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स पुट्ठस्स बद्धफासपुट्ठस्स संचियस्स चियस्स उवचियस्स आवागपत्तस्स विवागपत्तस्स फलपत्तस्स उदयपत्तस्स जीवेणं कडस्स जीवेणं णिव्वत्तियस्स जीवेणं परिणामियस्स सयं वा उदिण्णस्स परेण वा उदीरियस्स तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स गइं पप्प ठिइं पप्प भवं पप्प पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

गोयमा! णाणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - सोयावरणे १, सोयविण्णाणावरणे २, णेत्तावरणे ३, णेत्तविण्णाणावरणे ४, घाणावरणे ५, घाणविण्णाणावरणे ६, रसावरणे ७, रसविण्णाणावरणे ८, फासावरणे ९, फासविण्णाणावरणे १०, जं वेएइ पोग्गलं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं, तेसिं वा उदएणं जाणियव्वं ण जाणइ, जाणिउकामे वि ण जाणइ, जाणित्ता वि ण जाणइ, उच्छण्णणाणी यावि भवइ णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, एस णं गोयमा! णाणावरणिज्जे कम्मे, एस णं गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प दसविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०२॥

कठिन शब्दार्थ - **बद्धस्स** - बद्ध-बांधे हुए अर्थात् कर्म रूप में परिणत किये हुए, **पुट्ठस्स** - स्पृष्ट-आत्म प्रदेश के साथ संबंध को प्राप्त, **बद्धफासपुट्ठस्स** - बद्धस्पर्शस्पृष्टस्य-पुनः गाढ रूप से बद्ध और अत्यंत स्पर्श से स्पृष्ट अर्थात् आवेष्टन परिवेष्टन रूप से अत्यंत गाढ बंधे हुए, **संचियस्स** - संचितस्य-अबाधाकाल को छोड़कर बाद के काल में वेदन के योग्य रूप में निषेक-रचना को प्राप्त हुए, **चियस्स** - चितस्य-जो चय को प्राप्त हुआ है-अर्थात् उत्तरोत्तर स्थिति में प्रदेश की हानि और रस की वृद्धि से अवस्थित, **उवचियस्स** - उपचितस्य-समान जाति की अन्य प्रकृतियों के दलिकों में संक्रमण करके उपचय को प्राप्त, **आवागपत्तस्स** - आपाक प्राप्तस्य-कुछ विपाकावस्था के अभिमुख बने हुए, **विवागपत्तस्स** - विपाकप्राप्तस्य-विशिष्ट विपाकावस्था को प्राप्त, **फलपत्तस्स** - फलप्राप्तस्य-फल देने को अभिमुख बने हुए, **उदयपत्तस्स** - उदयप्राप्त-जो सामग्रीवशात् उदय को प्राप्त है, (कर्म बन्धन से बद्ध जीव के द्वारा उपार्जित।)

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध, स्पृष्ट, बद्ध और स्पृष्ट किये हुए, संचित, चित और उपचित किये हुए, कुछ विपाक को प्राप्त, विशिष्ट विपाक को प्राप्त, फल को प्राप्त, उदय को प्राप्त, जीव के द्वारा कृत, जीव के द्वारा निर्वर्तित-सामान्य रूप से किये हुए जीव के द्वारा परिणामित, स्वयं के द्वारा उदीर्ण उदय को प्राप्त, दूसरे के द्वारा उदीरित या स्व और पर के निमित्त से उदीरणा को प्राप्त, ज्ञानावरणीय कर्म का, गति को प्राप्त करके, स्थिति को प्राप्त करके, भव को, पुद्गल को तथा पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके कितने प्रकार का अनुभाव (विपाक) फल कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त ज्ञानावरणीय कर्म का दस प्रकार का अनुभाव कहा गया है जो इस प्रकार है - १. श्रोत्रावरण २. श्रोत्रविज्ञानावरण ३. नेत्रावरण ४. नेत्रविज्ञानावरण ५. घ्राणावरण ६. घ्राणविज्ञानावरण ७. रसावरण ८. रसविज्ञानावरण ९. स्पर्शावरण और १०. स्पर्शविज्ञानावरण।

जिस पुद्गल को अथवा जिन पुद्गलों को या पुद्गल-परिणाम को अथवा विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम को वेदता है, उनके उदय से जानने योग्य को नहीं जानता, जानने की इच्छा वाला होकर भी नहीं जानता, जानकर भी नहीं जानता अथवा ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से आच्छादित ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला होता है। हे गौतम! यह ज्ञानावरणीयकर्म है। हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके ज्ञानावरणीयकर्म का दस प्रकार का यह अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - ज्ञानावरणीय कर्म जीव द्वारा किस प्रकार बांधा हुआ है इसका प्रस्तुत सूत्र में कथन किया गया है।

ज्ञानावरणीय कर्म का विपाक (फल-अनुभाव) दस प्रकार का बताया गया है। परन्तु इसमें अवधि, मन:पर्यव ऐसे भेद निहित किये गये हैं क्योंकि प्राय: करके अधिक जीवों में अवधि आदि तो होती ही नहीं है केवलज्ञान का तो प्राय: अभाव ही रहता है अत: ज्ञानावरणीय के वेदन में जीवों को अवधि आदि की वैसी आकांक्षा (चाहना) कम ही रहती है किन्तु इन्द्रियों के अभाव और इन्द्रियों के विज्ञान में वे ज्ञानावरण का अनुभव करते हैं। इसलिए मुख्य वृत्ति (दृष्टि) से इन्द्रिय और इन्द्रिय विज्ञान को ही विपाक अनुभव का कारण बताया गया है। वैसे ज्ञानावरणीय के भेदों में अवधि, मन:पर्यव ज्ञानावरणीय आदि भेद भी किये ही हैं। अत: गौण वृत्ति से तो अवधि ज्ञानावरण आदि को भी ज्ञानावरणीय के विपाक में बता दिया गया है, ऐसा समझना चाहिए।

जीवेण कडस्स - कर्म बंधन से बंधे हुए जीव द्वारा कृत-किया हुआ। जीव उपयोग स्वभाव वाला है इसलिए वह रागादि परिणति वाला होता है। रागादि परिणाम वाला होकर वह कर्म करता है और वह रागादि परिणाम कर्म बंधन से बंधे हुए जीव के ही होता है, कर्म बंधन से मुक्त सिद्ध जीव के नहीं। अत: जीव के द्वारा कृत का आशय है कर्म बंधन से बद्ध जीव के द्वारा उपार्जित (किया हुआ)। कहा भी है -

"जीवस्तु कर्म बन्धन-बद्धो, वीरस्य भगवतः कर्त्ता।
सन्तत्याऽनाद्यं च तदिष्टं कर्मात्मनः कर्त्तुः॥"

अर्थात् - कर्म बन्धन से बद्ध जीव ही कर्म का कर्त्ता है। प्रवाह की अपेक्षा से कर्म बन्धन अनादि है। अनादिकालिक कर्म बन्धन बद्ध जीव ही कर्मों का कर्त्ता है ऐसा भगवान् महावीर स्वामी को इष्ट है।

जीवेणं णिव्वत्तियस्स - जीव के द्वारा निर्वर्तित-निष्पादित। कर्म बंधन के समय जीव सर्वप्रथम कर्म वर्गणा के सामान्य पुद्गलों को ही ग्रहण करता है उस समय ज्ञानावरणीय आदि भेद नहीं होता। तत्पश्चात् अनाभोग वीर्य से उसी कर्म बन्धन के समय ज्ञानावरणीय आदि विशेष रूप से व्यवस्थित करता है जैसे आहार को रसादि रूप में परिणत किया जाता है इसी प्रकार साधारण कर्म वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके ज्ञानावरणीय आदि रूप में परिणत करना 'निर्वर्तन' कहलाता है।

जीवेण परिणामियस्स - जीव के द्वारा परिणामित अर्थात् प्रद्वेष और निह्नव आदि रूप कर्म बन्धन के विशेष हेतुओं से उत्तरोत्तर परिणाम को प्राप्त किया हुआ।

सयं वा उदिण्णस्स - स्वयं विपाक को प्राप्त हुए होने से दूसरों की अपेक्षा बिना उदय में आये हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परेण वा उदीरियस्स - अन्य निमित्त से उदय में आये हुए।

तदुभएण वा उदीरिज्जमाणस्स - स्वतः और अन्य निमित्त से उभय रूप उदय में आये हुए।

गई पप्प - गति को प्राप्त करके। कर्म का विपाक गति की अपेक्षा होता है। जैसे नरक गति को प्राप्त करके असाता वेदनीय तीव्र विपाक वाला होता है। असाता वेदनीय कर्म का उदय नैरयिकों के जितना तीव्र होता है उतना तीव्र तिर्यंच आदि को नहीं होता है।

ठिइं पप्प - स्थिति को प्राप्त करके अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त करके अशुभ कर्म मिथ्यात्व के समान तीव्र विपाक वाला होता है।

भवं पप्प - भव को प्राप्त करके अर्थात् भव विशेष को प्राप्त करके कोई कर्म अपना विपाक बताने में समर्थ होता है जैसे कि निद्रा मनुष्य भव या तिर्यंच भव को प्राप्त विपाक बताती है।

ये सब स्वतः उदय के कारण बताये हैं क्योंकि ज्ञानावरणीय आदि कर्म उस उस गति, स्थिति और भव को प्राप्त करके स्वयं उदय में आता है।

अब कर्म का पर निमित्त की अपेक्षा से उदय बताते हैं -

पोग्गलं पप्पं - पुद्गल को प्राप्त करके अर्थात् काष्ठ, ढेला और तलवार आदि के योग से कर्म का उदय होता है यानी किसी के द्वारा फैंके हुए काष्ठ, ढेला और तलवार आदि पुद्गलों को प्राप्त करके असातावेदनीय और क्रोध आदि का उदय होता है।

पोग्गल परिणामं पप्प - पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके अर्थात् कोई कर्म पुद्गल परिणाम की अपेक्षा विपाक को प्राप्त होते हैं जैसे खाये हुए आहार के अजीर्ण परिणाम की अपेक्षा असाता वेदनीय और मदिरा पान के कारण ज्ञानावरणीय कर्म विपाक को प्राप्त होता है।

इन्द्रिय आवरण और इन्द्रिय विज्ञान आवरण का अर्थ और इन में परस्पर साहचर्य -

१. इन्द्रिय आवरण - शब्दादि विषयों को देखने व सुनने आदि में कमी होना।

२. विज्ञान आवरण - स्पष्ट देख सुनकर भी विषय का बराबर ज्ञान (अनुभव) नहीं करना अथवा संदिग्ध अनुभव करना अथवा एक साथ अनेक रूप आदि विषयों को स्पष्ट नहीं समझना विज्ञान का आवरण है।

ज्ञानावरणीय कर्म का विपाक श्रोत्रावरण आदि दस प्रकार का कहा गया है - **१. श्रोत्रावरण**- श्रोत्रेन्द्रिय (कान) विषयक लब्धि (क्षयोपशम) का आवरण होना अर्थात् कान के मिलने पर भी सुनने की शक्ति नष्ट हो जाना या मन्द हो जाना। **२. श्रोत्र विज्ञानावरण** - श्रोत्रेन्द्रिय के उपयोग का आवरण होना अर्थात् कानों से सुनने पर भी उसका अर्थ नहीं समझना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'श्रोत्र' से श्रोत्रेन्द्रिय विषयक क्षयोपशम (लब्धि) का ग्रहण किया गया है। 'श्रोत्र विज्ञान' से 'श्रोत्रेन्द्रिय का उपयोग' ग्रहण किया गया है। इनका आवरण 'श्रोत्रावरण' और 'श्रोत्र विज्ञानावरण' है। इसी तरह ३. नेत्रावरण ४. नेत्रविज्ञानावरण ५. घ्राणावरण ६. घ्राणविज्ञानावरण ७. रसावरण ८. रसविज्ञानावरण ९. स्पर्शावरण १०. स्पर्शविज्ञानावरण के विषय में भी समझना चाहिये।

नेत्रावरण - जैसे मोतियाबिन्द, कालापानी आदि होने से नहीं दिखना।

नेत्रविज्ञानावरण - दिखता तो बराबर है परन्तु पहिचान बराबर नहीं होती जैसे सामान्य व्यक्ति एवं चतुर व्यक्ति दोनों के द्वारा धूर्त को देखने पर वह चतुर व्यक्ति उसकी शक्ल, हावभाव आदि से पहिचान लेता है।

स्पर्शनावरण - स्पर्श शक्ति की मन्दता होना या स्पर्श का अनुभव ही नहीं होना। जैसे पूरे शरीर में लकवा हो जावे तो स्पर्श का अनुभव ही नहीं होता है। यहाँ स्पर्शनेन्द्रिय नहीं होना ऐसा अर्थ नहीं करना क्योंकि सभी जीवों (छद्मस्थों) में स्पर्शनेन्द्रिय तो होती ही है।

स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण कैसे समझना - स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण अपर्याप्त की अपेक्षा संभव होता है। जब स्पर्श इन्द्रिय की पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई होती है। इसके सिवाय जिसके स्पर्शनेन्द्रिय बराबर काम करने में सक्षम न हो अथवा लकवा (पक्षाघात) आदि रोगों के कारण से उसका स्पर्श बाधित हो तब स्पर्शन इन्द्रिय का आवरण संभव हो सकता है।

स्पर्शविज्ञानावरण - स्पर्श का अनुभव होने पर भी ज्ञान की मन्दता से उसका मालूम नहीं पडना।

सारांश - स्पर्शावरण में सामान्य अनुभव का नहीं होना। स्पर्श विज्ञानावरण में विशेष अनुभव का नहीं होना समझना चाहिए। खींचन के किसी भाई को मामा-भानजा में मालूम नहीं पड़ता। इसी तरह गर्म, ठण्डा, स्पर्श का मालूम नहीं होना स्पर्शनावरण है। मालूम होने पर भी ज्ञान नहीं होना। निगोद जीवों में स्पर्शावरण और स्पर्शविज्ञानावरण है तथा इन्द्रियों का क्षयोपशम भी है अतः इनमें से एक में विशेष अनुभव नहीं होना, एक में कम अनुभव का भी नहीं होना जैसे एक-ही दूरबीन से देखने पर भी विज्ञान में फर्क होता है-क्योंकि वह मतिज्ञान का विषय है। इन्द्रियाँ साधन है और इन्द्रियों से होने वाला विषय का बोध, ज्ञान (विज्ञान) है। इन्द्रियों के आवरण का क्षयोपशम होने से शब्द आदि विषयों का ग्रहण तो बराबर हो जाता है, परन्तु ज्ञान पर आवरण होने से जीव उनको बराबर समझ नहीं पाता है। अतः इन्द्रिय प्राप्ति के साथ विज्ञान का क्षयोपशम भी आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दरिसणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

गोयमा! दरिसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - णिद्दा १, णिद्दाणिद्दा २, पयला ३, पयलापयला ४, थीणद्धी ५ ❖, चक्खुदंसणावरणे ६, अचक्खुदंसणावरणे ७, ओहिदंसणावरणे ८, केवल-दंसणावरणे ९, जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं पासियव्वं ण पासइ पासिउकामे वि ण पासइ, पासित्ता वि ण पासइ, उच्छण्णदंसणी यावि भवइ दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, एस णं गोयमा! दरिसणावरणिज्जे कम्मे, एस णं गोयमा! दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जीव पोग्गलपरिणामं पप्प णवविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीय कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को प्राप्त करके दर्शनावरणीय कर्म का नौ प्रकार का अनुभाव कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - १. निद्रा २. निद्रा-निद्रा ३. प्रचला ४. प्रचला-प्रचला तथा ५. स्त्यानर्द्धि एवं ६. चक्षुदर्शनावरण ७. अचक्षुदर्शनावरण ८. अवधिदर्शनावरण और ९. केवलदर्शनावरण। जिस पुद्गल को या जिन पुद्गलों को अथवा पुद्गल परिणाम को या विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम को वेदता है, अथवा उनके उदय से देखने योग्य को नहीं देखता, देखना चाहते हुए भी नहीं देखता, देखकर भी नहीं देखता। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से आच्छादित दर्शन वाला भी हो जाता है।

हे गौतम! यह दर्शनावरणीय कर्म है। हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को पाकर दर्शनावरणीय कर्म का नौ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - दर्शनावरणीय कर्म का विपाक नौ प्रकार का कहा गया है जो इस प्रकार है -

१. निद्रा - जिस निद्रा से सरलता पूर्वक जागा जा सके।

२. निद्रा-निद्रा - जो निद्रा बड़ी कठिनाई से भंग हो, ऐसी गाढ़ी नींद को निद्रा-निद्रा कहते हैं।

३. प्रचला - बैठे-बैठे या खड़े-खड़े आने वाली निद्रा 'प्रचला' कहलाती है।

❖ पाठान्तर-थीणगिद्धी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. प्रचला-प्रचला - चलते फिरते आने वाली निद्रा 'प्रचला-प्रचला' है।

५. स्त्यानर्द्धि - अत्यंत संक्लिष्ट कर्म परमाणुओं के वेदन से आने वाली निद्रा स्त्यानर्द्धि है। इस महानिद्रा में जीव अनेक गुणी अधिक शक्ति वाला हो कर प्रायः दिन में सोचे हुए असाधारण कार्य को रात्रि में कर डालता है ✣।

६. चक्षुदर्शनावरण - चक्षु-नेत्र के द्वारा होने वाले दर्शन-सामान्य उपयोग का आवृत्त हो जाना चक्षु दर्शनावरण है।

७. अचक्षुदर्शनावरण - नेत्र के अलावा शेष इन्द्रियों से होने वाले सामान्य उपयोग का आवृत्त होना।

८. अवधिदर्शनावरण - अवधिदर्शन का आवृत्त होना।

९. केवलदर्शनावरण - केवलदर्शन का आवृत्त होना।

दर्शनावरणीय कर्म का स्वतः और परतः उदय होता है। मूल पाठ में आये शब्दों का भावार्थ इस प्रकार है - **जं वेएइ पोग्गलं** - जिन कोमल शय्या आदि पुद्गल को वेदता है अथवा **पुग्गले वा** - जिन कोमल शय्या आदि बहुत पुद्गलों को वेदता है **पोग्गल परिणामं वा** - भैंस के दही आदि खाये हुए आहार के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम को वेदता है **वीससा वा पोग्गलाण परिणामं** - अथवा विस्रसा-स्वभाव जन्य पुद्गलों के परिणाम रूप वर्षाऋतु में बादल युक्त आकाश अथवा धारा बंध वृष्टिपात को वेदता है उससे निद्रा आदि के उदय की अपेक्षा दर्शन परिणाम का उपघात होने से परतः उदय कहा है। स्वतः उदय में दर्शनावरणीय कर्म पुद्गलों के उदय से परिणति का विघात होने से देखने योग्य वस्तु को देखता नहीं तथा दर्शन परिणाम से परिणमन की इच्छा वाला होते हुए भी यानी देखने की इच्छा वाला होते हुए भी जन्मान्धता आदि से दर्शन परिणाम का उपघात होने से देख नहीं सकता है। पूर्व में देख कर भी दर्शनावरणीय कर्म पद्गलों के उदय से बाद में देखता नहीं और तो क्या दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव आच्छादित दर्शन वाला भी होता है। अर्थात् आवरण की जितनी शक्ति होती है तदनुसार प्रच्छादित (ढका हुआ) दर्शन वाला भी होता है। यह दर्शनावरणीय कर्म है।

सायावेयणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पोग्गलपरिणामं पप्प कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

गोयमा! सायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - मणुण्णा सद्दा १, मणुण्णा रूवा २, मणुण्णा गंधा ३, मणुण्णा

✣ इसका विस्तृत वर्णन श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ ब्यावर द्वारा प्रकाशित ठाणाङ्ग सूत्र के नववें ठाणे में किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहां पर देखना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रसा ४, मणुण्णा फासा ५, मणोसुहया ६, वयसुहया ७, कायसुहया ८, जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं सायावेयणिज्जं कम्मं वेएइ, एस णं गोयमा! सायावेयणिज्जे कम्मे, एस णं गोयमा! सायावेयणिज्जस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - मणुण्णा - मनोज्ञ, **मणोसुहया** - मनः सुखता अर्थात् मन प्रसन्न रहना, **वयसुहया** - वाक् सुखता-वचन संबंधी सुख, **कायसुहया** - काय सुखता-शरीर का स्वस्थ एवं सुखी होना।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् पुद्गल परिणाम को पाकर सातावेदनीय कर्म का अनुभाव कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध सातावेदनीयकर्म का यावत् आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. मनोज्ञ शब्द २. मनोज्ञ रूप ३. मनोज्ञ गन्ध ४. मनोज्ञ रस ५. मनोज्ञ स्पर्श ६. मनःसुखता-मन का प्रसन्न रहना ७. वाक् सुखता-वचन संबंधी सुख और ८. कायसुखता-शरीर का स्वस्थ और सुखी होना। जिस पुद्गल का अथवा पुद्गलों का अथवा पुद्गल परिणाम का या विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है, अथवा उनके उदय से सातावेदनीय कर्म को वेदा जाता है। हे गौतम! यह सातावेदनीय कर्म है और हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध सातावेदनीयकर्म का यावत् आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - सातावेदनीय का आठ प्रकार का विपाक कहा गया है वह इस प्रकार है -

१. मनोज्ञ शब्द - बांसुरी, वीणा आदि बाहर से आते शब्द मनोज्ञ शब्द है। (यहाँ स्वयं के मनोज्ञ शब्द को ग्रहण नहीं करना क्योंकि उनका समावेश वचन सुख में होता है)।

२. मनोज्ञ रूप - स्वयं का, स्वयं की स्त्री का और स्वयं के चित्र आदि का मनोज्ञ रूप।

३. मनोज्ञ गंध - कपूर, फूल, इत्र आदि पदार्थों की मनोज्ञ गंध।

४. मनोज्ञ रस - इक्षु रस आदि मनोज्ञ रस।

५. मनोज्ञ स्पर्श - शय्या आदि का मनोज्ञ स्पर्श।

६. मनःसुखता - मनसि सुखं यस्य तस्यभावः-सुखकारक मनः-मन का सुख।

७. वाक् सुखता - वचन का सुख अर्थात् सभी के कान और मन को हर्ष उत्पन्न करने वाले वचन।

८. कायसुखता - शरीर का सुख यानी सुखी शरीर। ये आठ पदार्थ साता वेदनीय के उदय से प्राणियों को प्राप्त होते हैं। अतः आठ प्रकार का साता वेदनीय का विपाक कहा है।

यहाँ पर मनोज्ञ शब्द आदि के द्वारा - स्वयं को दूसरों के मनोज्ञ शब्द आदि का संयोग मिले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिससे साता का अनुभव हो। इस प्रकार मनोज्ञ शब्द आदि से स्वयं को साता सुख का कारण बताया गया है और '**मणो सुहया**' आदि से स्वयं के शुभ मन वचन प्रवर्तने से एवं स्वस्थ काया से होने वाला सुख बताया गया है। इसी प्रकार असाता वेदनीय के आठों अनुभाव में असाता एवं दुःख की अपेक्षा समझना चाहिए।

अब परतः सातावेदनीय का उदय बताते हैं - **जं वेएइ पुग्गलं** - जो पुष्पमाला और चन्दन आदि के पुद्गल को वेदता है-अनुभव करता है, **पोग्गले वा** - या माला और चन्दन आदि के बहुत से पुद्गलों को वेदता है।

पोग्गल परिणामं वा - या देश, काल, वय और अवस्था के योग्य आहार के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम को वेदता है।

वीससा वा पोग्गलाण परिणामं - जिस काल में इष्ट शीत और उष्ण आदि वेदना के प्रतीकार रूप विस्रसा से पुद्गलों के परिणाम को वेदता है जिससे मन का समाधान-स्वस्थता होने से सातावेदनीय कर्म का अनुभव करता है। अर्थात् साता वेदनीय कर्म का फल सुख भोगता है इस प्रकार पर के आश्रित उदय कहा गया है। अब स्वतः उदय कहते हैं - सातावेदनीय कर्म के स्वतः उदय होने से कभी-कभी मनोज्ञ शब्दादि के बिना भी सुख वेदता है जैसे तीर्थंकर आदि का जन्म होने पर नैरयिक जीव कुछ समय के लिए सुख का अनुभव करते हैं।

असायावेयणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं तहेव पुच्छा उत्तरं च, णवरं अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया, एस णं गोयमा! असायावेयणिज्जस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् असातावेदनीय कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इसका उत्तर भी पूर्ववत् सातावेदनीय कर्म सम्बन्धी कथन के समान जानना किन्तु विशेषता यह है कि 'मनोज्ञ' के स्थान पर 'अमनोज्ञ' तथा सुख के स्थान पर दुःख यावत् काया का दुःख समझना। हे गौतम! इस प्रकार असातावेदनीय का अनुभाव भी आठ प्रकार का कहा गया है।

विवेचन - असातावेदनीय कर्म का विपाक आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है-

१. अमनोज्ञ शब्द - गधा, ऊँट और अश्व आदि के द्वारा बोले जाने वाले मन को अप्रिय लगने वाले शब्द।

२. अमनोज्ञ रूप - अपना अथवा अपनी स्त्री आदि का अमनोज्ञ रूप।

३. अमनोज्ञ गंध - बैल, भैंस आदि के मृत कलेवर आदि की गंध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. अमनोज्ञ रस - स्वयं को जिसका अनुभव नहीं हो ऐसा दुःख देने वाले मन को अप्रिय लगने वाले रस।

५. अमनोज्ञ स्पर्श - कर्कश आदि अमनोज्ञ स्पर्श।

६. मनोदुःखता - मन संबंधी दुःख।

७. वाक् दुःखता - वचन का दुःख, अप्रिय वाणी।

८. काय दुःखता - शरीर संबंधी दुःख, दुःखी शरीर।

ये आठ पदार्थ असाता वेदनीय के उदय से प्राणियों को प्राप्त होते हैं। अतः आठ प्रकार असातावेदनीय का विपाक कहा गया है। परतः असातावेदनीय का उदय इस प्रकार होता है - विष, शस्त्र, कंटक आदि पुद्गल वेदता है-अनुभव करता है। विष, शस्त्र और कंटक आदि बहुत से पुद्गलों को वेदता है। अपथ्य आहार रूप पुद्गल परिणाम को वेदता है। विस्रसा-स्वभाव से अकाल में अनिष्ट शीतोष्ण आदि रूप पुद्गल परिणाम को वेदता है जिससे मन को असमाधान-अस्वस्थता होने से असाता वेदनीय कर्म का अनुभव होता है यानी असातावेदनीय कर्म का फल असाता-दुःख का अनुभव करता है। यह असातावेदनीय का परतः उदय है किन्तु बिना ही किसी दूसरे निमित्त के असातावेदनीय कर्म पुद्गलों के उदय से जो दुःख का अनुभव होता है वह स्वतः असातावेदनीय का उदय है। इस प्रकार असातावेदनीय कर्म कहा गया है।

मोहणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव कइविहे अणुभावे पण्णत्ते?

गोयमा! मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - सम्मत्तवेयणिज्जे, मिच्छत्तवेयणिज्जे, सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे, कसायवेयणिज्जे, णोकसायवेयणिज्जे। जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं मोहणिज्जं कम्मं वेएइ, एस णं गोयमा! मोहणिज्जे कम्मे। एस णं गोयमा! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् मोहनीयकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् मोहनीयकर्म का पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. सम्यक्त्व-वेदनीय २. मिथ्यात्व वेदनीय ३. सम्यग्-मिथ्यात्व वेदनीय ४. कषाय वेदनीय और ५. नो कषाय वेदनीय।

जिस पुद्गल का अथवा पुद्गलों का या पुद्गल परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

का अथवा उनके उदय से मोहनीय कर्म का वेदन किया जाता है। हे गौतम! यह मोहनीय कर्म का यावत् पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - मोहनीय कर्म का विपाक पांच प्रकार का कहा गया है जो इस प्रकार है -

१. सम्यक्त्व वेदनीय - जो मोहनीय कर्म सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति के रूप में वेदन करने योग्य होता है वह सम्यक्त्व वेदनीय है अर्थात् जिसका वेदन होने पर प्रशम आदि परिणाम उत्पन्न होता है वह सम्यक्त्व वेदनीय है।

२. मिथ्यात्व वेदनीय - जो मोहनीय कर्म मिथ्यात्व रूप में वेदन करने योग्य होता है उसे मिथ्यात्व वेदनीय कहते हैं अर्थात् देव आदि में अदेव आदि बुद्धि होना मिथ्यात्व वेदनीय है।

३. सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय - जिसका वेदन होने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप मिश्र परिणाम उत्पन्न होता है उसे सम्यक्त्व मिथ्यात्व वेदनीय कहते हैं।

४. कषाय वेदनीय - जो क्रोध आदि परिणाम का कारण है वह कषाय वेदनीय है।

५. नोकषाय वेदनीय - जो हास्य आदि परिणाम का कारण है वह नोकषाय वेदनीय है।

परतः मोहनीय कर्म का उदय इस प्रकार होता है-जिस पुद्‌गल विषय को वेदता है अथवा जिन पुद्‌गल विषयों को वेदता है, कर्म पुद्‌गल विशेष को ग्रहण करने में समर्थ देश आदि के अनुकूल आहार के परिणाम का वेदन करता है क्योंकि आहार के परिणाम विशेष से कदाचित् कर्म पुद्‌गलों में विशेषता होती है जैसे कि ब्राह्मी औषधि आदि के आहार परिणाम से ज्ञानावरणीय पुद्‌गलों का विशिष्ट क्षयोपशम होता है। कहा भी है -

"उदयक्खय खओवसमावि य जं च कम्मुणो भणिया।
दव्वं खेतं कालं भावं भवं च संपप्प॥"

अर्थात् - कर्म का उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के आश्रित कहे हैं। स्वभाव से पुद्‌गलों का अभ्र विकार आदि परिणाम-आकाश में बादलों आदि के विकार को देखने से विवेक-विरक्तता उत्पन्न होती है। जैसे कि -

आयुःशरजलधरप्रतिमं नराणां संपत्तयः कुसुमित द्रुमसार तुल्याः।
स्वप्नोपभोगसदृशा विषयोपभोगाः संकल्पमात्ररमणीयमिदं हि सर्व्वम्॥

मनुष्यों का आयुष्य शरद् ऋतु के बादलों के समान है, सम्पत्ति पुष्पित-पुष्प वाले वृक्ष के सार के समान है, विषयोपभोग स्वप्न दृष्ट वस्तुओं के उपभोग जैसे है वस्तुतः इस जगत् में जो भी रमणीय प्रतीत होता है वह कल्पना मात्र ही है। प्रशम आदि परिणाम के कारणभूत जो विस्रसा पुद्‌गल परिणाम का अनुभव होता है उसके सामर्थ्य से सम्यक्त्व वेदनीय आदि मोहनीय कर्म वेदा जाता है अर्थात् सम्यक्त्व वेदनीय आदि कर्म का फल प्रशम आदि रूप में वेदा जाता है यह परतः मोहनीय कर्म का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदय है। जो सम्यक्त्व वेदनीय आदि कर्म पुद्गलों के उदय से प्रशम आदि रूप फल का वेदन किया जाता है, वह स्वतः मोहनीय कर्म उदय है।

आउयस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं तहेव पुच्छा?

गोयमा! आउयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव चउव्विहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा-णेरइयाउए, तिरियाउए, मणुयाउए, देवाउए, जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं आउयं कम्मं वेएइ, एस णं गोयमा! आउए कम्मे, एस णं गोयमा! आउयकम्मस्स जाव चउव्विहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् आयुष्य कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् आयुष्यकर्म का चार प्रकार का अनुभाव कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. नैरयिकायु २. तिर्यंचायु ३. मनुष्यायु और ४. देवायु।

जिस पुद्गल अथवा पुद्गलों का, पुद्गल परिणाम का अथवा स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का या उनके उदय से आयुष्य कर्म का वेदन किया जाता है, हे गौतम! यह आयुष्यकर्म है। हे गौतम! यह आयुष्य कर्म का यावत् चार प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - आयुष्य कर्म का नैरयिकायुष्य आदि चार प्रकार का कहा गया है। आयुष्य कर्म का अपवर्तन करवाने में समर्थ जिस शस्त्र आदि पुद्गल का वेदन किया जाता है या बहुत से शस्त्र आदि रूप पुद्गलों को वेदा जाता है। विष मिश्रित अन्न आदि के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा विस्रसा-स्वभाव से आयुष्य का अपवर्तन करने में समर्थ शीत आदि रूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है जिससे वर्तमान भव के आयुष्य कर्म का अपवर्तन होने से नैरयिक आदि आयुष्य कर्म को वेदा जाता है। इस प्रकार परतः आयुष्य कर्म उदय कहा गया है। नैरयिक आयु कर्म आदि के पुद्गलों के उदय से जो नैरयिक आयु आदि कर्म का वेदन किया जाता है वह स्वतः आयु कर्म का उदय है।

सुहणामस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा?

गोयमा! सुहणामस्स णं कम्मस्स जीवे णं चउद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा- इट्ठा सद्दा १, इट्ठा रूवा २, इट्ठा गंधा ३, इट्ठा रसा ४, इट्ठा फासा ५, इट्ठा गई ६, इट्ठा ठिई ७, इट्ठे लावण्णे ८, इट्ठा जसोकित्ती ९, इट्ठे उट्ठाणकम्मबलवीरिय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसक्कारपरक्कमे १०, इट्ठस्सरया ११, कंतस्सरया १२, पियस्सरया १३, मणुण्णस्सरया १४, जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं सुहणामं कम्मं वेएइ, एस णं गोयमा! सुहणामकम्मे, एस णं गोयमा! सुहणामस्स कम्मस्स जाव चउद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् शुभ नामकर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् शुभ नामकर्म का चौदह प्रकार का अनुभाव कहा गया है। यथा - १. इष्ट शब्द २. इष्ट रूप ३. इष्ट गन्ध ४. इष्ट रस ५. इष्ट स्पर्श ६. इष्ट गति ७. इष्ट स्थिति ८. इष्ट लावण्य ९. इष्ट यशोकीर्ति १०. इष्ट उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम ११. इष्ट स्वर १२. कान्त स्वर १३. प्रिय स्वर और १४. मनोज्ञ स्वर।

जिस पुद्गल अथवा पुद्गलों का या पुद्गल परिणाम का अथवा विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा उनके उदय से शुभनामकर्म को वेदा जाता है, हे गौतम! यह शुभनामकर्म है तथा हे गौतम! यह शुभनामकर्म का यावत् चौदह प्रकार अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - शुभ नाम कर्म का चौदह प्रकार का विपाक कहा गया है जो इस प्रकार है - १. इष्ट शब्द - अपने ही मनचाहे शब्द इष्ट शब्द है। इसी प्रकार २. इष्ट रूप ३. इष्ट गंध ४. इष्ट रस और ५. इष्ट स्पर्श समझना चाहिए ६. इष्ट गति - मदोन्मत्त हस्ति आदि जैसी उत्तम चाल ७. इष्टस्थिति - सहज रूप में बैठने की स्थिति ८. इष्ट लावण्य - कान्ति विशेष या शारीरिक सौन्दर्य ९. इष्ट यशःकीर्ति -पराक्रम से होने वाली ख्याति को यश एवं दान पुण्य आदि से होने वाली ख्याति को कीर्ति कहते हैं १०. इष्ट उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम-उत्थान-शरीर की चेष्टा विशेष, कर्म-भ्रमण आदि, बल शारीरिक सामर्थ्य, वीर्य-आत्मा की शक्ति, पुरुषकार-आत्मजन्य स्वाभिमान विशेष पराक्रम-अभिमान का कार्य रूप में परिणत होना ११ इष्ट स्वर-वीणा आदि के समान वल्लभ स्वर १२. कान्त स्वर-मनोहर, सामान्य रूप से इच्छित स्वर १३. प्रिय स्वर - बार-बार अभिलाषा करने योग्य स्वर १४. मनोज्ञ स्वर - भाव-प्रेम नहीं होने पर भी अपने प्रति प्रीति उत्पन्न करने वाला मनोज्ञ कहलाता है और इस प्रकार का स्वर मनोज्ञ स्वर कहलाता है।

यहाँ पर इष्ट शब्द आदि स्वयं के ही लेने चाहिए क्योंकि नाम कर्म का यहाँ विपाक बताया है। कोई आचार्य-वीणा आदि वादिंत्रों से उत्पन्न शब्दों को इष्ट शब्द कहते हैं। वह उचित नहीं लगता है। इष्ट रस में नाम कर्म के उदय से स्वयं के वचनों में ऐसा रस होवे कि श्रोता को वचन क्षीर मधु के समान मधुर लगता है जैसे क्षीरासव, मधुरासव आदि लब्धि वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इष्ट स्वर में तो अपना स्वर इष्ट होना तथा इष्ट रस में अपने वचनों में माधुर्य समझना जैसे आम्र आदि वनस्पति में मधुर रस होता है।

वीणा आदि शुभ पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है जैसे वीणा के संबंध से इष्ट शब्द, पीठी के संबंध से इष्ट रूप, सुगंधी द्रव्य के संबंध से इष्ट गंध, ताम्बूल के संबंध से इष्ट रस, पट्ट-रेशमी वस्त्र के संबंध से इष्ट स्पर्श, शिबिका-पालखी के संबंध से इष्ट गति, सिंहासन के संबंध के इष्ट स्थिति, कुंकुम-केसर के योग से इष्ट लावण्य, दान के संबंध से यशःकीर्ति, राजा के योग से इष्ट उत्थान आदि और गुटिका के योग से इष्ट स्वर आदि होता है या ब्राह्मी औषधि आदि आहार के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम को वेदा जाता है या विस्रसा-स्वभाव से शुभ मेघ आदि पुद्गलों के परिणाम को वेदा जाता है जैसे वर्षाकालीन मेघों की घटा देख कर युवतियाँ इष्ट स्वरगान में प्रवृत्त होती है उसके प्रभाव से शुभनामकर्म का वेदन किया जाता है। यह परतः शुभनाम का उदय है। शुभ नाम कर्म के पुद्गलों के उदय से इष्ट शब्द आदि शुभ नाम कर्म का वेदन स्वतः शुभनाम कर्म का उदय है।

दुहणामस्स णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव, णवरं अणिट्ठा सद्दा जाव हीणस्सरया, दीणस्सरया, अणिट्ठस्सरया अकंतस्सरया, जं वेएइ सेसं तं चेव जाव चउद्दसविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ६०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् अशुभ नाम कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शुभ नाम कर्म की तरह अशुभनाम कर्म का अनुभाव भी चौदह प्रकार का कहा गया है, किन्तु इतनी विशेषता है कि इष्ट शब्द आदि के स्थान पर अनिष्ट शब्द आदि यावत् हीन स्वर, दीन स्वर, अनिष्ट स्वर और अकान्त स्वर आदि समझना चाहिये।

जिस पुद्गल आदि का वेदन किया जाता है यावत् अथवा उनके उदय से अशुभनामकर्म को वेदा जाता है। शेष सब पूर्ववत् यावत् अशुभ नाम कर्म का चौदह प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - अशुभ नाम कर्म का विपाक चौदह प्रकार का कहा गया है जो इस प्रकार है १. अनिष्ट शब्द २. अनिष्ट रूप ३. अनिष्ट गंध ४. अनिष्ट रस ५. अनिष्ट स्पर्श ६. अनिष्ट गति ७. अनिष्ट स्थिति ८. अनिष्ट लावण्य ९. अनिष्ट यशःकीर्ति १०. अनिष्ट उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम ११. अनिष्ट स्वर १२. अकांत स्वर १३. अप्रिय स्वर और १४. अमनोज्ञ स्वर।

अशुभ नाम कर्म का परतः और स्वतः उदय भी शुभनाम कर्म के अनुसार ही समझना चाहिये किन्तु वह शुभ से विपरीत अशुभ रूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उच्चागोयस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा?

गोयमा! उच्चागोयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - जाइविसिट्ठया १, कुलविसिट्ठया २, बलविसिट्ठया ३, रूवविसिट्ठया ४, तवविसिट्ठया ५, सुयविसिट्ठया ६, लाभविसिट्ठया ७, इस्सरियविसिट्ठया ८, जं वेएइ पोग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् उच्च गोत्र कर्म का कितने प्रकार का अनुभाव कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् उच्च गोत्र कर्म का आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. जाति विशिष्टता २. कुल विशिष्टता ३. बल विशिष्टता ४. रूप विशिष्टता ५. तप विशिष्टता ६. श्रुत विशिष्टता ७. लाभ विशिष्टता और ८. ऐश्वर्य विशिष्टता।

जो पुद्गल अथवा पुद्गलों का, पुद्गल परिणाम का या विस्रसा - स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा उनके उदय से उच्च गोत्र कर्म को वेदा जाता है यावत् यह उच्च गोत्र कर्म है, जिसका अनुभाव आठ प्रकार का कहा गया है।

विवेचन - उच्च गोत्र कर्म का विपाक आठ प्रकार का कहा गया है - १. जाति २. कुल ३. बल ४. रूप ५. तप ६. श्रुत ७. लाभ ८. ऐश्वर्य का विशिष्ट होना। जैसे - राजा आदि विशिष्ट पुरुष के संयोग से नीच जाति में जन्मा हुआ भी जाति सम्पन्न के समान लोकप्रिय हो जाता है। यह जाति विशिष्टता हुई। मल्ल आदि के संयोग से बल विशिष्टता होना या लकड़ी आदि घुमाने से शारीरिक बल में विशिष्टता होती है। विशेष प्रकार के उत्तम वस्त्रों एवं अलंकारों से रूप विशिष्टता होती है। पर्वत के शिखर आदि पर चढ़ कर आतापना लेने वाले को तप विशिष्टता होती है। मनोहर एकान्त पृथ्वी प्रदेश में स्वाध्याय करने वाले में श्रुत की विशिष्टता होती है। बहुमूल्य उत्तम लक्षण युक्त रत्न आदि (अपनी अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ पदार्थों को रत्न कहते हैं जैसे नर रत्न, स्त्री रत्न, अश्व रत्न, हस्ती रत्न आदि। यहाँ पर रत्न में एकेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय आदि यथायोग्य समझ लेना चाहिए।) के योग से लाभ विशिष्टता होती है। धन, स्वर्ण आदि के योग से ऐश्वर्य विशिष्टता होती है। इस प्रकार के पुद्गल या पुद्गलों को वेदा जाता है। दिव्य फल (अमर फल) आदि के आहार के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है। अथवा अकस्मात मेघ आदि के आगमन रूप विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का अनुभव किया जाता है। उसके प्रभाव से उच्च गोत्र कर्म का फल जाति विशिष्टता आदि का वेदन किया जाता है। यह परतः उच्च गोत्र कर्म का उदय है। उच्च गोत्र कर्म के पुद्गलों के उदय से जाति विशिष्टता आदि होना स्वतः उच्च गोत्र का उदय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीयागोयस्स णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव, णवरं जाइविहीणया जाव इस्सरियविहीणया, जं वेएइ पुग्गलं वा पोग्गले वा पोग्गलपरिणामं वा वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं तेसिं वा उदएणं जाव अट्ठविहे अणुभावे पण्णत्ते॥ ३०८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् नीचगोत्रकर्म का अनुभाव कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उच्च गोत्र की तरह ही नीचगोत्र का अनुभाव भी आठ प्रकार का कहा गया है, किन्तु इतनी विशेषता है कि जातिविहीनता यावत् ऐश्वर्य विहीनता कहना चाहिए। जिस पुद्गल का या पुद्गलों का अथवा पुद्गल परिणाम का या विस्रसा-स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का जो वेदन किया जाता है अथवा उन्हीं के उदय से नीच गोत्र कर्म का वेदन किया जाता है। हे गौतम! यह नीचगोत्रकर्म है और उसका आठ प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - नीच गोत्र कर्म का विपाक आठ प्रकार का कहा गया है - १. जाति २. कुल ३. बल ४. रूप ५. तप ६. श्रुत ७. लाभ और ८. ऐश्वर्य से हीन होना। उत्तम जाति और उत्तम कुल में उत्पन्न होने पर भी नीच आजीविका कर्म करने से या चांडाल स्त्री का सेवन करने से वह चांडाल के समान लोक में निंदनीय हो जाता है। यह जाति हीनता, कुल हीनता है। सुख शय्या आदि का योग नहीं होने से बल हीनता होती है। खराब वस्त्र आदि के योग से रूप हीनता होती है। पासत्था (शिथिलाचारी) आदि के संसर्ग से तपोविहीनता होती है। विकथा में तत्पर ऐसे कुसाधुओं की संगति से श्रुत विहीनता होती है। देश काल के अयोग्य खराब व्यापार से लाभ विहीनता होती है। खराब ग्रहों और खराब स्त्री के संबंध से ऐश्वर्य हीनता होती है। इस प्रकार से बहुत से पुद्गलों का वेदन किया जाता है। अथवा बैंगन आदि के आहार के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है क्योंकि बैंगन खाने से खुजली होती है और उसमें रूप विहीनता उत्पन्न होती है। मेघ के आगमन से विरुद्ध लक्षण रूप विस्रसा पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है। उसके प्रभाव से नीच गोत्र कर्म वेदा जाता है अर्थात् जाति आदि की विहीनता रूप नीच गोत्र कर्म का फल जाति आदि विहीनता से वेदा जाता है। यह नीच गोत्र कर्म का परतः उदय हुआ। नीच गोत्र कर्म पुद्गलों के उदय से जाति आदि हीनता का अनुभव किया जाता है। यह नीच गोत्र कर्म का स्वतः उदय है। इस प्रकार यह नीच गोत्र कर्म है जो आठ प्रकार से वेदा जाता है।

अंतराइयस्स णं भंते! कम्मस्स जीवेणं पुच्छा?

गोयमा! अंतराइयस्स णं कम्मस्स जीवेणं बद्धस्स जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते। तंजहा - दाणंतराए लाभंतराए भोगंतराए उवभोगंतराए वीरियंतराए, जं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेएइ पोग्गलं वा जाव वीससा वा पोग्गलाणं परिणामं वा तेसिं वा उदएणं अंतराइयं कम्मं वेएइ, एस णं गोयमा! अंतराइए कम्मे, एस णं गोयमा! जाव पंचविहे अणुभावे पण्णत्ते ॥ ६०१ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तेवीसइमस्स पयस्स पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव के द्वारा बद्ध यावत् अन्तरायकर्म का अनुभाव कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव के द्वारा बद्ध यावत् अन्तरायकर्म का अनुभाव पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. दानान्तराय २. लाभान्तराय ३. भोगान्तराय ४. उपभोगान्तराय और ५. वीर्यान्तराय।

जो पुद्गल का या पुद्गलों का अथवा पुद्गल परिणाम का या स्वभाव से पुद्गलों के परिणाम का वेदन किया जाता है अथवा उनके उदय से अन्तरायकर्म को वेदा जाता है। हे गौतम! यह अन्तरायकर्म है। हे गौतम! अन्तराय कर्म का पांच प्रकार का अनुभाव कहा गया है।

विवेचन - अन्तराय कर्म पांच प्रकार से भोगा जाता है - १. दानान्तराय २. लाभान्तराय ३. भोगान्तराय ४. उपभोगान्तराय और ५. वीर्यान्तराय। दान देने में अन्तराय-विघ्न रूप कर्म का होना दानान्तराय है। दानान्तराय, दानान्तराय कर्म का फल है और लाभान्तराय आदि, लाभान्तराय आदि कर्म का फल है। विशिष्ट प्रकार के रत्नादि पुद्गल या पुद्गलों का वेदन किया जाता है। विशिष्ट रत्न आदि पुद्गलों के संबंध से उस विषय में ही दानान्तराय कर्म का उदय होता है। उन रत्नादि के लिए सेंध आदि लगाने के उपकरण आदि के संबंध से लाभान्तराय कर्म का उदय होता है। उत्तम आहार के संबंध से अथवा अमूल्य वस्तु के संबंध से लोभ के कारण भोगान्तराय कर्म का उदय होता है। इसी प्रकार उपभोगान्तराय कर्म का उदय भी समझ लेना चाहिए। लकड़ी आदि की चोट से वीर्यान्तराय कर्म का उदय होता है। अथवा आहार और औषधि आदि के परिणाम रूप पुद्गल परिणाम का वेदन किया जाता है अर्थात् विशिष्ट प्रकार के आहार और औषधि के परिणाम से वीर्यान्तराय कर्म का उदय होता है। अथवा स्वभाव से विचित्र शीत आदि रूप पुद्गलों के परिणाम के वेदन से भी दानान्तराय आदि का उदय होता है। जैसे कि वस्त्र आदि दान देने की इच्छा होते हुए भी शीत आदि को देख कर दानान्तराय आदि के उदय से दान नहीं दे पाता है। यह परतः दानान्तराय आदि का उदय है। अन्तराय कर्म के पुद्गलों के उदय से अन्तराय कर्म का वेदन करना स्वतः अन्तराय कर्म का उदय है।

॥ प्रज्ञापना भगवती के तेईसवें पद का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेवीसइमं कम्मपगडिपयं : बीओ उद्देसओ

तेईसवाँ कर्मप्रकृतिपद : द्वितीय उद्देशक

प्रज्ञापना सूत्र के तेइसवें पद के प्रथम उद्देशक में ज्ञानावरणीय आदि कर्म का अनुभाव (विपाक) कहा गया है। इस दूसरे उद्देशक में सूत्रकार उन्हीं ज्ञानावरणीय आदि कर्म की उत्तर प्रकृतियों का कथन करते हैं जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

कर्मों की मूल एवं उत्तर प्रकृतियाँ

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा - णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं। वह इस प्रकार है - ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय।

विवेचन - ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के क्रम का कारण इस प्रकार समझा जाता है - ज्ञान व दर्शन जीव का मौलिक लक्षण है। इन दोनों में भी ज्ञान 'विशेष' उपयोग रूप होने से प्रधान (प्रथम स्थान पर) माना गया है। दर्शन 'सामान्य' उपयोग रूप होने से दूसरे स्थान पर लिया है। अतः इन दो मौलिक गुणों को आवृत्त करने वाले कर्मों में पहले ज्ञानावरणीय व फिर दर्शनावरणीय को लिया है। ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव को सूक्ष्म व सूक्ष्म तर पदार्थों का ज्ञान नहीं होता है - (कर्मवाद के सिद्धान्त का न तो ज्ञान होता है न ही श्रद्धा होती है) अतः सुख दुःख का अनुभव होता है। इस कारण से वेदनीय कर्म को तीसरे स्थान पर लिया गया है। इष्ट अनिष्ट पदार्थों के संयोग वियोग से सुख-दुःख होता है। इससे इन पदार्थों में राग द्वेष की प्रवृत्ति होती है। अतः राग द्वेष रूपी मोहनीय कर्म को चौथे स्थान पर लिया गया है। मोहनीय कर्म के उदय से मूढ़ बनी आत्मा महारंभ महापरिग्रह के द्वारा नरकादि गतियों रूप आयुष्य कर्म बान्धता है। अतः आयुष्य कर्म को पांचवें स्थान पर लिया गया है।

आयुष्य बन्ध होने पर उसके साथ-साथ छह बोल-गति, जाति, स्थिति, अवगाहना, अनुभाग और प्रदेश का बन्ध भी होता ही है एवं उन नरकादि गति, पंचेन्द्रिय आदि जाति इत्यादि नाम कर्म की प्रकृतियों का अवश्य उदय होता है। अतः नाम कर्म को छठे स्थान पर लिया है। नरकादि गतियों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने पर उच्च नीच आदि रूप में एवं जाति, कुल, बल आदि के अच्छे बुरे के रूप में प्रसिद्धि होती ही है। वह प्रसिद्धि गोत्र कर्म के उदय से होती है। अतः गोत्र कर्म को सातवें स्थान पर लिया गया है। उच्च गोत्र के उदय होने पर प्रायः दान लाभादि में बाधक कर्मों का क्षयोपशम होता है। जब कि नीच गोत्र का उदय होने पर दानादि में अन्तराय (रुकावट) रहती है। अतः गोत्र के बाद अन्तराय कर्म का स्थान 'आठवाँ' लिया गया है।

इस प्रकार कर्मों के अनुक्रम का उपर्युक्त कारण होने से घाती अघाति कर्मों को अलग-अलग नहीं बताकर इसी क्रम (पूर्वानुपूर्वी अनुक्रम) से शास्त्रकारों ने बताया है।

णाणावरणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे जाव केवलणाणावरणिज्जे॥ ६१०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय यावत् केवल ज्ञानावरणीय।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ कही गई है जो इस प्रकार है -

१. आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय - मन और पांच इन्द्रियों के निमित्त से जीव को जो ज्ञान होता है उसे आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। जो कर्म आभिनिबोधिक ज्ञान का आवरण करे उसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कहते हैं।

२. श्रुत ज्ञानावरणीय - शास्त्र को द्रव्य श्रुत कहते हैं और उसके सुनने से जो ज्ञान होता है उसे भावश्रुत कहते हैं। इन दोनों का जो आवरण करता है उसे श्रुत ज्ञानावरणीय कहते हैं।

३. अवधि ज्ञानावरणीय - अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी पदार्थों का जो मर्यादित ज्ञान होता है उसको अवधिज्ञान कहते हैं। उस ज्ञान का जो आवरण करे, उसे अवधि ज्ञानावरणीय कहते हैं।

४. मनःपर्यव ज्ञानावरणीय - अढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन की बात जिस ज्ञान से जानी जाय उसे मनःपर्यव ज्ञान कहते हैं। उसको आवरण करने वाला मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कहलाता है।

५. केवल ज्ञानावरणीय - केवल अर्थात् प्रतिपूर्ण जिसके समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं है अर्थात् लोकालोक की सम्पूर्ण रूपी अरूपी वस्तु को जानने वाला केवलज्ञान कहलाता है। उसका जो आवरण करे (ढके) उसको केवल ज्ञानावरणीय कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दंसणावरणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - णिद्दापंचए य दंसणचउक्कए य।

णिद्दापंचए णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - णिद्दा जाव थीणद्धी (थीणगिद्धी)।

दंसणचउक्कए णं पुच्छा?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा-चक्खुदंसणावरणिज्जे जाव केवलदंसणावरणिज्जे॥ ६११॥

भावार्थ - प्रश्न *- हे भगवन्! दर्शनावरणीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?*

उत्तर - हे गौतम! दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा है। निद्रा पंचक और दर्शन चतुष्क।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निद्रा पंचक कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! निद्रा पंचक पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है-निद्रा यावत् स्त्यानर्द्धि (स्त्यानगृद्धि)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दर्शनचतुष्क कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! दर्शन चतुष्क चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - चक्षुदर्शनावरणीय यावत् केवलदर्शनावरणीय।

विवेचन - वस्तु के सामान्य धर्म को-सत्ता के प्रतिभास को दर्शन कहते हैं। आत्मा की दर्शन शक्ति को ढकने वाला कर्म दर्शनावरणीय कहलाता है। दर्शनावरणीय कर्म के दो भेद कहे गये हैं - १. निद्रा पंचक और २. दर्शन चतुष्क। इस तरह दर्शनावरणीय के कुल नौ भेद होते हैं। निद्रा पंचक के भेद इस प्रकार हैं -

१. निद्रा - सोया हुआ आदमी जरा सी खटखटाहट से या आवाज से जाग जाता है उस नींद को 'निद्रा' कहते हैं।

२. निद्रा निद्रा - जोर से आवाज देने पर या देह हिलाने से जो आदमी बड़ी मुश्किल से जागता है उसकी नींद को 'निद्रानिद्रा' कहते हैं।

३. प्रचला - खड़े-खड़े या बैठे-बैठे जिसको नींद आती है उसकी नींद को 'प्रचला' कहते हैं।

४. प्रचला प्रचला - चलते फिरते जिसको नींद आती है उसकी नींद को 'प्रचला प्रचला' कहते हैं।

५. स्त्यानर्द्धि (स्त्यानगृद्धि) - जो दिन में सोचे हुए काम को रात मे नींद की हालत में कर डालता है उस नींद को स्त्यानगृद्धि कहते हैं। जिस कर्म के उदय से ऐसी नींद आवे उसका नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्यानगृद्धि है। जब स्त्यानगृद्धि कर्म का उदय होता है तब वज्रऋषभनाराच संहनन वाले जीव में उत्कृष्ट रूप में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। यदि उस समय उस जीव की मृत्यु हो जाय और उसने यदि पहले आयु न बांधी हो तो नरक गति में जाता है।

दर्शन चतुष्क के भेद इस प्रकार हैं -

१. चक्षु दर्शनावरणीय - चक्षु अर्थात् आँख से पदार्थों का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं, उसका आवरण करने वाला चक्षु दर्शनावरणीय कहलाता है।

२. अचक्षु दर्शनावरणीय - श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पर्शन और मन के सम्बन्ध से शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का जो सामान्य ज्ञान होता है तथा वाटे वहते आदि अवस्था में द्रव्येन्द्रियों के अभाव में मात्र आत्मा के द्वारा जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला अचक्षु दर्शनावरणीय कहलाता है।

३. अवधि दर्शनावरणीय - इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी द्रव्य का जो सामान्य बोध होता है उसे अवधि दर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला अवधि दर्शनावरणीय कहलाता है।

४. केवल दर्शनावरणीय - संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का जो सामान्य अवबोध होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं, उसका आवरण करने वाला केवल दर्शनावरणीय कहलाता है।

नोट - यहाँ एक ज्ञातव्य है कि निद्रा पंचक प्राप्त दर्शन शक्ति का उपघातक है, जब कि दर्शन चतुष्क मूल से ही दर्शन लब्धि का घातक होता है।

वेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सायावेयणिज्जे य असायवेयणिज्जे य।

सायावेयणिज्जे णं भंते! कम्मे पुच्छा?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - मणुण्णा सद्दा जाव कायसुहया।

असायावेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - अमणुण्णा सद्दा जाव कायदुहया॥ ६१२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - सातावेदनीय और असाता वेदनीय।

प्रश्न - हे भगवन्! सातावेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! साता वेदनीय आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - मनोज्ञ शब्द यावत् कायसुखता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! असातावेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! असातावेदनीयकर्म आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - अमनोज्ञ शब्द यावत् कायदुःखता।

विवेचन - वेदनीय कर्म के दो भेद हैं - साता वेदनीय और असाता वेदनीय। सुख का अनुभव कराने वाला कर्म सातावेदनीय कहलाता है और दुःख का अनुभव कराने वाला कर्म असातावेदनीय कहलाता है। साता वेदनीय के आठ भेद इस प्रकार हैं - १. मनोज्ञ शब्द २. मनोज्ञ रूप ३. मनोज्ञ गंध ४. मनोज्ञ रस ५. मनोज्ञ स्पर्श ६. मनःसुखता ७. वाक् सुखता और ८. काय सुखता। इसी प्रकार असाता वेदनीय के भी अमनोज्ञ शब्द आदि आठ भेद हैं। जिनका वर्णन प्रथम उद्देशक में किया जा चुका है।

मोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - दंसणमोहणिज्जे य चरित्तमोहणिज्जे य।

दंसणमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सम्मत्तवेयणिज्जे, मिच्छत्तवेयणिज्जे, सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे।

चरित्तमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - कसायवेयणिज्जे य, णोकसायवेयणिज्जे य।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मोहनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. दर्शनमोहनीय और २. चारित्रमोहनीय।

प्रश्न - हे भगवन्! दर्शन मोहनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! दर्शन मोहनीय कर्म तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. सम्यक्त्व वेदनीय २. मिथ्यात्व वेदनीय और ३. सम्यग्-मिथ्यात्व वेदनीय।

प्रश्न - हे भगवन्! चारित्र मोहनीयकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चारित्र मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. कषायवेदनीय और २. नो कषायवेदनीय।

विवेचन - जो कर्म आत्मा को मोहित करता है अर्थात् भले बुरे के विवेक से शून्य बना देता है वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं - १. दर्शन मोहनीय और २. चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय, दर्शन (सम्यक्त्व) की घात करता है। दर्शन मोहनीय के तीन भेद इस प्रकार हैं -

१. सम्यक्त्व वेदनीय - जो कर्म तत्त्व रुचि रूप सम्यक्त्व में बाधक तो न हो किन्तु आत्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वभाव रूप औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होने देता, जिससे सूक्ष्म पदार्थों का स्वरूप विचारने में शंका उत्पन्न हो, सम्यक्त्व में मलिनता आ जाती हो, चल, मल, अगाढ दोष उत्पन्न हो जाते हों, वह सम्यक्त्व वेदनीय है।

२. मिथ्यात्व वेदनीय - जिसके उदय से जीव को तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप की रुचि न हो अर्थात् जो तत्त्वार्थ के अश्रद्धान के रूप में वेदा जाए उसे मिथ्यात्व वेदनीय कहते हैं।

३. सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय - जिस कर्म के उदय से जीव को जिन प्रणीत तत्त्व में रुचि या अरुचि *अथवा श्रद्धा या अश्रद्धा न हो कर मिश्र स्थिति* रहे, उसे सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय कहते हैं।

चारित्र मोहनीय, चारित्र की घात करता है इसके दो भेद हैं -

१. कषाय वेदनीय - जो कर्म क्रोध, मान, माया और लोभ के रूप में वेदा जाता हो, उसे कषाय वेदनीय कहते हैं।

२. नो कषाय वेदनीय - जिसका उदय कषाय के साथ होता है अथवा जो कषायों को उत्तेजित करने में सहायक हो उसे नो क़षाय कहते हैं। जो स्त्रीवेद आदि नो कषाय के रूप में वेदा जाता है उसे नो कषाय वेदनीय कहते हैं।

कसायवेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलसविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणंताणुबंधी कोहे, अणंताणुबंधी माणे, अणंताणुबंधी माया, अणंताणुबंधी लोभे, अपच्चक्खाणे कोहे, एवं माणे, माया, लोभे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, एवं माणे, माया, लोभे, संजलणे कोहे, एवं माणे, माया, लोभे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कषायवेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! कषाय वेदनीय कर्म सोलह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. अनन्तानुबन्धी क्रोध २. अनन्तानुबन्धी मान ३. अनन्तानुबन्धी माया ४. अनन्तानुबन्धी लोभ ५-६-७-८. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ ९-१०-११-१२. प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया तथा लोभ इसी प्रकार १३-१४-१५-१६. संज्वलन क्रोध, मान, माया एवं लोभ।

विवेचन - क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं। अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानवरण और संज्वलन के भेद से प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं इस तरह कषाय वेदनीय के १६ भेद होते हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार हैं -

१. अनंतानुबंधी - जिस कषाय के प्रभाव से जीव अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है उस कषाय को अनन्तानुबंधी कहते हैं। यह कषाय सम्यक्त्व का घात करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अप्रत्याख्यान - जिस कषाय के उदय से देशविरति रूप अल्प (थोड़ा सा भी) प्रत्याख्यान नहीं होता उसे अप्रत्याख्यान कषाय कहते हैं। इस कषाय से श्रावक धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

३. प्रत्याख्यानावरण - जिस कषाय के उदय से सर्व विरति रूप प्रत्याख्यान रूक जाता है अर्थात् साधु धर्म की प्राप्ति नहीं होती, वह प्रत्याख्यावरण कषाय है।

४. संज्वलन - जो कषाय परीषह और उपसर्ग के आ जाने पर मुनियों को भी थोड़ा-सा जलाता है अर्थात् उन पर भी थोड़ा सा असर दिखाता है उसको संज्वलन कषाय कहते हैं। यह कषाय सर्वविरति रूप साधु धर्म में बाधा नहीं पहुँचाता परन्तु सबसे ऊँचे यथाख्यात चारित्र में बाधा पहुँचाता है।

क्रोध आदि चार कषाय और उनकी उपमाएं इस प्रकार हैं -

१. अनन्तानुबंधी क्रोध - पर्वत के फटने पर जो दरार होती है उसका मिलना (पुनः एक हो जाना) कठिन है उसी प्रकार जो क्रोध किसी उपाय से शांत नहीं होता वह अनन्तानुबंधी क्रोध है।

२. अनन्तानुबंधी मान - जैसे पत्थर का खम्भा अनेक उपाय करने पर भी नहीं नमता है उसी प्रकार जो मान किसी भी उपाय से दूर नहीं किया जा सके वह अनन्तानुबंधी मान है।

३. अनन्तानुबंधी माया - जैसे बांस की कठिन जड़ का टेढ़ापन किसी भी उपाय से दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार जो माया किसी भी प्रकार से दूर नहीं हो अर्थात् सरलता रूप में परिणत न हो, वह अनन्तानुबंधी माया है।

४. अनन्तानुबंधी लोभ - जैसे किरमची रंग किसी भी उपाय से नहीं छूटता, उसी प्रकार जो लोभ किसी भी उपाय से दूर न हो, वह अनन्तानुबंधी लोभ है।

५. अप्रत्याख्यान क्रोध - सूखे तालाब आदि से मिट्टी के फट जाने पर जो दरार हो जाती है वह जब वर्षा होती है तब वापिस मिल जाती है, उसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त हो जाता है वह अप्रत्याख्यान क्रोध है।

६. अप्रत्याख्यान मान - जैसे हड्डी अनेक उपायों से नमती है उसी प्रकार जो मान अनेक उपायों से अति परिश्रम पूर्वक दूर किया जा सके वह अप्रत्याख्यान मान है।

७. अप्रत्याख्यान माया - जैसे मेंढे का टेढा सींग अनेक उपाय करने पर बड़ी मुश्किल से सीधा होता है उसी प्रकार जो माया अत्यंत परिश्रम से दूर गई जा सके, वह अप्रत्याख्यान माया है।

८. अप्रत्याख्यान लोभ - जैसे नगर का कीचड़ परिश्रम करने पर अति कष्ट पूर्वक छूटता है, उसी प्रकार जो लोभ अति परिश्रम से कष्ट पूर्वक दूर किया जा सके वह अप्रत्याख्यान लोभ है।

९. प्रत्याख्यानावरण क्रोध - बालू रेत में लकीर खींचने पर कुछ समय में हवा से वह लकीर वापिस भर जाती है उसी प्रकार जो क्रोध कुछ उपाय से शांत हो वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. प्रत्याख्यानावरण मान - जैसे लकड़ी को तैल आदि की मालिश से नमाया जा सकता है उसी प्रकार जो मान थोड़े उपायों से नमाया जा सके वह प्रत्याख्यानावरण मान है।

११. प्रत्याख्यानावरण माया - जैसे चलते हुए बैल के मूत्र की टेढ़ी लकीर हो जाती है। वह सूख जाने पर पवन आदि से मिट जाती है। इसी प्रकार जो माया सरलता पूर्वक दूर की जा सके, उसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं।

१२. प्रत्याख्यानावरण लोभ - जैसे गाड़ी के पहिये का खंजन (कीट) साधारण परिश्रम से छूट जाता है, उसी प्रकार जो लोभ कुछ परिश्रम से दूर हो वह प्रत्याख्यानावरण लोभ है।

१३. संज्वलन क्रोध - पानी में खींची हुई लकीर जैसे खींचने के साथ ही मिटती जाती है उसी प्रकार जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाय, उसे संज्वलन क्रोध कहते हैं।

१४. संज्वलन मान - जैसे लता (बेलड़ी) या तिनका बिना परिश्रम के सहज में नमाया जा सकता है उसी प्रकार जो मान सहज ही छूट जाता है वह संज्वलन मानहै।

१५. संज्वलन माया - छीले जाते हुए बांस के छिलके का टेढापन बिना प्रयत्न के सहज ही मिट जाता है, उसी प्रकार जो माया बिना परिश्रम के शीघ्र ही अपने आप दूर हो जाय वह संज्वलन माया है।

१६. संज्वलन लोभ - जैसे हल्दी का रंग सहज ही छूट जाता है उसी प्रकार जो लोभ आसानी से स्वयं दूर हो जाय वह संज्वलन लोभ है।

नोट - यहाँ पर जो अनन्तानुबन्धी आदि कषायों की (उदय) स्थिति 'यावज्जीवन' आदि बताई गयी है, वह आगमों में नहीं है। वह कर्म ग्रन्थ भाग एक की गाथा १८ में बताई गयी है। कर्म ग्रन्थ के रचनाकार श्री देवेन्द्रसूरिजी स्वयं इसे व्यवहार स्थिति कहते हैं। निश्चय स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त की भी हो सकती है। कषायों की तीव्रता उत्कटता आदि के कारण अन्तर्मुहूर्त्त आदि की स्थिति में भी अनन्तानुबन्धीपना हो सकता है। आगम में (भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ६) कषाय कुशील की स्थिति देशोन करोड़ पूर्व की बताई गयी है। कषाय कुशील में निरन्तर संज्वलन कषाय का उदय तो रहता ही है। इस प्रकार संज्वलन कषाय की स्थिति देशोन करोड़ पूर्व की आगम से स्पष्ट हो जाती है। क्रोध आदि प्रत्येक कषायों की उदय स्थिति तो प्रज्ञापना सूत्र के १८ वें पद में अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं बताई गयी है। संज्वलन के चारों कषाय मिलकर देशोन करोड़ पूर्व तक रह सकते हैं। इसके आधार से शेष कषायों के चौक भी मिलकर इतने काल तक रह जाने की संभावना की जाती है। राग-द्वेष-संज्वलन और प्रत्याख्यानावरणीय की हद में होने पर तो साधुपन और श्रावकपन टिक सकता है। यदि रागद्वेष की तीव्रता बढ़ जाती है, संज्वलन आदि की हद लांघ जाते हैं तो साधुपन और श्रावकपन नहीं टिकता है। अतः राग द्वेष कषायों पर काबू करने में साधु श्रावकों को प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसी में उनके लिए हुए व्रतों की आराधना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णोकसायवेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! णवविहे पण्णत्ते। तंजहा-इत्थीवेयवेयणिज्जे, पुरिसवेयणिज्जे, णपुंसगवेयणिज्जे, हासे, रई, अरई, भए, सोगे, दुगुंछा॥ ६१३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोकषाय-वेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नोकषाय-वेदनीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. स्त्रीवेद २. पुरुषवेद ३. नपुंसकवेद ४. हास्य ५. रति ६. अरति ७. भय ८. शोक और ९. जुगुप्सा।

विवेचन - नो कषाय-वेदनीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है -

१. स्त्रीवेद - जिस कर्म के उदय से स्त्री को पुरुष के साथ रमण करने की (मैथुन सेवन करने की) अभिलाषा होती है उसे 'स्त्री वेद' कहते हैं।

२. पुरुषवेद - जिस कर्म के उदय पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की अभिलाषा होती है उसे 'पुरुष वेद' कहते हैं।

३. नपुंसक वेद - जिस कर्म के उदय से नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की अभिलाषा होती है उसे 'नपुंसक वेद' कहते हैं।

४. हास्य - जिस कर्म के उदय से बिना कारण या कारण वश हंसी आवे, उसे 'हास्य मोहनीय' कहते हैं।

५. रति - जिस कर्म के उदय से अच्छे अच्छे मन पसंद सांसारिक पदार्थों में अनुराग हो उसे 'रति मोहनीय' कहते हैं।

६. अरति - जिस कर्म के उदय से मन नापसंद बुरी चीजों से अरुचि हो उसे 'अरति मोहनीय' कहते हैं।

७. भय - जिस कर्म के उदय से कारण से या बिना कारण से मन में भय पैदा हो, उसे 'भय मोहनीय' कहते हैं।

८. शोक - जिस कर्म के उदय से इष्ट वस्तु का वियोग होने पर मन में शोक पैदा हो उसे 'शोक मोहनीय' कहते हैं।

९. जुगुप्सा - जिस कर्म के उदय से दुर्गन्धि या वीभत्स (घृणा पैदा करने वाले) पदार्थों को देख कर घृणा उत्पन्न हो, उसे 'जुगुप्सा मोहनीय कर्म' कहते हैं।

आउए णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते? तंजहा-णेरइयाउए जाव देवाउए॥ ६१४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आयुकर्म कितने प्रकार का कहा है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! आयु कर्म चार प्रकार का कहा गया है? वह इस प्रकार है - नरकायु यावत् देवायु।

विवेचन - जिस कर्म के रहते प्राणी जीता है और पूरा होने पर मर जाता है उसे आयु कर्म कहते हैं। अथवा-जिस कर्म से जीव एक गति से दूरी गति में जाता है वह आयु कर्म कहलाता है। अथवा-जो कर्म प्रति समय भोगा जाय वह आयु कर्म है अथवा जिसके उदय आने पर भव विशेष में भोगने लायक सभी कर्म अपना फल देने लगते हैं वह आयु कर्म है। यह कर्म कारागार के समान है। जिस प्रकार राजा की आज्ञा से जेलखाने में डाला हुआ पुरुष वहाँ से निकलना चाहते हुए भी नियत अवधि के पहले वहाँ से नहीं निकल सकता, उसी प्रकार आयुकर्म के कारण जीव नियत समय तक अपने शरीर में बंधा रहता है। अवधि पूरी होने पर वह उसको छोड़ता है परन्तु उसके पहले नहीं।

आयु कर्म के चार भेद हैं - १. नरक आयु २. तिर्यंच आयु ३. मनुष्य आयु और ४. देव आयु।

णामे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! बायालीसइविहे पण्णत्ते। तंजहा - गइणामे १, जाइणामे २, सरीरणामे ३, सरीरोवंगणामे ४, सरीरबंधणणामे ५, सरीरसंघायणामे ६, संघयणणामे ७, संठाणणामे ८, वण्णणामे ९, गंधणामे १०, रसणामे ११, फासणामे १२, अगुरुलहुयणामे १३, उवघायणामे १४, पराघायणामे १५, आणुपुव्विणामे १६, उस्सासणामे १७, आयवणामे १८, उज्जोयणामे १९, विहायगइणामे २०, तसणामे २१, थावरणामे २२, सुहुमणामे २३, बायरणामे २४, पज्जत्तणामे २५, अपज्जत्तणामे २६, साहारणसरीरणामे २७, पत्तेयसरीरणामे २८, थिरणामे २९, अथिरणामे ३०, सुभणामे ३१, असुभणामे ३२, सुभगणामे ३३, दुभगणामे ३४, सूसरणामे ३५, दूसरणामे ३६, आदेज्जणामे ३७, अणादेज्जणामे ३८, जसोकित्तिणामे ३९, अजसोकित्तिणामे ४०, णिम्माणणामे ४१, तित्थगरणामे ४२।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नामकर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नामकर्म बयालीस प्रकार का कहा है। वे इस प्रकार हैं - १. गति नाम २. जाति नाम ३. शरीर नाम ४. शरीरांगोपांग नाम ५. शरीर बन्धन नाम ६. शरीर संघात नाम ७. संहनन नाम ८. संस्थान नाम ९. वर्ण नाम १०. गन्ध नाम ११. रस नाम १२. स्पर्श नाम १३. अगुरुलघु नाम १४. उपघात नाम १५. पराघात नाम १६. आनुपूर्वी नाम १७. उच्छ्वास नाम १८. आतप नाम १९. उद्योत नाम २०. विहायोगति नाम २१. त्रस नाम २२. स्थावर नाम २३. सूक्ष्म नाम २४. बादर नाम २५. पर्याप्त नाम २६. अपर्याप्त नाम २७. साधारण शरीर नाम २८. प्रत्येक शरीर नाम २९. स्थिर नाम ३०. अस्थिर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम ३१. शुभ नाम ३२. अशुभ नाम ३३. सुभग नाम ३४. दुर्भग नाम ३५. सुस्वर नाम ३६. दुःस्वर नाम ३७. आदेय नाम ३८. अनादेय नाम ३९. यशःकीर्ति नाम ४०. अयशःकीर्ति नाम ४१. निर्माण नाम और ४२. तीर्थंकर नाम।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से जीव नरक, तिर्यंच आदि नामों से पुकारा जाता है उसे नाम कर्म कहते हैं। नाम कर्म चित्रकार के समान है। जैसे चित्रकार विविध वर्णों से अनेक प्रकार के सुन्दर असुन्दर रूप बनाता है उसी प्रकार नाम कर्म जीव के सुन्दर असुंदर आदि अनेक रूप करता है। नाम कर्म के अपेक्षा भेद से ४२, ६७, ९३ अथवा १०३ भेद होते हैं। प्रस्तुत सूत्र में ४२ भेद कहे गये हैं। उसका क्रमशः विवेचन इस प्रकार है-

गइणामे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा-णिरयगइणामे, तिरियगइणामे, मणुयगइणामे, देवगइणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गतिनाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गतिनाम कर्म चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - नरकगति नाम, २. तिर्यंच गति नाम ३. मनुष्य गति नाम और ४. देवगति नाम।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से जीव नरक आदि गतियों में जाए अथवा नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य या देव की पर्याय प्राप्त करे उसे गति नाम कर्म कहते हैं। चार गतियों के भेद से गतिनाम कर्म चार प्रकार का कहा गया है - १. जिस कर्म के उदय से जीव को नरक गति मिले वह नरक गति नाम है २. जिस कर्म के उदय से जीव को तिर्यंच गति मिले उसे तिर्यंच गतिनाम कहते हैं। ३. जिस कर्म के उदय से जीव को मनुष्य गति मिले उसे मनुष्य गति नाम कर्म कहते हैं और ४. जिस कर्म के उदय से जीव को देव गति मिले वह देवगति नाम कर्म है।

जाइणामे णं भंते! कम्मे पुच्छा?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगिंदियजाइणामे जाव पंचिंदियजाइणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जातिनाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जाति नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - एकेन्द्रिय जाति नाम, यावत् पंचेन्द्रिय जाति नाम।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से जीव को एकेन्द्रिय आदि पर्याय प्राप्त हो, उसे जाति नाम कर्म कहते हैं। इसके पांच भेद इस प्रकार हैं -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. एकेन्द्रिय जाति नाम - जिस कर्म के उदय से जीव को एकेन्द्रिय जाति मिले, उसे एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

२. बेइन्द्रिय जाति नाम - जिन जीवों के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं वे बेइन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे - शंख, सीप, लट आदि। जिस कर्म के उदय से जीव को बेइन्द्रिय जाति मिले, उसे बेइन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

३. तेइन्द्रिय जाति नाम - जिन जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण (नाक) ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें तेइन्द्रिय कहते हैं। जैसे चींटी, मकोड़ा आदि। जिस कर्म के उदय से जीव को तेइन्द्रिय जाति मिले, उसे तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

४. चउरिन्द्रिय जाति नाम - जिन जीवों के स्पर्शन, रसना, घाण और चक्षु (नेत्र) ये चार इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें चौइन्द्रिय कहते हैं। जैसे - मक्खी, मच्छर आदि। जिस कर्म के उदय से जीव को चउरिन्द्रिय जाति मिले, उसे चउरिन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

५. पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय, ये पांचों इन्द्रियाँ प्राप्त हो उसे पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म कहते हैं।

सरीरणामे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीरणामे जाव कम्मगसरीरणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीरनाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शरीर नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - औदारिक शरीर नाम कर्म यावत् कार्मण शरीर नाम कर्म।

विवेचन - जो शीर्ण (क्षण क्षण में क्षीण) होता रहता है वह शरीर कहलाता है। शरीरों का जनक कर्म 'शरीर नाम कर्म' कहलाता है। शरीर के पांच भेद हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण। शरीरों के भेद से शरीर नाम कर्म के ५ भेद हैं।

सरीरोवंगणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीरोवंगणामे, वेउव्विय-सरीरोवंगणामे, आहारगसरीरोवंगणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीर-अंगोपांग नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शरीर-अंगोपांग नाम कर्म तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. औदारिक शरीर-अंगोपांग २. वैक्रिय शरीर-अंगोपांग और ३. आहारक शरीर-अंगोपांग।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से शरीर के अङ्ग, उपाङ्ग और अंगोपाङ्ग मिले, उसको शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं। मस्तिष्क आदि शरीर के आठ अङ्ग होते हैं। कहा भी है - **'सीसमुरोयर-पिट्ठी-दो बाहू उरुया य अटुंगा'** अर्थात् सिर, उर, उदर, पीठ, दो भुजाएं और दो जांघ, ये शरीर के आठ अङ्ग हैं। इन अङ्गों के अंगुली आदि अवयग उपाङ्ग कहलाते हैं और उनके भी अंग - जैसे अंगुलियों के पर्व आदि अंगोपांग हैं। शरीर अंगोपांग नाम कर्म तीन प्रकार का कहा गया है क्योंकि ये अंगोपांग औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर इन्हीं तीन शरीरों के होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर के नहीं होते।

अंगोपांग - अंगों व उपांगों का निर्माण करना। जैसे औदारिक शरीर के अंगों (भुजादि) व उपांगों (अंगुलियों) आदि को बनाना। इसी प्रकार वैक्रिय व आहारक शरीर के भी समझना। तैजस् व कार्मण शरीर के अंगोपांग नहीं होते हैं। क्योंकि जिस प्रकार पानी का कोई आकार-आयतन निश्चित नहीं होता, किन्तु पात्र के अनुसार ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार तेजस् कार्मण शरीर भी जिस गति में जितनी अवगाहना वाला जैसा (औदारिकादि) शरीर होता है, उसी के अनुरूप आकार ग्रहण कर लेते हैं।

सरीरबंधणणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीरबंधणणामे जाव कम्मगसरीर-बंधणणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीरबन्धन नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शरीर बन्धन नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म यावत् कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म।

विवेचन - जिसके द्वारा शरीर बंधे अर्थात् जो कर्म पूर्व में ग्रहण किये हुए औदारिक आदि शरीर और वर्तमान में ग्रहण किये जाने वाले औदारिक आदि पुद्गलों का तैजस आदि पुद्गलों के साथ सम्बन्ध उत्पन्न करे, वह शरीर बन्धन नाम कर्म है।

सरीरसंघायणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीरसंघायणामे जाव कम्मगसरीर-संघायणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीर संघात नाम कर्म कितने प्रकार का कहा है?

उत्तर - हे गौतम! शरीर संघात नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - औदारिक शरीर संघात नाम कर्म यावत् कार्मण शरीर संघात नाम कर्म।

विवेचन - जो शरीर योग्य पुद्गलों को व्यवस्थित रूप से स्थापित करता है उसे संघात नाम कर्म कहते हैं। औदारिक आदि शरीर के भेदों से इसके पांच भेद हैं।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

बंधन व संघात - जैसे कोई जीव मरकर मनुष्य गति में आ रहा है, अतः उसके लिए औदारिक के पुद्गलों को (आसपास से) इकट्ठा करना '**संघात**' है। फिर इन पुद्गलों को एक दूसरे से जोड़कर सुगठित करना '**बन्धन**' है। उदाहरण - जैसे- प्रिंटिंग प्रेस (छापखाना) पर किसी पुस्तक की १००० प्रतियाँ छप रही है। वहाँ पर प्रारम्भ में छपते हुए-सरीखे-सरीखे पृष्ठों की १००० अलग-अलग गड्डियाँ होगी। अब एक पुस्तक को पूर्ण व्यवस्थित करना है तो अलग-अलग गड्डियों से एक-एक पेज (क्रमानुसार) इकट्ठे करना तो '**संघात**' है। व फिर उन पेजों (पृष्ठों) को गोंद आदि के द्वारा जोड़ना, सीवना, चिपकाना (बाईडिंग करना) '**बंधन**' है। कर्म ग्रन्थ भाग १ में '**संघात**' के लिए घास को इकट्ठे करने वाली दताली के समान तथा '**बंधन**' के लिए मिट्टी आदि के बर्तनों को चिपकाने वाले 'लाख' आदि द्रव्य का उदाहरण दिया है।

बन्धन के प्रकार - यहाँ पर (थोकड़े में) पांच बन्धन बताये गये हैं। अर्थात् औदारिक आदि के योग्य पुद्गलों को 'संघात' से इकट्ठा कर आत्म प्रदेशों पर चिपकाना-औदारिक बन्धन है। चूंकि यहाँ औदारिक शरीर तैजस व कार्मण शरीर के साथ भी जुड़ रहा है। अतः अपेक्षा से 'औदारिक तैजस बन्धन, औदारिक कार्मण बन्धन, औदारिक तैजस कार्मण बन्धन आदि भी कहते हैं। इसी प्रकर वैक्रिय व आहारक शरीर के साथ भी तैजस कार्मण का बन्धन गिनने से (९३+१० प्रकृतियाँ बढ़ाने पर) १०३ प्रकृतियाँ हो जाती है।

वैक्रिय लब्धि का उपयोग - यदि देव नारक उत्तरवैक्रिय करता है तो वैक्रिय तैजस बन्धन, वैक्रिय कार्मण बन्धन, वैक्रिय तैजस कार्मण बन्धन कहेंगे। यदि मनुष्य आदि वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करेंगे तो भी वैक्रिय तैजस बन्धन आदि कहेंगे। परन्तु औदारिक वैक्रिय बन्धन आदि नहीं कहेंगे क्योंकि इन दोनों का बन्धन नहीं होता है। (आधार-भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ९ सर्व बन्ध का थोकड़ा) इसी प्रकार आहारक-वैक्रिय बन्धन नहीं होता है।

आगम में तो बन्धन के पांच भेद किये हैं। कर्म ग्रन्थ में बन्धन के पन्द्रह भेद मिलते हैं। इसका मतलब औदारिक योग के समय आहारक बद्ध पुद्गलों का मिलना और आहारक योग के समय औदारिक बद्ध पुद्गलों का मिलना। इसी प्रकार औदारिक और वैक्रिय के लिए भी समझना। जिस समय एक शरीर का सर्वबन्ध या देशबन्ध होता है उस समय अन्य शरीरों के पुद्गलों का बन्ध नहीं होता। पूर्व बद्ध की अपेक्षा से ही कर्मग्रन्थ में बन्धन नाम कर्म के १५ भेद किये गये हैं यथा - १. औदारिक बन्धन नामकर्म २. औदारिक तैजस ३. औदारिक कार्मण ४. वैक्रिय वैक्रिय ५. वैक्रिय तैजस ६. वैक्रिय कार्मण ७. आहारक आहारक ८. आहारक तैजस ९. आहारक कार्मण १०. औदारिक तैजस कार्मण ११. वैक्रिय तैजस कार्मण १२. आहारक तैजस कार्मण १३. तैजस तैजस १४. तैजस कार्मण १५. कार्मण कार्मण बन्धन नाम कर्म।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तैजस बन्धन - पहले के तैजस पुद्गलों के साथ नवीन गृहीत तैजस पुद्गलों का बन्ध कराने वाला बन्ध। इसी प्रकार **कार्मण बन्धन** भी समझना चाहिए।

संघयणणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - वइरोसभणारायसंघयणणामे, उसभणाराय-संघयणणामे, णारायसंघयणणामे, अद्धणारायसंघयणणामे कीलियासंघयणणामे, छेवट्टसंघयणणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संहनन नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! संहनन नाम कर्म छह प्रकार का कहा है। वह इस प्रकार है - १. वज्रऋषभनाराच संहनन नाम २. ऋषभनाराच संहनन नाम ३. नाराच संहनन नाम ४. अर्द्धनाराच संहनन नाम ५. कीलिका संहनन नाम और ६. सेवार्त्त संहनन नाम।

विवेचन - हड्डियों की रचना विशेष संहनन कहलाती है। संहनन औदारिक शरीर में ही हो सकता है, अन्य शरीरों में नहीं क्योंकि अन्य शरीर हड्डियों वाले नहीं होते। अतः जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों की रचना आदि होती है उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं। संहनन के छह भेद इस प्रकार हैं -

१. वज्रऋषभनाराच संहनन - वज्र का अर्थ कील है, ऋषभ का अर्थ वेष्टनपट्ट (पट्टी) है और नाराच का अर्थ दोनों तरफ से मर्कट बन्ध है। जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्टी की आकृति वाली हड्डी का चारों तरफ से वेष्टन हो और इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील हो उसे वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं। मोक्ष जाने वाले जीवों के यही संहनन होता है।

२. ऋषभनाराच संहनन - हड्डियों की सन्धि में दोनों ओर से मर्कट बन्ध और उन पर लपेटा हुआ पट्टा हो लेकिन कील न हो, उसे ऋषभनाराच संहनन कहते हैं।

३. नाराच संहनन - दोनों तरफ सिर्फ मर्कट बन्ध हो उसे नाराच संहनन कहते हैं।

४. अर्द्ध नाराच संहनन - एक तरफ मर्कट बन्ध हो और दूसरी तरफ कील हो उसे अर्द्ध नाराच संहनन कहते हैं।

५. कीलिका संहनन - मर्कट बन्ध न हो कर सिर्फ कीलों से ही हड्डियाँ जुड़ी हुई हों, उसे कीलिका संहनन कहते हैं।

६. छेवट्ट (सेवार्त्त) संहनन - कील न होकर सिर्फ हड्डियों परस्पर में जुड़ी हुई हों उसे छेवट्ट (सेवार्त्त) संहनन कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसका दूसरा नाम (छेवट्ट की संस्कृत छाया) छेद वृत्त भी है जिसका अर्थ जैसे कागजों में छेद करने पर कुछ चिपक जाते हैं किन्तु थोड़ासा धक्का लगते ही निकल जाते हैं वैसे ही जिस संहनन में मात्र हड्डियाँ छिद्र होने से जुड़ी हो-थोड़े से धक्के से जिसकी हड्डियां टूट जावे उसे छेदवृत्त संहनन कहते हैं। जिस कर्म के उदय से ऐसे संहनन की प्राप्ति होवे, वह सेवार्त्त संहनन नाम कर्म कहलाता है। यह संहनन सभी असन्नी जीवों (एकेन्द्रिय से असन्नी पंचेन्द्रिय) के होता है।

संहनन के इन छह भेदों के अनुसार संहनन नाम कर्म के छह भेद कहे गये हैं।

संठाणणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंससंठाणणामे, णिग्गोहपरिमंडल-संठाणणामे, साइसंठाणणामे, वामणसंठाणणामे, खुज्जसंठाणणामे, हुंडसंठाणणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संस्थान नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! संस्थान नाम कर्म छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. समचतुरस्र संस्थान नाम २. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नाम ३. सादि संस्थान नाम ४. वामन संस्थान नाम ५. कुब्ज संस्थान नाम और ६. हुण्डक संस्थान नाम।

विवेचन - नाम कर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं। इसके छह भेद इस प्रकार हैं -

१. समचतुरस्र संस्थान - सम का अर्थ है समान, चतुः का अर्थ है चार और अस्र का अर्थ है कोण। पालथी मार कर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण समान हो अर्थात् आसन और कपाल का अन्तर, दोनों जानुओं (घुटनों) का अन्तर, बाएं कन्धे और दाहिने जानु (घुटने) का अन्तर तथा दाहिने कन्धे और बाएं जानु (घुटने) का अन्तर समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। छहों संस्थानों में यह संस्थान सर्वश्रेष्ठ है। समचतुरस्र का दूसरा अर्थ - शरीर शास्त्र में जो सर्व सुन्दर शरीर आकार बताया गया है। जो सर्व अङ्गोपाङ्गों से युक्त होता है उसे 'समचतुरस्र संस्थान' कहते हैं।

२. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान - वट वृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं। उसका ऊपरी भाग जैसा अति विस्तार युक्त सुशोभित होता है वैसा नीचे का भाग नहीं होता है। उसी तरह नाभि के ऊपर का भाग विस्तृत हो और नाभि से नीचे का भाग वैसा न हो उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान कहते हैं।

३. सादि संस्थान - जिस संस्थान में नाभि के नीचे का भाग पूर्ण हो और ऊपरी भाग हीन हो उसे सादि संस्थान कहते हैं। अथवा साची नाम का एक वृक्ष होता है उसके समान या साप की बांबी के समान जो संहनन होता है उसे सादि संस्थान कहते हैं।

४. वामन संस्थान - जिस शरीर में छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हों परन्तु हाथ पैर आदि अवयव छोटे हों, उसे वामन संस्थान कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. कुब्ज संस्थान - जिस शरीर में हाथ पैर सिर गर्दन आदि अवयव ठीक हों परन्तु छाती, पीठ, पेट आदि अवयव टेढे हों, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।

६. हुण्डक संस्थान - जिस शरीर के समस्त अवयव बेढब हों उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं।

संस्थान के उपरोक्त छह भेदों से संस्थान नाम कर्म छह प्रकार का कहा गया है।

वण्णणामे णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - कालवण्णणामे जाव सुक्किल्लवण्णणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वर्ण नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वर्ण नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - काल वर्ण नाम यावत् शुक्ल वर्ण नाम।

विवेचन - जो वर्णों का जनक है वह वर्ण नाम कर्म है। अथवा जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर काला गोरा आदि वर्ण वाला हो उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं। सफेद, लाल, पीला, नीला और काला ये पांच वर्ण (रंग) माने गये हैं। इन्हीं पांचों के संयोग (मिश्रण) से दूसरे रंग तैयार होते हैं। इनमें से सफेद, लाल, और पीला ये तीन वर्ण शुभ हैं और नीला और काला ये दो वर्ण अशुभ हैं।

गंधणामे णं भंते! कम्मे पुच्छा?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुरभिगंधणामे, दुरभिगंधणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गन्ध नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गन्ध नाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - सुरभिगन्ध नाम और दुरभिगन्ध नाम।

विवेचन - गन्ध्यते-आघ्रायते - जो सूंघा जाता है वह गन्ध है। गन्ध दो हैं- सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। इसलिये गन्ध नाम कर्म भी दो प्रकार का है-सुरभिगंध नाम कर्म और दुरभिगन्ध नाम कर्म। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में कमल के फूल और मालती के फूल आदि की तरह शुभ गन्ध हो उसे सुरभिगंध नाम कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में ल्हसुन आदि की तरह दुर्गन्ध हो उसे दुरभिगंध नाम कर्म कहते हैं।

रसणामे णं पुच्छा?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - तित्तरसणामे जाव महुररसणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रस नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रस नाम कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - तिक्त रस नाम यावत् मधुर रस नाम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - रस्यते-आस्वाद्यते - जिसका आस्वाद किया जाता है वह रस है। तिक्त-तीखा कटुक-कड़वा, कषाय-कषैला, अम्ल-खट्टा और मधुर-मीठा, ये रस के पांच भेद हैं। इसलिए रस नाम भी पांच प्रकार का कहा गया है। यथा - तिक्त नाम, कटु नाम, कषाय नाम, अम्ल नाम और मधुर नाम। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में मिर्च आदि की तरह तीखा रस हो वह तिक्त रस नाम है। इसी प्रकार शेष रस नामों के विषय में भी समझ लेना चाहिये। पांच रसों में कषैला, खट्टा और मीठा ये तीन शुभ रस हैं और तीखा तथा कड़वा अशुभ रस हैं।

फासणामे णं पुच्छा?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - कक्खडफासणामे जाव लुक्खफासणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्पर्श नाम कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - कर्कश स्पर्श नाम यावत् रूक्ष स्पर्श नाम।

विवेचन - स्पृश्यते - जो स्पर्श किया जाता है अर्थात् स्पर्शनेन्द्रिय का विषय होता है वह स्पर्श कहलाता है। स्पर्श - कर्कश (कठोर) मृदु (कोमल), गुरु (भारी), लघु (हल्का), रूक्ष (रूखा) स्निग्ध (चिकना), शीत (ठण्डा), उष्ण (गर्म) के भेद से आठ प्रकार का है। इसलिए स्पर्श नाम भी आठ प्रकार का कहा गया है। जिसके उदय से प्राणियों के शरीर में पत्थर आदि की तरह कर्कश (कठोर)स्पर्श होता है वह कर्कश स्पर्श नाम है। इसी प्रकार शेष स्पर्श नाम के विषय में भी समझ लेना चाहिये। आठ स्पर्शों में से मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण, ये चार स्पर्श शुभ हैं और शेष चार अशुभ हैं।

अगुरुलहुयणामे एगागारे पण्णत्ते। उवघायणामे एगागारे पण्णत्ते। पराघायणामे एगागारे पण्णत्ते।

भावार्थ - अगुरुलघु नाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है। उपघात नाम कर्म एक प्रकार का कहा है। पराघात नाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर न तो लोहे के समान अत्यन्त भारी हो और न अर्कतूल (आक की रूई) के समान अत्यन्त हलका हो अपितु मध्यम दर्जे का हो उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से जीव अपने ही अवयवों से दु:खी हो उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं। वे अवयव प्रतिजिह्वा (पडजीभ), गण्डमाला, चोर दांत आदि हैं।

जिस कर्म के उदय से जीव अन्य बलवानों की दृष्टि में अजेय (दूसरों से न जीता जा सकने वाला) समझा जाता है उसे पराघात नाम कर्म कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आणुपुव्वीणामे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णेरइयआणुपुव्वीणामे जाव देवाणुपुव्वीणामे।

भावार्थ - आनुपूर्वी नाम कर्म चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - नैरयिक आनुपूर्वी नाम यावत् देवानुपूर्वी नाम।

विवेचन - आनुपूर्वी नाम कर्म बैल की नाथ के समान है। जैसे इधर उधर जाते हुए बैल को नाथ (नाक में डाली हुई डोरी) के द्वारा खींच कर यथा स्थान ले जाया जाता है उसी प्रकार विग्रह गति द्वारा इधर उधर जाते हुए जीव को जबर्दस्ती खींच कर आनुपूर्वी नाम कर्म उसी गति में ले जाता है जिस गति की आयु उसने बांध रखी है। आनुपूर्वी नाम कर्म चार प्रकार का कहा गया है-

१. नैरयिकानुपूर्वी - जिस कर्म से जीव को जबरदस्ती से नरक गति में ले जाया जाता है उसे नैरयिकानुपूर्वी कहते हैं।

२. तिर्यंचानुपूर्वी - दूसरी गति में जाते हुए जीव को जो जबरदस्ती खींचकर तिर्यंच गति में ले जावे उसे तिर्यंचानुपूर्वी कहते हैं।

३. मनुष्यानुपूर्वी - जिस कर्म के उदय से मनुष्य की आनुपूर्वी मिले उसे मनुष्यानुपूर्वी कहते हैं। जैसे इस भव में जो जीव आगे के लिए मनुष्य गति में जन्म लेने का कर्म बांध चुका है परन्तु मरणकाल में वह इस शरीर को छोड़ कर विग्रह गति द्वारा दूसरी गति में जाने लगता है, तो मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म जबरदस्ती से खींच कर मनुष्य गति में ले जाता है उसको मनुष्यानुपूर्वी कहते हैं।

४. देवानुपूर्वी - जिस कर्म के उदय से जीव को देवता की आनुपूर्वी प्राप्त हो, उसे देवानुपूर्वी कहते हैं।

उस्सासणामे एगागारे पण्णत्ते। सेसाणि सव्वाणि एगागाराइं पण्णत्ताइं जाव तित्थगरणामे। णवरं विहायगइणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पसत्थविहायगइणामे य, अपसत्थविहायगइणामे य॥ ६१५॥

भावार्थ - उच्छ्वास नाम कर्म एक प्रकार का कहा गया है। शेष सब यावत् तीर्थंकर नाम कर्म तक एक-एक प्रकार के कहे गये हैं। विशेषता यह है कि विहायोगति नाम कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. प्रशस्त विहायोगति नाम और २. अप्रशस्त विहायोगति नाम।

विवेचन - जिसके उदय से जीव को उच्छ्वास और निःश्वास की लब्धि प्राप्त होती है उसे उच्छ्वास नाम कहते हैं।

***शंका** - यदि ऐसा है तो फिर उच्छ्वास पर्याप्ति नाम कर्म का क्या उपयोग है?*

समाधान - उच्छ्वास नाम कर्म के उदय से उच्छ्वास और निःश्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने और छोड़ने संबंधी लब्धि उत्पन्न होती है जो उच्छ्वास पर्याप्ति के सिवाय अपना कार्य नहीं करती। जैसे बाण फैंकने की शक्ति वाला भी धनुष को ग्रहण करने की शक्ति के सिवाय फैंक नहीं सकता है उसी प्रकार उच्छ्वास पर्याप्ति उत्पन्न करने के लिए उच्छ्वास नाम कर्म का उपयोग है। नाम कर्म की शेष १-१ प्रकृति इस प्रकार है -

आतप नाम - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करे। सूर्य के मण्डल में रहने वाले पृथ्वीकाय के जीव ऐसे ही हैं। उनके आतप नाम कर्म का उदय है। वे स्वयं उष्ण न होते हुए भी उष्ण प्रकाश देते हैं।

उद्योत नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करने वाला हो, उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं। चन्द्रमण्डल, ज्योतिषी चक्र, रत्न, प्रकाश करने वाली औषधियाँ और लब्धि से वैक्रिय रूप धारण करने वाला शरीर, ये सब उद्योत नाम कर्म वाले होते हैं।

विहायोगति - विहायसा गति-आकाश में गमन करना विहायोगति है। विहायोगति दो प्रकार की कही गई है - १. प्रशस्त (शुभ) और २. अप्रशस्त (अशुभ)। जिस कर्म के उदय से जीव हंस, हाथी और वृषभ की चाल के समान चले, उसे प्रशस्त (शुभ) विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव ऊँट या गधे की चाल जैसा चले, उसे अप्रशस्त (अशुभ) विहायोगति नाम कर्म कहते हैं।

त्रस नाम - जो जीव त्रास पाते हैं गर्मी आदि से पीड़ित होकर धूप-छाया का सेवन करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। ऐसे बेइन्द्रिय आदि जीव त्रस कहलाते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव को त्रस का शरीर मिले, उसे त्रस नाम कहते हैं।

स्थावर नाम - जिस कर्म के उदय से स्थावर शरीर की प्राप्ति हो उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं। स्थावर एकेन्द्रिय जीव सर्दी और गर्मी से अपना बचाव करने के लिए चल फिर नहीं सकते। जैसे पृथ्वी, पानी आदि के जीव।

सूक्ष्म नाम - जिस कर्म के उदय से बहुत से प्राणियों के (असंख्यात औदारिक) शरीर इकट्ठे होने पर भी छद्मस्थों के इन्द्रिय गोचर (किसी भी इन्द्रिय का विषय) नहीं होता हों, मात्र विशिष्ट ज्ञानियों के द्वारा ही ग्राह्य होता हो, उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय मात्र एकेन्द्रिय जीवों (पांचों स्थावरों) में ही होता है।

नोट - इस प्रकार का अर्थ प्रज्ञापना सूत्र पद प्रथम में किया गया है।

बादर नाम - जिस कर्म के उदय से छद्मस्थों के इन्द्रियों से ग्राह्य (पांचों में से कोई भी इन्द्रिय) शरीर की प्राप्ति हो अथवा जो कर्म बादरता के परिणाम को उत्पन्न करता है उसे बादर नाम कर्म कहते हैं। सभी त्रस कायिक जीवों के बादर नाम कर्म का ही उदय होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त नाम – जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियों से पूर्ण हो, उसे पर्याप्त नाम कहते हैं।

अपर्याप्त नाम – जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मर जावे, उसे अपर्याप्त नाम कर्म कहते हैं।

साधारण शरीर नाम – जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों को एक (औदारिक) शरीर मिले उसे साधारण शरीर नाम कर्म कहते हैं। जैसे – आलू, अदरख, गाजर, मूली, सकरकन्द आदि जमीकन्द।

प्रत्येक शरीर नाम – जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं।

स्थिर नाम – जिस कर्म के उदय से जीव के दांत, हड्डी आदि अवयव मजबूत हों, उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

अस्थिर नाम – जिस कर्म के उदय से जीव कान, भृकुटि (भौंहे) जीभ, होठ आदि अवयव अस्थिर होते हैं (स्वतः हिलते रहते हैं) उसे अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

शुभ नाम – जिस कर्म के उदय से नाभि के ऊपर का भाग शुभ हो, उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं।

अशुभ नाम – जिस कर्म के उदय से जीव के अवयव अशुभ होते हैं उसे अशुभ नाम कर्म कहते हैं।

सुभगनाम – जिस कर्म के उदय से जीव सब का प्रेम पात्र हो, उसे सुभग (सौभाग्य) नाम कर्म कहते हैं।

दुर्भग नाम – जिस कर्म के उदय से जीव किसी का प्रीति पात्र न हो, उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

सुस्वर नाम – जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर (आवाज) कोयल की तरह मधुर हो, उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

दुःस्वर नाम – जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर सुनने में बुरा लगे, उसे दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं।

आदेय नाम – जिस कर्म के उदय से जीव का वचन लोगों में आदरणीय हो, उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

अनादेय नाम – जिस कर्म के उदय से जीव का वचन लोगों में माननीय न हो, उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं।

यशःकीर्ति नाम – जिस कर्म के उदय से लोगों में यश और कीर्ति हो, उसे यशःकीर्ति नाम कर्म कहते हैं। कहा है –

एक दिग्गामिनी कीर्तिः सर्व दिग्गामुकं यशः।

दान पुण्य भवा कीर्तिः पराक्रम कृतं यशः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - एक दिशा में फैलने वाली प्रशंसा को कीर्ति कहते हैं और सब दिशाओं में (चारों तरफ) फैलने वाली प्रशंसा को यश कहते हैं अथवा दान और पुण्य से उत्पन्न प्रशंसा को कीर्ति कहते हैं और पराक्रम अर्थात् पुरुषार्थ से प्राप्त प्रशंसा को यश कहते हैं। वैसे तो कीर्ति और यश एक ही हैं। अपेक्षा कृत ये भेद हैं।

अयशः कीर्ति नाम - जिस कर्म के उदय से लोक में अपयश और अपकीर्ति हो, उसे अयशः कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

निर्माण नाम - जिस कर्म के उदय से जीव के अंगोपांग नियत स्थानवर्ती हों, उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। जैसे चित्रकार चित्र के यथायोग्य स्थानों में अवयवों को बनाता है वैसे ही निर्माण नाम कर्म भी शरीर के अवयवों को व्यवस्थित करता है।

तीर्थंकर नाम - जिस कर्म के उदय से जीव चौंतीस अतिशयों से युक्त होकर त्रिभुवन का पूज्य होता है, उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं।

गोए णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - उच्चागोए य णीयागोए य।

उच्चागोए णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - जाइविसिट्ठया जाव इस्सरियविसिट्ठया।

एवं णीयागोए वि, णवरं जाइविहीणया जाव इस्सरियविहीणया॥ ६१६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गोत्र कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गोत्र कर्म दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - उच्च गोत्र और नीच गोत्र।

प्रश्न - हे भगवन्! उच्च गोत्र कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उच्च गोत्र कर्म आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - जाति विशिष्टता यावत् ऐश्वर्य विशिष्टता।

प्रश्न - हे भगवन्! नीच गोत्र कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नीच गोत्र कर्म आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - जातिविहीनता यावत् ऐश्वर्यविहीनता।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से जीव ऊँच नीच शब्दों से कहा जाय उसे गोत्र कर्म कहते हैं। इसी कर्म के उदय से जीव जाति, कुल आदि की अपेक्षा छोटा बड़ा कहा जाता है। गोत्र कर्म के दो भेद हैं - १. उच्च गोत्र और २. नीच गोत्र। जिस कर्म के उदय से जीव उच्च कुल में जन्म पाता है उसे उच्च गोत्र कहते हैं। उच्च गोत्र आठ प्रकार का कहा गया है - १. जाति विशिष्टता २. कुल विष्टिता ३. बल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्टता ४. रूप विशिष्टता ५. तप विशिष्टता ६. श्रुत विशिष्टता ७. लाभ विशिष्टता और ८. ऐश्वर्य विशिष्टता। जिस कर्म के उदय से जीव नीच कुल में जन्म पाता है उसे नीच गोत्र कहते हैं। नीच गोत्र आठ प्रकार का कहा गया है - १. जाति २. कुल ३. बल ४. रूप ५. तप ६. श्रुत ७. लाभ और ८. ऐश्वर्य से हीन होना। उच्च गोत्र कर्म के उदय से जीव धन, रूप आदि से हीन होता हुआ भी ऊंचा माना जाता है और नीच गोत्र के उदय से धन, रूप आदि से सम्पन्न होते हुए भी नीच ही माना जाता है।

अंतराइए णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - दाणंतराइए जाव वीरियंतराइए॥ ६१७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अन्तराय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अन्तराय कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - दानान्तराय यावत् वीर्यान्तरायकर्म।

विवेचन - जिस कर्म के उदय से आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इन शक्तियों की घात होती है अर्थात् दान, लाभ आदि में रुकावट पड़ती है वह अन्तराय कर्म है। अंतराय कर्म के पांच भेद इस प्रकार हैं -

१. दानान्तराय - दान की सामग्री तैयार हो, गुणवान् पात्र आया हुआ हो, दाता दान का फल भी जानता हो तथा दान देने की इच्छा भी हो इस पर भी जिस कर्म के उदय से जीव दान नहीं कर सकता, उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं।

२. लाभान्तराय - योग्य सामग्री के रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं होती वह लाभान्तराय कर्म है। जैसे - दाता के उदार होते हुए, दान की सामग्री विद्यमान रहते हुए तथा मांगने की कला में कुशल होते हुए भी कोई याचक दान नहीं पाता वह लाभान्तराय कर्म का फल समझना चाहिये।

३. भोगान्तराय - जो वस्तु एक बार भोगने में आवे उसे भोग कहते हैं। जैसे अन्न, फल आदि। त्याग प्रत्याख्यान के न होते हुए तथा भोगने की इच्छा रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से जीव विद्यमान स्वाधीन भोग सामग्री का कृपणता और रोग आदि के वश भोग न कर सके वह भोगान्तराय कर्म है।

४. उपभोगान्तराय - जो चीज बार-बार भोगने में आवे उसे उपभोग कहते हैं। जैसे - वस्त्र, आभूषण आदि। जिस कर्म के उदय से जीव त्याग प्रत्याख्यान न होते हुए तथा उपभोग की इच्छा होते हुए भी विद्यमान स्वाधीन उपभोग सामग्री का कृपणता और रोग आदि के वश उपभोग न कर सके वह उपभोगान्तराय कर्म है।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

५. वीर्यान्तराय - शरीर नीरोग हो, तरुण अवस्था हो, बलवान् हो फिर भी जिस कर्म के उदय से जीव अपनी शक्ति का उपयोग न कर सके, वह वीर्यान्तराय कर्म है। इसके तीन भेद होते हैं। यथा -

१. बाल वीर्यान्तराय - वह कर्म जिसके उदय से संसारी कार्यों को करने में समर्थ होने पर भी जिसके उदय से न कर सके।

२. पण्डित वीर्यान्तराय - वह कर्म जिसके उदय से मोक्ष की इच्छा रखते हुए भी साधु साध्वी संयम प्रायोग्य क्रियाओं को कर न सके।

३. बाल पण्डित वीर्यान्तराय - देश विरति (श्रावक पना) को पालना चाहते हुए भी जिस कर्म के उदय से पाल न सके वह बाल पण्डित वीर्यान्तराय कर्म है।

णाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो॥ ६१८॥

कठिन शब्दार्थ - **अबाहा** - अबाधाकाल, **अबाहुणिया** - अबाधाकाल कम करने पर, **कम्मठिई** - कर्म स्थिति, **कम्मणिसेगो** - कर्म-निषेक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की कही गयी है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। सम्पूर्ण कर्मस्थिति काल में से अबाधाकाल को कम करने पर शेष काल कर्मनिषेक का काल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति, अबाधाकाल और निषेक काल का कथन किया गया है। इनका अर्थ इस प्रकार है -

१. कर्म स्थिति - कर्मों के अधिकतम और न्यूनतम समय तक आत्मा के साथ लगे रहने के काल को कर्म स्थिति कहते हैं।

२. अबाधाकाल - कर्म बंधने के बाद अमुक समय तक किसी भी प्रकार के फल न देने की अवस्था को अबाधा काल कहते हैं।

३. कर्म निषेक - कर्म की उत्कृष्ट स्थिति में से अबाधा काल को कम करने पर जितने काल की उत्कृष्ट स्थिति रहती है वह उसके कर्म निषेक का काल अर्थात् अनुभव योग्य स्थिति का काल है।

ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ३० कोडाकोडी सागरोपम है, अबाधा काल तीन हजार वर्ष का है और ३० कोडाकोडी सागरोपम में से ३ हजार वर्ष कम उसका निषेक काल है।

णिद्दापंचगस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणिया, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

दंसणचउक्कस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा० ॥ ६१९ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निद्रापंचक कर्म की स्थिति कितने काल की कही है?

उत्तर - हे गौतम! निद्रापंचक कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम, तीन सप्तांश ($\frac{3}{7}$) सागरोपम की है और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का तथा सम्पूर्ण कर्मस्थिति काल में से अबाधाकाल को कम करने पर शेष कर्मनिषेक काल है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दर्शनचतुष्क कर्म की स्थिति कितने काल की कही है?

उत्तर - हे गौतम! दर्शनचतुष्क दर्शनावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का हैं और अबाधाकाल न्यून कर्म स्थिति कर्म का निषेक काल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दर्शनावरणीय कर्म के ९ भेदों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति तथा अबाधाकाल और कर्म निषेक काल का कथन किया गया है। निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला और स्त्यानगृद्धि, इन पांच प्रकार की निद्राओं की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम (न्यून) सागरोपम के तीन सप्तमांश यानी एक सागरोपम के सात भाग करें उसमें से तीन भाग अर्थात् सातिया तीन भाग ($\frac{3}{7}$) की होती है। चार दर्शन (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन) की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और सभी (नौ ही भेदों) की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोडाकोडी (कोटाकोटि) सागरोपम की होती है। अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। निषेक काल तीस कोटाकोटि सागरोपम में तीन हजार वर्ष कम है।

सायावेयणिज्जस्स इरियावहियं बंधगं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया, संपराइयबंधगं पडुच्च जहण्णेणं बारस मुहुत्ता, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवम-कोडाकोडीओ, पण्णरसवाससयाइं अबाहा०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सातावेदनीय कर्म की ईर्यापथिक बन्धक की अपेक्षा स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट भेद रहित दो समय की है तथा साम्परायिक बन्धक की अपेक्षा जघन्य बारह मुहूर्त की और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है। निषेक काल पूर्ववत् समझना चाहिए।

असायावेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा० ॥ ६२० ॥

भावार्थ - असातावेदनीय कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग की अर्थात् $\frac{३}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है और अबाधाकाल से न्यू स्थिति कर्म निषेक काल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वेदनीय कर्म की स्थिति, अबाधाकाल एवं निषेक काल का कथन किया गया है। सातावेदनीय की ईर्यापथिक (अकषायिक, केवल योग हेतुक) बंधन की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट रहित दो समय की स्थिति है और सांपरायिक (कषाय हेतुक) बन्धन की अपेक्षा जघन्य बारह मुहूर्त्त की स्थिति है। असातावेदनीय की जघन्य से पल्योपम के असंख्यातवें भाग से न्यून तीन सप्तांश सागरोपम की स्थिति पांच निद्रा की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि उनकी भी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की है।

सम्मत्तवेयणिज्जस्स पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेणं सत्तरिं कोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साइं अबाहा, वि अबाहूणिया०।

सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सम्यक्त्व वेदनीय की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्यक्त्व वेदनीय स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम की है।

मिथ्यात्व-वेदनीय की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम एक सागरोपम की है और उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है तथा कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्मनिषेककाल है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्-मिथ्यात्ववेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

विवेचन - सम्यक्त्व वेदनीय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छासठ सागरोपम उदय (विपाकोदय) की अपेक्षा समझनी चाहिए, बन्ध की अपेक्षा नहीं क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय का बन्ध नहीं होता है। मिथ्यात्व के पुद्गल सम्यक्त्व के योग्य - औपशमिक सम्यक्त्व रूप विशुद्धि तीन प्रकार से होते हैं - सर्व विशुद्ध, अर्द्ध विशुद्ध और अशुद्ध। इसमें जो सर्व विशुद्ध पुद्गल हैं वे 'सम्यक्त्व वेदनीय' कहलाते हैं। जो अर्द्ध विशुद्ध पुद्गल हैं वे 'सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय' और जो अशुद्ध पुद्गल हैं वे 'मिथ्यात्व वेदनीय' कहलाते हैं। अतः सम्यक्त्व वेदनीय और मिश्र वेदनीय इन दो प्रकृतियों का बन्ध संभव नहीं है। मिथ्यात्व वेदनीय की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून एक सागरोपम हैं क्योंकि उसकी उत्कृष्ट स्थिति सित्तर कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण है। सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति उदय की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त है।

कर्म साहित्य में सम्यक्त्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय प्रकृति को मिथ्यात्व मोहनीय के अन्तर्गत समावेश करके स्वतंत्र रूप से इन दोनों प्रकृतियों का बन्ध नहीं माना है। शास्त्रकार तो १४८ ही प्रकृतियों का बन्ध मानते हैं। दोनों प्रकारों को अपेक्षा विशेष से समझ लेने पर दोनों की संगति हो सकती है।

कसायबारसगस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीसं वाससयाइं अबाहा जाव णिसेगो।

भावार्थ - बारह कषायों की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम सागरोपम के सात भागों में से चार भाग ($\frac{४}{७}$ भाग) की है और उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल चालीस सौ (चार हजार) वर्ष का है तथा कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर जो शेष बचे वह कर्म निषेककाल है।

कोहसंजलणे पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दो मासा, उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, चत्तालीसं वाससयाइं अबाहा जाव णिसेगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संज्वलन क्रोध की स्थिति कितने काल की है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! संज्वलन क्रोध की स्थिति जघन्य दो मास की है और उत्कृष्ट चालीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल चार हजार वर्ष का और कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्मनिषेककाल है।

माणसंजलणाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं मासं, उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

मायासंजलणाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अद्धं मासं, उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

लोहसंजलणाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं जहा कोहस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संज्वलन मान की स्थिति कितने काल की है?

उत्तर - हे गौतम! संज्वलन मान की स्थिति जघन्य एक मास की है और उत्कृष्ट क्रोध की स्थिति के समान है।

प्रश्न - हे भगवन्! संज्वलन-माया की स्थिति कितने काल की है?

उत्तर - हे गौतम! संज्वलन-माया की स्थिति जघन्य अर्द्धमास की है और उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान है।

प्रश्न - हे भगवन्! संज्वलन-लोभ की स्थिति कितने काल की है?

उत्तर - हे गौतम! संज्वलन-लोभ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति क्रोध के समान है।

विवेचन - अनन्तानुबन्धी चतुष्क, अप्रत्याख्यान चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्क रूप बारह कषायों में प्रत्येक कषाय की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम चार सप्तांश सागरोपम ($\frac{४}{७}$ भाग) है क्योंकि उनकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण है। संज्वलन कषाय की जघन्य स्थिति दो मास आदि बताई है वह क्षपक के अपने बंध के अंतिम समय की अपेक्षा समझनी चाहिए।

इत्थिवेयस्स णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेण ऊणयं, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरसवाससयाइं अबाहा०।

पुरिसवेयस्स णं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससयाइं अबाहा जाव णिसेगो।

णपुंसगवेयस्स णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसइं वाससयाइं अबाहा०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्रीवेद की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रीवेद की जघन्य स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम सागरोपम के सात भागों में से डेढ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोड़ी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है। निषेक काल पूर्वानुसार समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पुरुष वेद की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष वेद जघन्य स्थिति आठ संवत्सर (वर्ष) की है और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार वर्ष) का है। निषेककाल पूर्ववत् जानना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक वेद की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नपुंसक वेद की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम दो सप्तांश ($\frac{२}{७}$) सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है। कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

हासरई णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स एक्कं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणं उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससयाइं अबाहा०।

अरइभयसोगदुगुंछाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसं वाससयाइं अबाहा०॥ ६२१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हास्य और रति की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! हास्य और रति की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग (एक सप्तांश सागरोपम) की है और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है तथा इसका अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है। कर्मस्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

प्रश्न - हे भगवन्! अरति, भय, शोक और दुगुंछा (जुगुप्सा) मोहनीय कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अरति, भय, शोक और जुगुप्सा की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इनका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है। कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नौ कषाय के भेदों की पृथक्-पृथक् कर्म स्थिति, अबाधाकाल और निषेक काल का कथन किया गया है। कर्म प्रकृतियों की जो उत्कृष्ट स्थिति है उसको सित्तर कोटाकोटी प्रमाण मिथ्यात्व की स्थिति से भाग देने पर जो स्थिति आती है उससे पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम जघन्य स्थिति होती है। जैसे नपुंसक वेद की उत्कृष्ट स्थिति २० कोडाकोडी सागरोपम की है उसमें ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर $\frac{२}{७}$ सागरोपम (दो सप्तांश सागरोपम) आता है इससे पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून नपुंसक वेद की जघन्य स्थिति होती है।

णेरइयाउयस्स णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीतिभागमब्भहियाइं।

तिरिक्खजोणियाउयस्स पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्व-कोडितिभागमब्भहियाइं। एवं मणूसाउयस्स वि।

देवाउयस्स जहा णेरइयाउयस्स ठिइत्ति॥ ६२२॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिकायु की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकायु की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष अन्तर्मुहूर्त्त अधिक की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम करोड़ पूर्व के तृतीय भाग अधिक की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचायु की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक की है। इसी प्रकार मनुष्यायु की स्थिति के विषय में भी समझना चाहिए। देवायु की स्थिति नैरयिकायु की स्थिति के समान समझनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार गतियों के आयुष्य की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति का कथन किया गया है। तिर्यंचायुष्य और मनुष्यायुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक कही है, यह आयुष्य बंध करने वाले करोड़ पूर्व वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्यों और तिर्यंचों की अपेक्षा समझनी चाहिए।

णिरयगइणामए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्सदो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसं वाससयाइं अबाहा०।

तिरियगइणामए जहा णपुंसगवेयस्स।

मणुयगइणामए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं पण्णरस्स सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरसवाससयाइं अबाहा०।

देवगइणामए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं जहा पुरिसवेयस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरक गति-नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नरक गति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है। तिर्यंच गति नाम कर्म की स्थिति नपुंसक वेद की स्थिति के समान है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य गति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य गति नाम कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! देवगति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवगति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र (हजार) सागरोपम के एक सप्तांश ($\frac{१}{७}$) भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति पुरुषवेद की स्थिति के समान है।

एगिंदियजाइणामए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसवाससयाइं अबाहा०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जाति नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जाति नामकर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है। कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

बेइंदियजाइणामए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा०।

तेइंदियजाइणामए णं जहण्णेणं एवं चेव उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवम-कोडाकोडीओ, अट्ठारस वाससयाइं अबाहा०।

चउरिंदियजाइणामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस वाससयाइं अबाहा०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जाति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{९}{३५}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है। कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म-निषेक-काल है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति सम्बन्धी पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पूर्ववत् है। उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जाति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{९}{३५}$ वें भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है। कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

पंचिंदियजाइणामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

ओरालियसरीरणामए वि एवं चेव।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

औदारिक शरीर नामकर्म की स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

वेउव्वियसरीरणामाए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीसइ वाससयाइं अबाहा०।

आहारगसरीरणामाए जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ।

तेयाकम्मसरीरणामाए जहण्णेणं दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

ओरालियवेउव्वियआहारगसरीरोवंगणामाए तिण्णि वि एवं चेव, सरीरबंधणणामाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि पंचण्ह वि एवं चेव, सरीरसंघायणामाए पंचण्ह वि जहा सरीरणामाए कम्मस्स ठिइत्ति।

कठिन शब्दार्थ - अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ - अन्तः कोटाकोटी सागरोपम।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर नामकर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार वर्ष) का है।

आहारक शरीर नाम कर्म की जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तःकोटाकोटी सागरोपम की है।

तैजस और कार्मण शरीर नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

औदारिक शरीरोपांग, वैक्रिय शरीरोपांग और आहारक शरीरोपांग, इन तीनों की स्थिति भी इसी प्रकार है। पांचों शरीर बन्धन नाम कर्मों की स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए, पांचों शरीर संघात नाम कर्मों की स्थिति भी शरीर नाम कर्म की स्थिति के समान है।

विवेचन - वैक्रिय शरीर नाम कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है इसमें मिथ्यात्व मोहनीय की स्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर जघन्य स्थिति सागरोपम के दो सप्तांश आती है किन्तु वैक्रिय षट्क एकेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय बांधते नहीं, असंज्ञी पंचेन्द्रिय आदि ही बांधते हैं और असंज्ञी पंचेन्द्रिय आदि जघन्य से बंध करते हुए एकेन्द्रिय के बंध की अपेक्षा हजार गुणा बंध करते हैं क्योंकि "**पणवीसा पन्नासा सयं सहस्सं च गुणकारः**" पच्चीस, पचास, सौ और सहस्र गुणा करना- ऐसा शास्त्र वचन है अतः जो सागरोपम के दो सप्तांश हैं उन्हें हजार से गुणा करने पर सूत्र में कहे अनुसार स्थिति आती है यानी हजार सागरोपम के दो सप्तांश स्थिति होती है।

आहारक शरीर नाम कर्म की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तः कोटाकोटी सागरोपम की कही गई है परन्तु जघन्य से उत्कृष्ट संख्यात गुणा समझना चाहिए।

वइरोसभणारायसंघयणणामाए जहा रइ णामाए।

उसभणारायसंघयणणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स छ पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं बारस सागरोवमकोडाकोडीओ, बारस वाससयाइं अबाहा०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णारायसंघयणणामस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स सत्त पणत्तीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमकोडाकोडीओ चउद्दस वाससयाइं अबाहा०।

अद्धणारायसंघयणणामस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स अट्ठ पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं सोलस सागरोवम-कोडाकोडीओ, सोलस वाससयाइं अबाहा०।

खीलियासंघयणे णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस वाससयाइं अबाहा०।

छेवट्ठसंघयणणामस्स पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

भावार्थ - वज्रऋषभनाराचसंहनन नाम कर्म की स्थिति रति नाम कर्म की स्थिति के समान है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऋषभनाराचसंहनन नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ऋषभनाराचसंहनन नाम कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम के $\frac{६}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट स्थिति बारह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बारह सौ वर्ष का है।

नाराचसंहनन नामकर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{७}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल चौदह सौ वर्ष का है।

अर्द्ध नाराच संहनन नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{८}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल सोलह सौ वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! कीलिकासंहनन नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! कीलिकासंहनन नाम कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{९}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल अठारह सौ वर्ष का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! सेवार्त्त संहनन नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सेवार्त्त संहनन नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग और उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

विवेचन - वज्रऋषभ नाराच संहनन नाम कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सप्तमांश सागरोपम और उत्कृष्ट दस कोटाकोटि सागरोपम की होती है। शेष संहनन नाम कर्मों की स्थिति भावार्थ से स्पष्ट है।

एवं जहा संघयणणामाए छब्भणिया एवं संठाणा वि छब्भाणियव्वा।

भावार्थ - जिस प्रकार छह संहनन नाम कर्मों की स्थिति कही है उसी प्रकार छह संस्थान नाम कर्मों की भी स्थिति कहनी चाहिए।

विवेचन - संहनन और संस्थान नाम कर्म की स्थिति के लिए कहा है - "**संघयणे संठामे पढमे दस उवरिमेसु दुगवुड्ढी**" - प्रथम संहनन और प्रथम संस्थान की स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसके बाद के संहनन और संस्थान की स्थिति के लिए दो-दो सागरोपम की वृद्धि करनी चाहिए।

प्रशस्त (शुभ) संहनन व संस्थान की स्थिति कम होती है। उसके बाद क्रमशः अप्रशस्त (अशुभ), अप्रशस्ततर (अशुभतर) संहनन एवं संस्थानों की स्थिति अधिक अधिक होती है। स्थिति के अनुपात से अबाधाकाल भी अधिक समझना चाहिए।

सुक्किल्लवण्ण णामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससयाइं अबाहा०।

हालिद्दवण्ण णामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स पंच अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अद्धतेरससागरोवमकोडाकोडी, अद्धतेरस वाससयाइं अबाहा०।

लोहियवण्ण णामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स छ अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाहा०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णीलवण्ण णामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स सत्त अट्ठावीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अद्धट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अद्धट्ठारस वाससयाइं अबाहा०।

कालवण्ण णामाए जहा छेवट्ठसंघयणणामस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शुक्ल वर्ण नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! शुक्ल वर्ण नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! हारिद्र (पीत) वर्ण नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! हारिद्र वर्ण नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{५}{२८}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति साढ़े बारह कोडाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधाकाल साढ़े बारह सौ वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! लोहित (रक्त) वर्ण नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही है?

उत्तर - हे गौतम! लोहित वर्ण नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{६}{२८}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! नील वर्ण नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नील वर्ण नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{७}{२८}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति साढ़े सत्तरह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल साढ़े सत्तरह सौ वर्ष का है।

कृष्ण (काला) वर्ण नाम कर्म की स्थिति सेवार्त्त संहनन नाम कर्म की स्थिति के समान है।

सुब्भिगंध णामाए पुच्छा?

गोयमा! जह सुक्किकल्लवण्णणामस्स, दुब्भिगंधणामाए जहा छेवट्ठसंघयणस्स, रसाणं महुराईणं जहा वण्णाणं भाणियं तहेव परिवाडीए भाणियव्वं।

कठिन शब्दार्थ - परिवाडीए - परिपाटी (क्रम) से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सुरभिगन्ध नाम कर्म की स्थिति विषयक प्रश्न (पृच्छा)?

उत्तर - हे गौतम! सुरभिगंध नाम कर्म की स्थिति शुक्ल वर्ण नाम कर्म की स्थिति के समान है।

दुरभिगन्ध नाम कर्म की स्थिति सेवार्त्त संहनन नाम कर्म की स्थिति के समान है।

मधुर आदि रसों की स्थिति का कथन वर्णों की स्थिति के समान उसी क्रम से कहना चाहिए।

विवेचन - सुरभिगंध नाम कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल एक हजार वर्ष का है। दुरभिगंध नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग और उत्कृष्ट स्थिति २० कोडाकोडी सागरोपम है। अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है।

मधुर आदि रसों की स्थिति व अबाधाकाल इस प्रकार हैं -

क्रं.	नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल
१.	मधुर रस	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	दस कोडाकोडी सागरोपम	१००० वर्ष
२.	अम्ल (खट्टा) रस	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{५}{२८}$ भाग	साढ़े बारह कोडाकोडी सागरोपम	१२५० वर्ष
३.	कषाय रस	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{६}{२८}$ भाग	पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम	१५०० वर्ष
४.	कटुक रस	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{७}{२८}$ भाग	साढ़े सतरह कोडाकोडी सागरोपम	१७५० वर्ष
५.	तिक्त रस	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	बीस कोडाकोडी सागरोपम	२००० वर्ष

इन सभी प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्मनिषेक काल आता है।

फासा जे अपसत्था तेसिं जहा छेवट्ठस्स, जे पसत्था तेसिं जहा सुक्किल्ल-वण्णणामस्स।

भावार्थ - जो अप्रशस्त स्पर्श हैं, उनकी स्थिति सेवार्त्त संहनन की स्थिति के समान तथा जो प्रशस्त स्पर्श हैं, उनकी स्थिति शुक्ल वर्ण नाम कर्म की स्थिति के समान समझनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - स्पर्श दो प्रकार के हैं - १. प्रशस्त और २. अप्रशस्त। आठ स्पर्शों में से मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण रूप प्रशस्त स्पर्श हैं और कर्कश, गुरु, रूक्ष और शीत रूप अप्रशस्त स्पर्श हैं। प्रशस्त स्पर्शों की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के एक सप्तांश और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम है। अबाधाकाल एक हजार वर्ष का और अबाधाकाल हीन कर्म स्थिति कर्म दलिक निषेक समझना चाहिए। अप्रशस्त स्पर्शों की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के दो सप्तांश और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है। अबाधाकाल हीन कर्म स्थिति कर्म दलिक निषेक समझना चाहिए।

अगुरुलहुमाणाए जहा छेवट्ठस्स, एवं उवघायणामाए वि, पराघायणामाए वि एवं चेव।

भावार्थ - अगुरुलघु नाम कर्म की स्थिति सेवार्त्त संहनन की स्थिति के समान समझना, इसी प्रकार उपघात नाम कर्म और पराघात नाम कर्म की स्थिति के विषय में भी समझना चाहिए।

विवेचन - अगुरुलघु, उपघात और पराघात नामकर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दो हजार वर्ष का और कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

णिरयाणुपुव्वीणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीस सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

तिरियाणुपुव्वीए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

मणुयाणुपुव्वीणामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाहा०।

देवाणुपुव्वीणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरकानुपूर्वी नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! नरकानुपूर्वी नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचानुपूर्वी नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंचानुपूर्वी नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

प्रश्न - मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म की स्थिति के विषय में प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१॥}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का है।

प्रश्न - हे भगवन्! देवानुपूर्वी नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवानुपूर्वी नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है।

ऊसासणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहा तिरियाणुपुव्वीए। आयवणामाए वि एवं चेव। उज्जोयणामाए वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उच्छ्वास नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उच्छ्वास नाम कर्म की स्थिति तिर्यंचानुपूर्वी के समान है। आतप नाम कर्म और उद्योत नाम कर्म की स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

पसत्थविहायोगइणामाए वि पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एग सागरोवमस्स सत्तभागं, उक्कोसेणं दस सागरोवम-कोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा०।

अपसत्थविहायोगइणामस्स पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, वीस य वाससयाइं अबाहा०।

तसणामाए थावरणामाए य एवं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है। दस सौ (एक हजार) वर्ष का अबाधाकाल है।

भावार्थ - प्रश्न - अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की स्थिति विषयक पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है और उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का है।

त्रस नाम कर्म और स्थावर नाम कर्म की स्थिति भी इसी प्रकार जाननी चाहिए।

सुहुमणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणया, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ, अट्ठारस य वाससयाइं अबाहा०।

बायरणामाए जहा अपसत्थविहायोगइणामस्स।

एवं पज्जत्तणामाए वि, अपज्जत्तणामाए जहा सुहुमणामस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{९}{३५}$ भाग की और उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल अट्ठारह सौ वर्ष का है।

बादर नाम कर्म की स्थिति अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की स्थिति के समान है।

इसी प्रकार पर्याप्त नाम कर्म की स्थिति के विषय में भी समझना चाहिए। अपर्याप्त नाम कर्म की स्थिति सूक्ष्म नाम कर्म की स्थिति के समान है।

पत्तेयसरीरणामाए वि दो सत्तभागा, साहारणसरीरणामाए जहा सुहुमस्स।

थिरणामाए एगं सत्तभागं, अथिरणामाए दो,

सुभणामाए एगो, असुभणामाए दो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुभगणामाए एगो, दूभगणामाए दो,

सूसरणामाए एगो, दूसरणामाए दो,

आइज्जणामाए एगो, अणाइज्जणामाए दो।

जसोकित्तिणामाए जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससयाइं अबाहा।

भावार्थ - प्रत्येक शरीर नाम कर्म की स्थिति भी $\frac{२}{७}$ भाग की है। साधारण शरीर नामकर्म की स्थिति सूक्ष्म नाम कर्म की स्थिति के समान है। स्थिर नाम कर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की है तथा अस्थिर नाम कर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है। शुभ नाम कर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की है तथा अशुभनामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है। सुभग्नामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और दुर्भग नाम कर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है। सुस्वरनामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और दु:स्वरनामकर्म की स्थिति $\frac{२}{७}$ भाग की है। आदेयनामकर्म की स्थिति $\frac{१}{७}$ भाग की और अनादेयनामकर्म की $\frac{२}{७}$ भाग की है। यश:कीर्ति नाम कर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का होता है।

अजसोकित्तिणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहा अपसत्थविहायोगणामस्स।

एवं णिम्माणणामाए वि।

तित्थगरणामाए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोसागरोवम कोडाकोडीओ, उक्कोसेणं वि अंतोसागरोवम-कोडाकोडीओ।

एवं जत्थ एगो सत्तभागो तत्थ उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस वाससयाइं अबाहा, जत्थ दो सत्तभागा तत्थ उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ वीस य वाससयाइं अबाहा॥ ६२३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अयश:कीर्ति नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अयश: कीर्ति नाम कर्म की स्थिति अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की स्थिति के समान है। इसी प्रकार निर्माण नाम कर्म की स्थिति के विषय में समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न – हे भगवन्! तीर्थंकर नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर – हे गौतम! तीर्थंकर नाम कर्म की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तःकोडाकोडी सागरोपम की कही गई है।

जहाँ जघन्य स्थिति सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग की हो, वहाँ उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है तथा जहाँ जघन्य स्थिति सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग की है, वहाँ उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की और अबाधाकाल बीस सौ (दो हजार) वर्ष का समझना चाहिए।

उच्चा गोयस्स णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता, उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दस य वाससयाइं अबाहा।

णीयागोयस्स पुच्छा?

गोयमा! जहा अपसत्थविहायोगइणामस्स॥ ६२४॥

भावार्थ - प्रश्न – हे भगवन्! उच्च गोत्र नाम कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर – हे गौतम! उच्च गोत्र नाम कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है।

प्रश्न – हे भगवन्! नीच गोत्र कर्म की स्थिति विषयक प्रश्न?

उत्तर – हे गौतम! नीच गोत्र कर्म की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अप्रशस्त विहायोगति नाम कर्म की स्थिति के समान है।

अंतराइए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो॥ ६२५॥

भावार्थ - प्रश्न – हे भगवन्! अन्तराय कर्म की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर – हे गौतम! अन्तराय कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। कर्म स्थिति में से अबाधाकाल कम करने पर शेष कर्म निषेक काल है।

विवेचन – आठ कर्मों की सभी उत्तर प्रकृतियों की जघन्य स्थिति, उत्कृष्ट स्थिति, अबाधाकाल और निषेक काल की तालिका इस प्रकार है –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१.	ज्ञानावरणीय (पंचविध)	अन्तर्मुहूर्त्त	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३ हजार वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम
२.	दर्शनावरणीय निद्रापंचक	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३ हजार वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम
३.	दर्शनावरणीय दर्शनचतुष्क	अन्तर्मुहूर्त्त	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३ हजार वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम
४.	सातावेदनीय कर्म				
	१ ईर्यापथिकापेक्षा से	दो समय	दो समय	–	–
					–
	२ साम्परायिक बन्धक की अपेक्षा से	बारह मुहूर्त्त	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
५.	असातावेदनीय कर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{३}{७}$ भाग	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में तीन हजार वर्ष कम
६.	सम्यक्त्व मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	कुछ अधिक ६६ सागरोपम	–	–
७.	मिथ्यात्व मोहनीय	पल्योपम का असंख्यातवां भाग कम $\frac{१}{७}$ सागरोपम	७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	७००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में से ७ हजार वर्ष कम
८.	सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	अन्तर्मुहूर्त्त	–	–
९.	कषाय-द्वादशक (अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरण)	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{४}{७}$ भाग	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ४ हजार वर्ष कम
१०.	संज्वलनक्रोध मोहनीय	दो मास	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में से ४ हजार वर्ष कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
११.	संज्वलनमान मोहनीय	एक मास	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में से ४ हजार वर्ष कम
१२.	संज्वलनमाया मोहनीय	अर्द्ध मास	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४००० वर्ष	" " " "
१३.	संज्वलनलोभ मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त्त	४० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	४००० वर्ष	" " " "
१४.	स्त्रीवेद मोहनीय	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का १॥/७ भाग	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्टस्थिति में १५०० वर्ष कम
१५.	पुरुषवेद मोहनीय	८ वर्ष की	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्टस्थिति में १००० वर्ष कम
१६.	नपुंसकवेद मोहनीय	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम
१७-१८.	हास्य और रति मोहनीय	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का १/७ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में से १००० वर्ष कम
१९-२२.	अरति, भय, शोक, जुगुप्सा	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
२३.	नारकायु	अन्तर्मुहूर्त्त अधिक १० हजार वर्ष	करोड़ पूर्व का तीसरा भाग अधिक ३३ सागरोपम	–	–
२४.	तिर्यंचायु	अन्तर्मुहूर्त्त	करोड़ पूर्व का तीसरा भाग अधिक ३ पल्योपम	–	–
२५.	मनुष्यायु	अन्तर्मुहूर्त्त	" " " "	–	–
२६.	देवायु	अन्तर्मुहूर्त्त अधिक १० हजार वर्ष	करोड़ पूर्व के तृतीय भाग अधिक ३३ सागरोपम की	–	–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
२७.	नरकगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्रसागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
२८.	तिर्यंचगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम भाग सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
२९.	मनुष्यगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१॥}{७}$ भाग	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में१५०० वर्ष कम
३०.	देवगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
३१.	एकेन्द्रियजातिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
३२.	द्वीन्द्रियजातिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
३३.	त्रीन्द्रियजाति नामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
३४.	चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
३५.	पंचेन्द्रियजातिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
३६.	औदारिकशरीरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
३७.	वैक्रियशरीरनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	" " " "	" "	" " " "

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
३८.	आहारकशरीरनामकर्म	अन्त:कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्त:कोड़ाकोड़ी सागरोपम	" "	" " " "
३९-४०.	तैजसशरीरनामकर्म कार्मणशरीरनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० काड़ोकाड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
४१.	औदारिकशरीरांगोपांग	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
४२.	वैक्रियशरीरांगोपांग	पूर्ववत्	" " " "	" "	" " " "
४३.	आहारकशरीरांगोपांग नामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
४४-४८.	पंचशरीरबन्धननामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
४९-५३.	पंचशरीरसंघातनामकर्म	शरीरनामकर्म के समान	शरीर नामकर्मवत्	पूर्ववत्	पूर्ववत्
५४.	वज्रऋषभनाराचसंहनननाम	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
५५.	ऋषभनाराचसंहनन	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{६}{३५}$ भाग	१२ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१२०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १२०० वर्ष कम
५६.	नाराचसंहनननामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{७}{३५}$ भाग	१४ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१४०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १४०० वर्ष कम
५७.	अर्द्धनाराचसंहनन	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{८}{३५}$ भाग	१६ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१६०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १६०० वर्ष कम
५८.	कीलिकासंहनन	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
५९.	सेवार्त्तसंहनन	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम
६०–६५.	छह प्रकार के संस्थाननामकर्म	छह संहनननामकर्म के समान	" " " "	षट्संहननवत्	षट्संहनन के समान
६६.	शुक्लवर्णनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
६७.	पीतवर्णनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{५}{५८}$ भाग	१२ ॥ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१२५० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १२५० वर्ष कम
६८.	रक्तवर्णनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{६}{५८}$ भाग	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
६९.	नीलवर्णनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{७}{२८}$ भाग	१७ ॥ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१७५० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १७५० वर्ष कम
७०.	कृष्णवर्णनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
७१.	सुरभिगन्धनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
७२.	दुरभिगन्धनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
७३–७७.	मधुर आदि पांच रस नामकर्म	शुक्लवर्ण आदि पांच वर्णों की स्थिति के समान	शुक्लादि पंचवर्णवत्	पंचवर्णवत्	पंचवर्णवत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
७८-८१.	अप्रशस्त स्पर्श चार (कर्कश, गुरु, रूक्ष, शीत)	सेवार्तसंहनन के समान	सेवार्त्तसंहननवत्	सेवार्त्तसंहननवत्	सेवार्त्तसंहननवत्
८२-८५.	प्रशस्त स्पर्श चार (मृदु, लघु, स्निग्ध, उष्ण)	शुक्लवर्णनामकर्म की स्थिति के समान	शुक्लवर्णवत्	शुक्लवर्णवत्	शुक्लवर्णवत्
८६.	अगुरुलघुनामकर्म	सेवार्त्तसंहनन के समान	सेवार्त्तवत्	सेवार्त्तवत्	सेवार्त्तवत्
८७.	उपघातनामकर्म	” ” ” ”	” ” ” ”	” ”	” ” ” ”
८८.	पराघात नामकर्म	” ” ” ”	” ” ” ”	” ”	” ” ” ”
८९.	नरकानुपूर्वीनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में दो हजार वर्ष कम
९०.	तिर्यंचानुपूर्वीनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	” ” ” ”	” ”	” ” ” ”
९१.	मनुष्यानुपूर्वीनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१॥}{७}$ भाग	१५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१५०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १५०० वर्ष कम
९२.	देवानुपूर्वीनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सहस्र सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
९३.	उच्छ्वासनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
९४.	आतपनामकर्म	” ” ” ”	” ” ” ”	” ”	” ” ” ”
९५.	उद्योतनामकर्म	” ” ” ”	” ” ” ”	” ”	” ” ” ”

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
९६.	प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम
९७.	अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
९८.	त्रसनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
९९.	स्थावरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
१००.	सूक्ष्मनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
१०१.	बादरनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २००० वर्ष कम
१०२.	पर्याप्तनामकर्म	बादर के समान	बादरवत्	बादरवत्	बादरवत्
१०३.	अपर्याप्तनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग	१८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१८०० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १८०० वर्ष कम
१०४.	साधारणशरीरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
१०५.	प्रत्येकशरीरनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{२}{७}$ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
१०६.	अस्थिरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
१०७.	स्थिरनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १ हजार वर्ष कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	कर्मप्रकृति का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	अबाधाकाल	निषेककाल
१०८.	शुभनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
१०९.	सुभगनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११०.	सुस्वरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
१११.	आदेयनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११२.	यशःकीर्तिनामकर्म	आठ मुहूर्त्त	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	" " " "
११३.	अशुभनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
११४.	दुर्भगनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११५.	दुःस्वरनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११६.	अनादेयनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११७.	अयशःकीर्तिनाम	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११८.	निर्माणनामकर्म	" " " "	" " " "	" "	" " " "
११९.	तीर्थंकरनामकर्म	अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम	" "	" " " "
१२०.	उच्चगोत्रनामकर्म	आठ मुहूर्त्त	१० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	१००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में १००० वर्ष कम
१२१.	नीचगोत्रनामकर्म	पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का २/७ भाग	२० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	२००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में २ हजार वर्ष कम
१२२.	अन्तरायनामकर्म	अन्तर्मुहूर्त्त	३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम	३००० वर्ष	उत्कृष्ट स्थिति में ३ हजार वर्ष कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगिंदिया णं भंते! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। एवं णिद्दापंचगस्स वि, दंसणचउक्कस्स वि।

कठिन शब्दार्थ - **पडिपुण्णे** - परिपूर्ण।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग का और उत्कृष्ट परिपूर्ण सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग का बन्ध करते हैं।

इसी प्रकार निद्रापंचक और दर्शनचतुष्क का जघन्य और उत्कृष्ट बन्ध भी समझना चाहिए।

एगिंदिया णं भंते! जीवा सायावेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति। असायावेयणिज्जस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव सातावेदनीय कर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{१॥}{७}$ भाग और उत्कृष्ट पूरे सागरोपम के $\frac{१॥}{७}$ भाग का बन्ध करते हैं।

असातावेदनीय का बन्ध ज्ञानावरणीय के समान समझना चाहिए।

एगिंदिया णं भंते! जीवा सम्मत्तवेयणिज्जस्स किं बंधंति?

गोयमा! णत्थि किंचि बंधंति।

एगिंदिया णं भंते! जीवा मिच्छत्तवेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एगिंदिया णं भंते! जीवा सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स० किं बंधंति?

गोयमा! णत्थि किंचि बंधंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव सम्यक्त्व वेदनीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव सम्यक्त्व वेदनीय कर्म का बन्ध करते ही नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम का और उत्कृष्ट पूरे एक सागरोपम का बंध करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव सम्यग्-मिथ्यात्व वेदनीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव सम्यग्-मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का बंध नहीं करते हैं।

एगिंदिया णं भंते! जीवा कसायबारसगस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। एवं कोहसंजलणाए वि जाव लोभसंजलणाए वि। इत्थिवेयस्स जहा सायावेयणिज्जस्स।

एगिंदिया पुरिसवेयस्स कम्मस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एगिंदिया णपुंसगवेयस्स कम्मस्स जहण्णेणं सागरोवमस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति।

हासरईए जहा पुरिसवेयस्स,

अरइभयसोगदुगुंछाए जहा णपुंसगवेयस्स।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव बारह कषायों की कितनी स्थिति बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव बारह कषायों की जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{४}{७}$ भाग और उत्कृष्ट पूरे $\frac{४}{७}$ भाग की स्थिति बांधते हैं। इसी प्रकार यावत् संज्वलन क्रोध से लेकर यावत् संज्वलन लोभ तक की स्थिति समझनी चाहिये। स्त्रीवेद की स्थिति साता वेदनीय की स्थिति के समान जाननी चाहिए।

एकेन्द्रिय जीव पुरुष वेद कर्म की जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम का $\frac{१}{७}$ भाग और उत्कृष्ट पूरे $\frac{१}{७}$ भाग की स्थिति बांधते हैं।

एकेन्द्रिय जीव नपुंसकवेद कर्म की जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण वही स्थिति बांधते हैं। हास्य और रति कर्म की स्थिति पुरुष वेद के समान और अरति, भय, शोक और जुगुप्सा की स्थिति नपुंसक वेद के समान समझनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाउयदेवाउयणिरयगइणाम-देवगइणाभवेउव्वियसरीरणाम-आहारग-सरीरणाम-णेरइयाणुपुव्विणामदेवाणुपुव्विणामतित्थगरणाम-एयाणि णव पयाणि ण बंधंति।

भावार्थ - नरकायु, देवायु, नरकगतिनाम, देवगतिनाम, वैक्रिय शरीरनाम, आहारक शरीर नाम, नरकानुपूर्वी नाम, देवानुपूर्वी नाम, तीर्थंकर नाम, इन नौ प्रकृतियों का एकेन्द्रिय जीव बन्ध नहीं करते हैं।

तिरिक्खजोणियाउयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी सत्तहिं वाससहस्सेहिं वाससहस्सइभागेण य अहियं बंधंति। एवं मणुस्साउयस्स वि।

तिरियगइणामाए जहा णपुंसगवेयस्स। मणुयगइणामाए जहा सायावेयणिज्जस्स। एगिंदियजाइणामाए पंचिंदियजाइणामाए य जहा णपुंसगवेयस्स।

भावार्थ - एकेन्द्रिय जीव तिर्यंच आयु का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट सात हजार वर्ष और एक हजार वर्ष के तीसरे भाग अधिक पूर्व कोटी (करोड़ पूर्व) का बन्ध करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य आयुष्य की स्थिति भी समझनी चाहिये।

तिर्यंच गति नाम कर्म की स्थिति नपुंसकवेद के समान है और मनुष्य गति नाम कर्म की स्थिति सातावेदनीय के समान है। एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म और पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म की स्थिति नपुंसक वेद के स्थिति के समान समझनी चाहिये।

बेइंदियतेइंदियजाइणामाए पुच्छा? जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। चउरिंदियणामाए वि जहण्णेणं सागरोवमस्स णव पणतीसइभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति।

भावार्थ - बेइंद्रिय तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म के बंध काल विषयक पृच्छा?

उत्तर - बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय नाम कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून सागरोपम का $\frac{९}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट सम्पूर्ण उतनी ही स्थिति बांधते हैं। चउरिन्द्रिय नाम कर्म की भी जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के $\frac{९}{३५}$ भाग और उत्कृष्ट सम्पूर्ण उतनी ही स्थिति बांधते हैं।

एवं जत्थ जहण्णगं दो सत्तभागा तिण्णि वा चत्तारि वा सत्तभागा अट्ठावीसइभागा भवंति, तत्थ णं जहण्णेणं ते चेव पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणगा भाणियव्वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। जत्थ णं जहण्णेणं एगो वा दिवड्ढो वा सत्तभागो तत्थ जहण्णेणं तं चेव भाणियव्वं उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

भावार्थ - इसी प्रकार जहाँ सागरोपम के दो सप्तमांश ($\frac{2}{7}$ भाग) तीन सप्तमांश ($\frac{3}{7}$ भाग) चार सप्तमांश ($\frac{4}{7}$ भाग) अथवा अठावीसवें भाग की स्थिति होती है वहाँ उतने भाग जघन्य से पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम कहना चाहिए और जहाँ जघन्य से एक सप्तमांश ($\frac{1}{7}$ भाग) या डेढ सप्तमांश ($\frac{1॥}{7}$ भाग) की स्थिति हो वहाँ उतने ही भाग पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम कहना चाहिए और उत्कृष्ट उतने ही भाग की परिपूर्ण स्थिति बांधते हैं, इस प्रकार समझना चाहिये।

जसोकित्तिउच्चागोयाणं जहण्णेणं सागरोवमस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

भावार्थ - यशःकीर्ति और उच्चगोत्र कर्म की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सागरोपम के एक सप्तमांश ($\frac{1}{7}$ भाग) और उत्कृष्ट उतनी ही परिपूर्ण स्थिति बांधते हैं।

अंतराइयस्स णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहा णाणावरणिज्जस्स जाव उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति॥ ६२६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अन्तराय कर्म का बन्ध कितने काल का करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अन्तराय कर्म का बन्धकाल ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझ लेना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय जीवों के ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के जघन्य और उत्कृष्ट बन्ध काल की प्ररूपणा की गई है।

बेइंदिया णं भंते! जीवा णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमपणवीसाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणया, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति। एवं णिद्दापंचगस्सवि।

एवं जहा एगिंदियाणं भणियं तहा बेइंदियाण वि भाणियव्वं, णवरं सागरोवमपणवीसाए सह भाणियव्वा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणा, सेसं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति। जत्थ एगिंदिया ण बंधंति तत्थ एए वि ण बंधंति।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

$\frac{3}{7}$ भाग का एवं उत्कृष्ट परिपूर्ण स्थिति का बंध करते हैं। इसी प्रकार निद्रापंचक की स्थिति के विषय में समझना चाहिये।

इसी प्रकार जैसे एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति का कथन किया गया है उसी प्रकार बेइन्द्रिय जीवों की बंध स्थिति का कथन करना चाहिये। परन्तु विशेषता यह है कि पच्चीस गुणा सागरोपम पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून बंध कहना चाहिये। शेष सभी पूर्वोक्तानुसार पूर्ण स्थिति का बंध करते हैं। जिन कर्म प्रकृतियों को एकेन्द्रिय जीव नहीं बांधते उन प्रकृतियों को ये बेइन्द्रिय भी नहीं बांधते हैं।

बेइंदिया णं भंते! जीवा मिच्छत्तवेयणिज्जस्स० किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमपणवीसं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का बन्ध कितने काल का करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट वही स्थिति को परिपूर्ण बांधते हैं।

तिरिक्खजोणियाउयस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिं चउहिं वासेहिं अहियं बंधंति। एवं मणुयाउयस्स वि। सेसं जहा एगिंदियाणं जाव अंतराइयस्स॥ ६२७॥

भावार्थ - बेइन्द्रिय जीव तिर्यंचायु को जघन्य अन्तर्मुहूर्त का उत्कृष्ट चार वर्ष अधिक करोड़ पूर्व वर्ष का बंध करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु का कथन भी करना चाहिए। शेष सारा वर्णन यावत् अन्तरायकर्म तक एकेन्द्रियों के समान समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बेइन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का बन्ध कितने काल का करते हैं इसका वर्णन किया गया है।

तेइंदिया णं भंते! जीवा णाणावरणिज्जस्स० किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासाए तिण्णि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं जस्स जइ भागा तस्स सागरोवमपण्णासाए सह भाणियव्वा।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म का कितने काल का बंध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पचास सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग का और उत्कृष्ट परिपूर्ण स्थिति का बंध करते हैं। इस प्रकार जिसके जितने भाग हैं, उतने उनके पचास सागरोपम के साथ कह देने चाहिए।

तेइंदिया णं भंते!० मिच्छत्तवेयणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमपण्णासं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! तेइन्द्रिय जीव मिथ्यात्व-वेदनीय कर्म का कितने काल का बन्ध करते हैं।

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जीव मिथ्यात्व वेदनीय कर्म का जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पचास सागरोपम का और उत्कृष्ट परिपूर्ण स्थिति का बन्ध करते हैं।

तिरिक्खजोणियाउस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडि सोलसेहि राइंदिएहिं राइंदिय तिभागेण य अहियं बंधंति, एवं मणुस्साउयस्स वि। सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स॥ ६२८॥

भावार्थ - तेइन्द्रिय जीव तिर्यंचायु का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट सोलह रात्रि-दिवस तथा एक रात्रि दिवस के तीसरे भाग अधिक करोड़ पूर्व का बन्ध करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु की स्थिति समझनी चाहिये। शेष सारा वर्णन यावत् अन्तराय कर्म तक की स्थिति बेइन्द्रिय के समान समझनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तेइन्द्रिय की स्थिति बंध का कथन किया गया है। कर्मों की जितनी उत्कृष्ट स्थिति है उसे सित्तर कोटाकोटी से भाग देने पर जो स्थिति आती है उसे पचास से गुणा करने पर तेइन्द्रिय की उन उन कर्मों की स्थिति आती है।

चउरिंदिया णं भंते! जीवा णाणावरणिजस्स० किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसयस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं जस्स जइ भागा तस्स सागरोवमसएण सह भाणियव्वा।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म का कितने काल का बंध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम सौ सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग का और उत्कृष्ट परिपूर्ण स्थिति का बन्ध करते हैं। इसी प्रकार जिन जिन प्रकृतियों की सागरोपम के जितने भाग की स्थिति कही है उससे सौ गुणा तेइन्द्रियों की स्थिति कह देनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणियाउयस्स कम्मस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिं दोहिं मासेहिं अहियं। एवं मणुस्साउयस्स वि।

सेसं जहा बेइंदियाणं, णवरं मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसयं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति, सेसं जहा बेइंदियाणं जाव अंतराइयस्स॥ ६२९॥

भावार्थ - तिर्यंचायु कर्म का बन्धकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट दो मास अधिक करोड़ पूर्व का है। इसी प्रकार मनुष्यायु का बन्धकाल भी समझना चाहिए। शेष बेइन्द्रियों के समान कह देना चाहिए। विशेषता यह कि मिथ्यात्व वेदनीय का बन्ध काल जघन्य पल्योपम का असंख्यातवें भाग कम सौ सागरोपम का और उत्कृष्ट परिपूर्ण सौ सागरोपम का है। शेष सारा वर्णन बेइन्द्रियों के समान यावत् अंतराय कर्म तक समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चउरिन्द्रिय जीवों के बन्धकाल की प्ररूपणा की गयी है। चउरिन्द्रिय जीवों का बन्धकाल एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा १०० गुणा अधिक होता है।

असण्णी णं भंते! जीवा पंचिंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे बंधंति, एवं सो चेव गमो जहा बेइंदियाणं णवरं सागरोवमसहस्सेण समं भाणियव्वं जस्स जइ भागत्ति।

भावार्थ - प्रश्न-हे भगवन्! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म कितने काल का बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{३}{७}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण उतनी ही स्थिति का बन्ध करते हैं। इस प्रकार बेइन्द्रियों के विषय में जो गम (आलापक-पाठ) कहा है, वही यहाँ समझना चाहिए। विशेषता यह है कि जिस कर्म प्रकृति की सागरोपम के जितने भाग की स्थिति कही है उसे उतने ही भाग हजार गुणा सागरोपम सहित कहना चाहिये।

मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं सागरोवमसहस्सं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं।

णेरइयाउयस्स जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं पुव्वकोडि तिभागमब्भहियं बंधंति। एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणियाउयस्स वि, णवरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं। एवं मणुयाउयस्स वि। देवाउयस्स जहा णेरइयाउयस्स।

भावार्थ - मिथ्यात्व वेदनीय कर्म की स्थिति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम की और उत्कृष्ट परिपूर्ण उतने ही सागरोपम की स्थिति बांधते हैं।

नरकायुष्य का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व के तीसरे भाग अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग का बन्ध करते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचायु की भी स्थिति समझनी चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का बंध करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यायु के बन्ध काल के विषय में समझना चाहिए। देवायु का बन्ध नरकायु के समान समझना चाहिए।

असण्णी णं भंते! जीवा पंचिंदिया णिरयगइणामाए कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखिज्जइ-भागेणं ऊणए, उक्कोसेणं ते चेव पडिपुण्णे०। एवं तिरियगइणामाए वि।

मणुयगइणामाए वि एवं चेव, णवरं जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दिवड्ढं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

एवं देवगइणामाए वि, णवरं जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स एगं सत्तभागं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागेणं ऊणयं, उक्कोसेणं तं चेव पडिपुण्णं बंधंति।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव नरक गति नाम कर्म की कितनी स्थिति बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग हजार सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण हजार सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग बंध करते हैं। इसी प्रकार तिर्यंच गति नाम कर्म के विषय में समझना चाहिए।

मनुष्यगति नाम कर्म के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए। किन्तु विशेषता यह है कि जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{१॥}{७}$ भाग और उत्कृष्ट परिपूर्ण स्थिति का बंध करते हैं। इसी प्रकार देवगति नाम कर्म के विषय में समझना चाहिए। किन्तु विशेषता यह है कि इसका जघन्य बन्ध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{१}{७}$ भाग का और उत्कृष्ट परिपूर्ण उतनी ही स्थिति का बंध करते हैं।

वेउव्वियसरीरणामाए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमसहस्सस्स दो सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागेणं ऊणए, उक्कोसेणं दो पडिपुण्णे बंधंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तसम्मामिच्छत्त आहारग सरीरणामाए तित्थगरणामाए ण किंचि वि बंधंति। अवसिट्ठं जहा बेइंदियाणं, णवरं जस्स जत्तिया भागा तस्स ते सागरोवमसहस्सेणं सह भाणियव्वा सव्वेसिं आणुपुव्वीए जाव अंतराइयस्स॥ ६३०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर नाम कर्म संबंधी पृच्छा (प्रश्न)?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव वैक्रिय शरीर नाम कर्म का जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम हजार सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग का और उत्कृष्ट परिपूर्ण हजार सागरोपम के $\frac{२}{७}$ भाग का बन्ध करते हैं।

सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, आहारक शरीर नाम कर्म और तीर्थंकरनाम कर्म का असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव बन्ध करते ही नहीं हैं।

शेष सभी कर्म प्रकृतियों का बन्धकाल बेइन्द्रिय के समान समझना जाहिये। विशेषता यह है कि जिसकी सागरोपम के जितने भाग की स्थिति कही है उसकी हजार गुणा सागरोपम सहित स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार सभी कर्मप्रकृतियों की अनुक्रम से स्थिति यावत् अंतराय कर्म तक कह देनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के बंध काल की प्ररूपणा की गई है। बेइन्द्रिय जीवों की तरह ही असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति का वर्णन है किन्तु विशेषता यह है कि जिस कर्म की जितनी स्थिति है उससे हजार गुणा सागरोपम की स्थिति कह देना चाहिए।

सण्णी णं भंते! जीवा पंचिंदिया णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीय कर्म की कितनी स्थिति बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! संज्ञी पंचेन्द्रिय जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम का बन्ध करते हैं। अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है।

सण्णी णं भंते! पंचेंदिया णिद्दापंचगस्स किं बंधंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं तीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा। दंसणचउक्कस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव पांच निद्राओं की कितनी स्थिति बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव निद्रा पंचक कर्म की जघन्य अन्तःकोडाकोडी सागरोपम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति बांधते हैं। अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। दर्शनावरण चतुष्क का बंधकाल ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझना चाहिये।

सायावेयणिज्जस्स जहा ओहिया ठिई भणिया तहेव भाणियव्वा, इरियावहियबंधयं पडुच्च संपराइयबंधयं च। असायावेयणिज्जस्स जहा णिद्दापंचगस्स।

भावार्थ - सातावेदनीय कर्म की स्थिति औघिक (सामान्य) वेदनीय कर्म की स्थिति के अनुसार, ईर्यापथिक (योगनिमित्तक) बन्ध और सांपरायिक (काषायिक) बन्ध की अपेक्षा कहनी चाहिए। असाता वेदनीय कर्म की स्थिति निद्रा पंचक की स्थिति के समान समझनी चाहिए।

सम्मत्तवेयणिज्जस्स सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जस्स जा ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति। मिच्छत्तवेयणिज्जस्स जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ, सत्तरि य वाससहस्साइं अबाहा। कसायबारसगस्स जहण्णेणं एवं चेव, उक्कोसेणं चत्तालीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ, चत्तालीस य वाससयाइं अबाहा। कोहमाणमायालोभसंजलणाए य दो मासा, मासो, अद्धमासो, अंतोमुहुत्तो, एवं जहण्णगं, उक्कोसगं पुण जहा कसायबारसगस्स।

भावार्थ - संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सम्यक्त्व वेदनीय और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व वेदनीय की औघिक स्थिति के अनुसार बंध करते हैं। मिथ्यात्व वेदनीय का जघन्य अन्तःकोडाकोडी सागरोपम का उत्कृष्ट ७० कोडाकोड़ी सागरोपम का बन्ध करते हैं। अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है।

बारह कषायों की स्थिति जघन्य अन्तः कोडाकोड़ी और उत्कृष्ट चालीस कोडाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है। इनका अबाधाकाल चार हजार वर्ष का है। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ का जघन्य स्थिति बन्ध क्रमशः दो मास, एक मास, अर्द्ध मास और अन्तर्मुहूर्त्त का है तथा उत्कृष्ट बन्ध बारह कषायों के बन्ध के समान होता है।

चउण्ह वि आउयाणं जा ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति।

आहारगसरीरस्स तित्थगरणामाए य जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ बंधंति।

भावार्थ - संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार की आयुष्य (नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु) कर्म की जो सामान्य (औघिक) स्थिति कही गई है, उसी के अनुसार बंध करते हैं। आहारक शरीर और तीर्थंकरनाम कर्म की स्थिति जघन्य अन्तःकोटाकोटि सागरोपम और उत्कृष्ट अन्तः कोटाकोटी सागरोपम की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसवेयणिज्जस्स जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं, उक्कोसेणं दस सागरोवम-कोडाकोडीओ। दस य वाससयाइं अबाहा। जसोकित्तिणामाए उच्चागोयस्स एवं चेव, णवरं जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ता। अंतराइयस्स जहा णाणावरणिज्जस्स।

सेसएसु सव्वेसु ठाणेसु संघयणेसु संठाणेसु वण्णेसु गंधेसु य जहण्णेणं अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, उक्कोसेणं जा जस्स ओहिया ठिई भणिया तं बंधंति, णवरं इमं णाणत्तं-अबाहा अबाहूणिया ण वुच्चइ। एवं आणुपुव्वीए सव्वेसिं जाव अंतराइयस्स ताव भाणियव्वं॥ ६३१॥

भावार्थ - पुरुष वेद की जघन्य आठ वर्ष की और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति है। अबाधाकाल दस सौ (एक हजार) वर्ष का है। यशःकीर्तिनाम नाम और उच्चगोत्र की स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिये। विशेषता यह है कि जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है। अन्तराय कर्म की स्थिति ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझनी चाहिये।

शेष सभी स्थानों में संहनन, संस्थान, वर्ण और गन्ध नाम कर्मों की स्थिति जघन्य अन्तः कोडाकोडी सागरोपम की और उत्कृष्ट जिस प्रकृति की जो सामान्य स्थिति कही है उतनी स्थिति का बंध करते हैं परन्तु इतनी विशेषता है कि अबाधाकाल और अबाधा काल कम कर्म निषेक काल नहीं कहना चाहिए। इस प्रकार सभी कर्म प्रकृतियों की स्थिति अनुक्रम से यावत् अंतराय कर्म तक कह देनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में कर्म प्रकृतियों के स्थिति बंध का निरूपण किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का जो जघन्य स्थिति बन्ध अन्तर्मुहूर्त्त आदि कहा गया है वह क्षपक जीव को उन प्रकृतियों के बंध के चरम समय में होता है। पांच निद्रा, असाता वेदनीय, मिथ्यात्व और बारह कषायों आदि का बन्ध क्षपण से पहले होता है इसलिए उनका जघन्य और उत्कृष्ट बन्ध अन्तःकोडाकोडी सागरोपम का होता है। उत्कृष्ट बंध अत्यन्त संक्लेश वाले मिथ्यादृष्टि के होता है परन्तु तिर्यंचायुष, मनुष्यायुष और देवायुष्य का उत्कृष्ट बंध अपने अपने बंधकों में अतिविशुद्ध को होता है।

णाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के?

गोयमा! अण्णयरे सुहमसंपराए उवसामए वा खवगए वा, एस णं गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठिईबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे, एवं एएणं अभिलावेणं मोहाउयवज्जाणं सेसकम्माणं भाणियव्वं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - जहण्णठिईबंधए - जघन्यस्थिति बंधक, **के** - कौन, **उवसामए** - उपशमक, **खवगए** - क्षपक, **अण्णयरे** - अन्यतर (कोई एक)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म की जघन्य स्थिति बांधने वाला कौन है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य स्थिति बंधक अन्यतर (कोई एक) उपशमक या क्षपक सूक्ष्म संपराय होता है। हे गौतम! यह ज्ञानावरणीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्धक है। इसके अलावा अन्य अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है। इस प्रकार इस अभिलाप से मोहनीय और आयुष्य कर्म को छोड़ कर शेष कर्मों के विषय में कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कर्मों के जघन्य स्थिति बन्धक की प्ररूपणा की गयी है। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध सूक्ष्मसंपराय अवस्था में उपशमक और क्षपक दोनों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है। दोनों का स्थिति बन्ध का काल समान होने से कहा गया है कि उपशमक अथवा क्षपक दोनों में से कोई एक। क्षपक की अपेक्षा उपशमक का बन्ध काल दुगुना कहा है। इस संबंध में कर्म प्रकृति संग्रहणीकार कहते हैं -

"**खवगुसामग पडिवडमाण दुगुणो तहिं तहिं बन्धो**" (कर्म प्रकृति उपशमना करण गाथा ६१) क्षपक की अपेक्षा उपशमक को और उससे उपशम श्रेणी से गिरने वाले को दुगुना दुगना बन्ध होता है। इसलिए वेदनीय कर्म के सांपरायिक (कषायनिमित्तक) बन्ध की प्ररूपणा करते समय क्षपक का जघन्य स्थिति बन्ध १२ मुहूर्त्त का और उपशमक का २४ मुहूर्त्त का कहा है। नाम गोत्र का जघन्य बंध क्षपक को ८ मुहूर्त्त और उपशमक को १६ मुहूर्त्त का होता है परन्तु उपशमक का जघन्य बन्ध शेष बन्धकों की अपेक्षा सर्व जघन्य बन्ध समझना चाहिये। इसीलिए कहा गया है कि उपशमक एवं क्षपक जीव, जो सूक्ष्म संपराय अवस्था में हो वही ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का जघन्य स्थिति बन्धक है।

परन्तु आगम पाठ को देखते हुए यह कथन उचित नहीं लगता है। ज्ञानावरणीय आदि छह कर्मों (आयु और मोहनीय बिना) की जघन्य स्थिति के बंधक 'दशवें गुणस्थान के अन्तिम समय में' समझना चाहिये। उसके पहले मध्यम बन्ध ध्यान में आता है ऐसा कितनेक कहते हैं किन्तु आगम में तो 'तद्व्यतिरिक्त' शब्द से असूक्ष्म (बादर) सम्पराय वाले अजघन्य बंधक बताये हैं। यदि सूक्ष्म संपराय के चरम समय में ही जघन्य बंध होता तो आगमकार '**चरिम समए सुहुम संपराए**' कह देते। परन्तु ऐसा नहीं कहा है। अतः आगम पाठ से तो पूरे दसवें गुणस्थान (सूक्ष्म सम्पराय वाले चाहे उपशम कहो या क्षपक) वाले जीवों के जघन्य स्थिति बंध होना ध्यान में आता है॥ **तत्त्व बहुश्रुत गम्यम्**॥

ज्ञानावरणीय आदि छह कर्मों के जो जघन्य स्थिति बंधक बताये हैं - वे स्थिति बंध की अपेक्षा से समझना चाहिये। सूक्ष्म सम्पराय अन्यतर (उपशमक या क्षपक दोनों में से किसी) को ही सर्व जघन्य बन्धक तो आगम के मूल पाठ में कहे ही हैं। अनुभाग बंध से यदि टीकाकार की अपेक्षा भेद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करे तो बात निराली। अर्थात् असंख्यात अनुभाग बंध के अध्यवसायों में एक ही प्रकार का स्थिति बंध हो सकता है। स्थिति बंध की अपेक्षा से तो टीकाकार का कथन उचित प्रतीत नहीं होता है॥

मोहणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के?

गोयमा! अण्णयरे बायरसंपराए उवसामए वा खवए वा, एस णं गोयमा! मोहणिज्जस्स कम्मस्स जहण्णठिईबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति का बन्धक कौन है?

उत्तर - हे गौतम! मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति का बंधक अन्यतर (कोई एक) बादर सम्पराय, उपशमक अथवा क्षपक होता है। हे गौतम! यह मोहनीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्धक है, इसके अलावा अन्य अजघन्य स्थिति का बन्धक होता है।

विवेचन - बादर सम्पराय से युक्त उपशमक या क्षपक जीव मोहनीय कर्म की स्थिति का बंधक होता है। मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति के बन्धक 'बादर सम्पराय वाले क्षपक या उपशामक जीव' बताये हैं। 'बादर सम्पराय वाले यद्यपि छट्ठे गुणस्थान से नववें गुणस्थान तक के जीव' होते हैं। परन्तु यहाँ पर 'नवमें गुणस्थान वाले' ही लेना चाहिए क्योंकि खास उपशम या क्षपक तो वहीं पर होता है। नवमें गुणस्थान के भी पांच भागों में से पांचवें भाग के अन्तिम समय में बन्धने वाली अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति के बंधक क्षपक या उपशामक जीव को ही समझना चाहिये।

आउयस्स णं भंते! कम्मस्स जहण्णठिईबंधए के?

गोयमा! जे णं जीवे असंखेप्पद्धापविट्ठे, सव्वणिरुद्धे से आउए, सेसे सव्वमहंतीए आउयबंधद्धाए तीसे णं आउयबंधद्धाए चरिमकालसमयंसि सव्वजहण्णियं ठिइं पजत्तापजत्तियं णिव्वत्तेइ, एस णं गोयमा! आउयकम्मस्स जहण्णठिईबंधए, तव्वइरित्ते अजहण्णे॥ ६३२॥

कठिन शब्दार्थ - **असंखेप्पद्धा पविट्ठे** - असंक्षेप्याद्धा प्रविष्ट-जिसका संक्षेप नहीं किया जा सके इतना मात्र आयुष्य काल बाकी है, ऐसे काल में प्रवेश किया हुआ, **सव्वणिरुद्धे** - सर्व निरुद्ध-उपक्रम के हेतुओं से अतिसंक्षिप्त किया हुआ, **सव्वमहंतीए** - सबसे बड़े, **चरिमकाल समयंसि** -चरम काल समय में, **पजत्तापजत्तियं** -पर्याप्तापर्याप्तिकां-पर्याप्तक और अपर्याप्तक रूप।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! आयुष्य कर्म का जघन्य स्थिति बन्धक कौन है?

उत्तर - हे गौतम! जो जीव असंक्षेप्य-अद्धाप्रविष्ट (जिसके आयुष्य बंध का काल संक्षेप नहीं किया जा सके ऐसे जीव) हैं, उसका सर्वनिरुद्ध-सबसे कम आयुष्य है, जो सबसे बड़े आयुष्य बन्ध काल का एक भाग रूप है, ऐसे उस आयुष्य बंध के चरम काल-अंतिम समय में वर्तते पर्याप्तक और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तक रूप ऐसी सब से जघन्य स्थिति बांधते हैं। हे गौतम! यह आयुष्य कर्म का जघन्य स्थिति बन्धक है, इससे भिन्न अजघन्य स्थिति का बन्धक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आयुष्य कर्म के जघन्य स्थिति बंधक का वर्णन किया गया है। दो प्रकार के जीव कहे गये हैं - १. सोपक्रम आयुष्य वाले और २. निरुपक्रम आयुष्य वाले। इनमें देव, नैरयिक, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्य और तिर्यंच तथा संख्यात वर्ष की आयुष्य होने पर भी चरम शरीरी और उत्तम पुरुष निरुपक्रम आयुष्य वाले होते हैं। शेष सभी जीव सोपक्रम आयुष्य वाले भी होते हैं और निरुपक्रम आयुष्य वाले भी होते हैं। कहा है -

देवा नेरइया वा असंखवासाउया तिरिमणुया।
उत्तमपुरिसा य तहा चरम सरीखा य निरुवक्कमा।
सेसा संसारत्था भइया सोवक्कमा व इयरे वा।
सोवक्कम-निरूवक्कमभेओ भणिओ समासेणं॥

इनमें देव, नैरयिक तथा असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंच और मनुष्य अपने छह माह का आयुष्य शेष रहने पर अवश्य पर भव का आयुष्य बांधते हैं। जो तिर्यंच और मनुष्य संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले होने पर भी निरुपक्रम आयुष्य वाले हैं वे अपने तीसरे भाग का आयुष्य शेष रहने पर अवश्य परभव के आयुष्य का बंध करते हैं। जो सोपक्रम आयुष्य वाले जीव हैं वे कदाचित् तीसरा भाग या तीसरे भाग के तीसरे भाग का आयुष्य बाकी है ऐसे यावत् असंक्षेप्याद्धा प्रविष्ट-जिसका संक्षेप नहीं किया जा सके इतना मात्र आयुष्य काल बाकी है ऐसे जीव परभव का आयुष्य बांधते हैं। असंक्षिप्त अद्धा-काल में प्रविष्ट जीव का आयुष्य सर्व निरुद्ध-उपक्रम के हेतुओं से अति संक्षेप किया हुआ होता है। उसका मात्र आयुष्य बंध करने का काल बाकी है अर्थात् इसके बाद उसका जीवनकाल नहीं है इसी बात को स्पष्टता पूर्वक कहने के लिए कहा है - **सेसे सव्वमहंतीए आउय बंधद्धाए** - सबसे बड़े आयुष्य बंध के काल का शेष भाग है। तात्पर्य यह है कि आयुष्य बंध का काल आठ आकर्ष प्रमाण है उसका शेष - एक आकर्ष प्रमाण जितना सबसे अल्प आयुष्य उनका शेष है। अतः वह संक्षिप्त नहीं किया जा सके ऐसे काल में प्रविष्ट हुआ और आयुष्य बंध के एक आकर्ष रूप अंतिम (चरम) काल में वर्तता होता है यहाँ **'चरिमकाल समयंसि'** - चरम काल समय का ग्रहण करने से परम सूक्ष्म समय का ग्रहण नहीं करना चाहिये परन्तु ऊपर कहे प्रमाण काल का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उससे कम काल में आयुष्य का बंध असंभव है। इसलिए व्युत्क्रांति पद से पूर्व में कहा है कि - 'हे भगवन्! जीव स्थिति नाम सहित आयुष्य का कितने आकर्ष से बंध करता है? हे गौतम! जघन्य एक आकर्ष से और उत्कृष्ट आठ आकर्ष से आयुष्य का बंध करता है।' एक आकर्ष से सर्व जघन्य आयुष्य बांधता है इसीलिए कहा है कि **"सव्वं जहण्णियं"** - सर्व जघन्य-सबसे छोटी स्थिति बांधता है। वह स्थिति किस प्रकार की है? इसके लिए कहा है - **"पज्जत्तापज्जत्तियं"** - पर्याप्तापर्याप्तिकां-पर्याप्तक और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तक रूप-शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण करने में समर्थ और उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण करने में असमर्थ जीव ऐसी स्थिति बांधते हैं? यह किस प्रकार जाना जा सकता है कि शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी करने में समर्थ जीव जघन्य स्थिति बांधता है परन्तु उससे हीन स्थिति नहीं बांधता? यह युक्ति से जाना जा सकता है जो इस प्रकार है - "सभी प्राणी पर भव का आयुष्य बांध कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं बिना पर भव का आयुष्य बांधे कोई जीव मरता नहीं है और परभव के आयुष्य का बंध औदारिक, वैक्रिय और आहारक काय योग में वर्तते प्राणी को होता है परन्तु कार्मण या औदारिक मिश्र योग में वर्तते हुए जीव को नहीं होता।" इस संबंध में मूल टीकाकार श्री हरिभद्रसूरिजी कहते हैं -

"जेणोरालियाईणं तिण्हं सरीराणं कायजोगे वट्टमाणो आउयबंधगो, न कम्मए ओरालियमिस्से वा"

विशिष्ट औदारिक आदि काय योग शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त जीवों को होता है किन्तु केवल शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त जीव को नहीं होता। इसलिए यह सिद्ध होता है कि शरीर पर्याप्ति और इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर ही जीव का मरण होता है शेष का नहीं अतः शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी करने में समर्थ ऐसी जघन्य स्थिति बांधते हैं किन्तु उससे हीन स्थिति नहीं बांधते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थिति का बंध करने वाले के विषय में कहा है। अब उत्कृष्ट स्थिति बंध करने वाले के विषय में पूछते हैं -

उक्कोसकालट्ठिइयं णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं किं णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो बंधइ, मणुस्सिणी बंधइ, देवो बंधइ, देवी बंधइ?

गोयमा! णेरइओ वि बंधइ जाव देवी वि बंधइ।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को क्या नैरयिक बांधता है, तिर्यंच बांधता है, तिर्यंचिनी बांधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्य स्त्री बांधती है, देव बांधता है देवी बांधती है।

उत्तर - हे गौतम! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को नैरयिक भी बांधता है यावत् देवी भी बांधती है।

केरिसए णं भंते! णेरइए उक्कोसकालट्ठिइयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ?

गोयमा! सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्ते सागारे जागरे सुत्तो (ओ)-वउत्ते मिच्छादिट्ठी कण्हलेसे य उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे ईसिमज्झिमपरिणामे वा, एरिसए णं गोयमा! णेरइए उक्कोसकालट्ठिइयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सागारे - साकार-ज्ञानोपयोग वाला, **जागरे** - जागृत, **सुत्तोवउत्ते** - श्रुत में उपयोग वाला, **उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे** - उत्कृष्ट संकिलिष्ट परिणाम वाला, **ईसिमज्झिम परिणामे** - किंचित् मध्यम परिणाम वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस प्रकार का नैरयिक उत्कृष्ट स्थिति वाला ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! जो संज्ञी पंचेन्द्रिय, समस्त पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-ज्ञानोपयोग वाला, जागृत, श्रुत के उपयोग वाला, मिथ्यादृष्टि, कृष्णलेश्या वाला, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला अथवा किञ्चित् मध्यम परिणाम वाला हो, ऐसा नैरयिक, हे गौतम! उत्कृष्ट स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है।

केरिसए णं भंते! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिइयं णाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ?

गोयमा! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए, सेसं तं चेव जहा णेरइयस्स।

कठिन शब्दार्थ - कम्म भूमगपलिभागी - कर्म भूमकप्रतिभागी-कर्म भूमि में उत्पन्न होने वाले के समान हों अर्थात् कर्म भूमिजा गर्भिणी तिर्यंचिनी का अपहरण करके किसी ने यौगलिक क्षेत्र में रख दिया हों और उससे जो जन्मा हो ऐसा तिर्यंच।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस प्रकार तिर्यंच उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! जो कर्मभूमक-कर्मभूमि में उत्पन्न हो या कर्मभूमक प्रतिभागी - कर्म भूमिज के समान हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, शेष सारा कथन नैरयिकों के समान कह देना चाहिए।

एवं तिरिक्खजोणिणी वि मणूसे वि मणुस्सी वि, देव देवी जहा णेरइए। एवं आउयवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं।

भावार्थ - इसी प्रकार तिर्यंच स्त्री, मनुष्य और मनुष्य स्त्री के विषय में भी समझना चाहिए। देव और देवी नैरयिक के समान उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। इसी प्रकार आयुष्य को छोड़ कर शेष उत्कृष्ट स्थिति वाले सात कर्मों के बंध के विषय में समझना चाहिए।

उक्कोसकालट्ठिइयं णं भंते! आउयं कम्मं किं णेरइओ बंधइ जाव देवी बंधइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, णो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, णो देवो बंधइ, णो देवी बंधइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को क्या नैरयिक बांधता है, यावत् देवी बांधती है?

उत्तर - हे गौतम! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को नैरयिक नहीं बांधता, तिर्यंच बांधता है, किन्तु तिर्यंचिनी नहीं बांधती, मनुष्य बांधता है, मनुष्य स्त्री बांधती है, किन्तु देव भी नहीं बांधते और देवी भी नहीं बांधती।

विवेचन - उत्कृष्ट स्थिति वाले आयुष्य कर्म के बंध के विषय में नैरयिक, तिर्यंच स्त्री, देव और देवी का निषेध किया है क्योंकि ये उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

केरिसए णं भंते! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ?

गोयमा! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा सण्णी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए सागारे जागरे सुत्तोवउत्ते मिच्छद्दिट्ठी परमकण्हलेसे उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे, एरिसए णं गोयमा! तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस प्रकार का तिर्यंच उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! जो कर्मभूमक-कर्मभूमि में उत्पन्न हो या कर्मभूमक प्रतिभागी-कर्म भूमिज के समान हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय, सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-ज्ञानोपयोग वाला, जागृत, श्रुत में उपयोग वाला, मिथ्यादृष्टि, परमकृष्ण लेश्या वाला हो, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला हो, ऐसा तिर्यंच उत्कृष्ट स्थिति वाले आयुष्य कर्म को बांधता है।

केरिसए णं भंते! मणूसे उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ?

गोयमा! कम्मभूमए वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुत्तोवउत्ते सम्मद्दिट्ठी वा मिच्छदिट्ठी वा कण्हलेसे वा सुक्कलेसे वा णाणी वा अण्णाणी वा उक्कोससंकिलिट्ठपरिणामे वा तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामे वा, एरिसए णं गोयमा! मणूसे उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ।

कठिन शब्दार्थ - तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामे - तत्प्रायोग्य (उसके योग्य) विशुद्ध होते हुए परिणाम वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस प्रकार का मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्यकर्म को बांधता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जो कर्मभूमक-कर्मभूमि में उत्पन्न हो, कर्मभूमिज के समान हो, यावत् श्रुत में उपयोग वाला हो, सम्यग्दृष्टि हो, मिथ्यादृष्टि हो, कृष्णलेश्यी हो या शुक्ललेश्यी हो, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला हो अथवा उसके योग्य विशुद्ध परिणाम वाला हो, ऐसा मनुष्य हे गौतम! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को बांधता है।

केरिसिया णं भंते! मणुस्सी उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ?

गोयमा! कम्मभूमिया वा कम्मभूमगपलिभागी वा जाव सुत्तोवउत्ता सम्मदिट्ठी सुक्कलेसा तप्पाउग्गविसुज्झमाणपरिणामा, एरिसिया णं गोयमा! मणूसी उक्कोसकालट्ठिइयं आउयं कम्मं बंधइ। अंतराइयं जहा णाणावरणिज्जं॥ ६३३॥ बीओ उद्देसो समत्तो॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तेवीसइमं कम्मपगडीपयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस प्रकार की मनुष्य-स्त्री उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को बांधती है?

उत्तर - हे गौतम! जो कर्मभूमि में उत्पन्न हुई हो या कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाली के समान हो यावत् श्रुत में उपयोग वाली हो, सम्यग्दृष्टि हो, शुक्ललेश्या वाली हो, अथवा तत्प्रायोग्य-उसके योग्य विशुद्ध परिणाम वाली हो, ऐसा मनुष्य स्त्री हे गौतम! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म को बांधती है। उत्कृष्ट स्थिति वाले अन्तरायकर्म के बंध के विषय में ज्ञानावरणीय कर्म के समान जानना चाहिए।

विवेचन - उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले आयुष्य कर्म का बंध सम्यग् दृष्टि या मिथ्यादृष्टि करते हैं, ऐसा कहा गया है क्योंकि यहाँ दो प्रकार का उत्कृष्ट आयुष्य है जो सातवीं नरक पृथ्वी का आयुष्य बांधते हैं वे मिथ्यादृष्टि और जो अनुत्तर देव का आयुष्य बांधते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। यहाँ सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त संयत समझना चाहिये। उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणाम वाला नरकायुष्य का बन्ध करता है और उसके योग्य विशुद्ध परिणाम वाला अनुत्तर देव का आयुष्य बंध करता है। मनुष्य स्त्री सातवीं नरक पृथ्वी योग्य आयुष्य का बंध नहीं करती है परन्तु अनुत्तर देव योग्य आयुष्य का बंध करती है अतः मिथ्यादृष्टि कृष्णलेशी, अज्ञानी आदि का यहाँ ग्रहण नहीं किया है। सभी प्रशस्त पदों का ही ग्रहण किया है।

॥ दूसरा उद्देशक समाप्त॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का तेईसवाँ कर्म प्रकृति पद सम्पूर्ण॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउवीसइमं कम्मबंधपयं

चौबीसवां कर्मबंध पद

प्रज्ञापना सूत्र के तेइसवें कर्म प्रकृति पद में कर्म बन्ध आदि रूप परिणाम विशेष का कथन किया गया है। उसी कर्म बंध आदि परिणाम का आगे के चार पदों में कुछ विशेषता के साथ वर्णन किया जायेगा। उसमें चौबीसवें पद का प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा-णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म-प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म-प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं? वे इस प्रकार है - ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक के आठ कर्म प्रकृतियाँ हैं।

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों का बांधता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुच्चय जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ अन्य कितनी कर्म प्रकृतियों का बंधक होता है, इसका कथन किया गया है। जीव जब ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध करता है तब यदि आयुष्य कर्म का बंध नहीं करे तो सात कर्म प्रकृतियाँ बांधता है, यदि आयुष्य बंध करे तो आठ कर्म प्रकृतियाँ बांधता है और जब मोहनीय कर्म और आयुष्य कर्म दोनों का बन्ध नहीं करता तब छह कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है ऐसे जीव सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवर्ती होते हैं। कहा भी है -

सत्तविह बंधगा होंति पाणिणो आउगवज्जगाणं तु।

तह सुहुम संपराया छव्विहबंधा विणिद्दिट्ठा। मोहाउय वज्जाणं पयडीणं ते उ बंधगा भणिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

– प्राणी आयुष्य के सिवाय, सात कर्म प्रकृतियों के बंधक हैं और सूक्ष्म संपराय मोहनीय और आयुष्य के सिवाय छह कर्म प्रकृतियों को बांधने वाले कहे हैं। वे एक कर्म के बंधक नहीं होते क्योंकि एक कर्म के बंधक उपशान्तकषाय आदि होते हैं। इस संबंध में कहा है –

उवसंत खीण मोहा केवलिणो एगविहबंधा।

ते पुण दुसमय ट्ठिइयस्स बंधका न उण संपरायस्स॥

– उपशांत मोह क्षीण मोह और केवलज्ञानी (ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान वाले जीव) एक कर्म का बंध करते हैं और वे दो समय की स्थिति वाले साता वेदनीय कर्म के बंधक होते हैं, उनके सांपरायिक (काषायिक) कर्म का बंध नहीं होता क्योंकि उपशान्त कषाय आदि जीव ज्ञानावरणीय कर्म नहीं बांधते, क्योंकि उनका बन्ध सूक्ष्म संपराय नामक दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में ही हो जाता है।

णेरइए णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा। एवं जाव वेमाणिए, णवरं मणुस्से जहा जीवे।

भावार्थ – **प्रश्न** – हे भगवन्! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियाँ बांधता है?

उत्तर – हे गौतम! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधता हुआ सात या आठ कर्म-प्रकृतियाँ बांधता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त तक कहना चाहिए। किन्तु विशेषता यह है कि मनुष्य सम्बन्धी कथन समुच्चय जीव के समान समझना चाहिए।

विवेचन – नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय का बन्ध करता हुआ जब आयुष्य कर्म का बंध नहीं करता तब सात कर्म प्रकृतियों का बंधक होता है और जब आयुष्य कर्म का बंध करता है तब आठों कर्म प्रकृतियों का बंधक होता है। नैरयिक जीव में छह कर्म प्रकृतियों के बंद का भंग संभव नहीं है क्योंकि वह सूक्ष्म संपराय गुणस्थान को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मनुष्य को छोड़ कर शेष सभी दण्डकों के जीवों को सात या आठ कर्म का बंधक ही समझना चाहिए क्योंकि उन्हें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान प्राप्त नहीं होने से छह प्रकृतियों के बंध का विकल्प संभव नहीं है। मनुष्य का कथन सामान्य जीव के समान है। मनुष्य में तीनों विकल्प होते हैं।

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य १, अहवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं, २. अथवा बहुत से जीव सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक और कोई एक जीव छह कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है ३. अथवा बहुत से जीव सात, आठ या छह कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बहुत से जीवों की अपेक्षा कर्म बंधन का कथन किया गया है। सभी जीव सात कर्म के बंधक या आठ कर्म के बंधक सदैव बहुत होते हैं किन्तु छह कर्म के बंधक जीव किसी समय मिलते हैं और किसी समय नहीं मिलते हैं। क्योंकि उनका उत्कृष्ट छह मास का अंतर कहा गया है। जब छह कर्म का बंध जीव करता है तब जघन्य एक, दो और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं। जब छह कर्म का बंधक एक भी जीव नहीं होता है तब प्रथम भंग पाया जाता है। जब छह कर्म का बंधक एक जीव होता है तब दूसरा भंग और जब छह कर्म के बंधक बहुत से जीव होते हैं तब तीसरा भंग होता है। तीनों भंग भावार्थ में बता दिये गये हैं।

णेरइया णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३, तिण्णि भंगा। एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिक ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म-प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं २. अथवा बहुत से नैरयिक सात कर्म-प्रकृतियों के बन्धक और एक नैरयिक आठ कर्म-प्रकृतियों का बन्धक होता है ३. अथवा बहुत से नैरयिक सात या आठ कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं। ये तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

विवेचन - नैरयिक छह कर्म के बंधक होते ही नहीं हैं और आठ कर्म के बंधक भी कदाचित् होते हैं उनमें जब एक भी नैरयिक आठ कर्म का बंधक नहीं होता तब सभी सात कर्म के बंधक होते हैं - यह प्रथम भंग। जब एक नैरयिक आठ कर्म का बंधक होता है तब दूसरा भंग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और जब बहुत से नैरयिक आठ कर्म के बंधक होते हैं तब तीसरा भंग होता है। ये ही तीन भंग दस भवनपति देवों में भी पाये जाते हैं।

पुढविकाइया णं पुच्छा?

गोयमा! सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि, एवं जाव वणस्सइकाइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए सात कर्म प्रकृतियों के भी बन्धक होते हैं और आठ कर्म प्रकृतियों के भी बंधक होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन - पांच स्थावर जीवों में 'सात कर्म के बंधक और आठ कर्म के बंधक' यह एक ही भंग होता है क्योंकि उनमें आठ कर्म के बांधने वाले बहुत होते हैं तथा सदा शाश्वत मिलते हैं।

विगलाणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण य तियभंगो-सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३।

भावार्थ - विकलेन्द्रियों और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के तीन भंग होते हैं - १. सभी सात कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं २. अथवा बहुत-से सात कर्म प्रकृतियों के बंधक और कोई एक जीव आठ कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है, ३. अथवा बहुत से सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक तथा बहुत से आठ कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं।

विवेचन - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में नैरयिक की तरह तीन भंग समझना चाहिये।

मणूसा णं भंते! णाणावरणिज्जस्स पुच्छा?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४,अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य ६, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य ७, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य ८, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ९, एवं एए णव भंगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेसा वाणमंतराइया जाव वेमाणिया जहा णेरइया सत्तविहाइबंधगा भणिया तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी मनुष्य सात कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं २. अथवा बहुत से मनुष्य सात कर्म प्रकृतियों के बन्धक और कोई एक मनुष्य आठ कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है ३. अथवा बहुत से सात के तथा आठ कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं ४. अथवा बहुत से मनुष्य सात के और कोई एक मनुष्य छह कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है ५. बहुत से मनुष्य सात के और बहुत से छह कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं ६. अथवा बहुत से मनुष्य सात के बन्धक, एक आठ का बंधक और कोई एक छह कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है ७. अथवा बहुत से सात के बन्धक, कोई एक आठ का बन्धक और बहुत से छह कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं ८. अथवा बहुत से सात के, बहुत से आठ के और एक छह कर्म प्रकृतियों का बन्धक होता है ९. अथवा बहुत से सात कर्म प्रकृतियों के बंधक बहुत से आठ कर्म प्रकृतियों के बंधक और बहुत से छह कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं। इस प्रकार ये नौ भंग होते हैं। शेष वाणव्यन्तर आदि से लेकर वैमानिक पर्यन्त जैसे नैरयिक सात आदि कर्म-प्रकृतियों के बन्धक कहे हैं, उसी प्रकार कह देने चाहिए।

विवेचन - बहुत से मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं इसके नौ भंग इस प्रकार हैं - १. जब आठ कर्म के और छह कर्म के बंधक नहीं होते हैं तब सभी सात कर्म के बंधक होते हैं - यह प्रथम भंग। क्योंकि सात कर्म बांधने वाले सदैव बहुत होते हैं। २. एक आठ कर्म का बंधक हो तब सात कर्म के बांधने वाले बहुत और एक आठ कर्म का बंधक - यह दूसरा भंग ३. जब बहुत से मनुष्य आठ कर्म बांधने वाले होते हैं तब बहुत से सात कर्म के और बहुत से आठ कर्म के बंधक होते हैं - यह तीसरा भंग। इस प्रकार जब आठ कर्म बांधने वाले नहीं हों तो 'षड्विधबन्धक' पद के एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा दो भंग होते हैं। इस प्रकार द्विक संयोग में चार भंग, त्रिक संयोग में भी अष्टविधबन्धक और षड्विध बंधक पद के प्रत्येक के एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा चार भंग होते हैं। इस प्रकार सभी मिल कर मनुष्य के नौ भंग होते हैं। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों में नैरयिक की तरह तीन-तीन भंग समझना लेना चाहिए।

एवं जहा णाणावरणं बंधमाणा जहिं भणिया दंसणावरणं पि बंधमाणा तहिं जीवाइया एगत्तपोहत्तएहिं भाणियव्वा॥ ६३४॥

भावार्थ - जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए जिन कर्म-प्रकृतियों के बन्ध का कथन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया है, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म को बांधते हुए जीव आदि के विषय में एकत्व-एक वचन और बहुत्व-बहुवचन की अपेक्षा से उन कर्म प्रकृतियों के बन्ध का कथन करना चाहिए।

विवेचन - जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध के साथ अन्य कर्म प्रकृतियों के बंध का कथन किया है उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म बन्ध के साथ अन्य कर्म प्रकृतियों का बन्ध समझ लेना चाहिए।

वेयणिज्ज० बंधमाणे जीवे कइ कम्मपडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा। एवं मणूसे वि। सेसा णारगाइया सत्तविहबंधगा वा अट्ठविहबंधगा वा जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदनीयकर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव सात कर्म प्रकृतियों का, आठ कर्म प्रकृतियों का, छह कर्म प्रकृतियों का अथवा एक प्रकृति का बन्धक होता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में समझना चाहिए। शेष नैरयिक आदि सात कर्म बांधने वाले और आठ कर्म बांधने वाले होते हैं। वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार समझना चाहिए।

जीवा णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं पुच्छा?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य १, अहवा सत्तविह बंधगा य अट्ठविह बंधगा य एगविह बंधगा य छव्विहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३। अवसेसा णारगाइया जाव वेमाणिया जाओ णाणावरणं बंधमाणा बंधंति ताहिं भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव वेदनीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी जीव सात प्रकृतियों के बान्धने वाले, आठ प्रकृतियों के बान्धने वाले, एक प्रकृति बान्धने वाले १, अथवा बहुत जीव सात प्रकृतियों के बांधने वाले, आठ प्रकृतियों के बांधने वाले, एक प्रकृति को बांधने वाले और एक जीव छह प्रकृतियों को बान्धने वाला होता है अथवा बहुत सात कर्म प्रकृतियों को बान्धने वाले, आठ कर्म प्रकृतियों को बान्धने वाले, एक प्रकृति को बान्धने वाले और छह कर्म प्रकृतियों को बांधने वाले होते हैं। शेष नैरयिक आदि से वैमानिक पर्यन्त ज्ञानावरणीय को बांधते हुए जितनी कर्म प्रकृतियों का बंधन करते हैं, उतनी का बन्ध यहाँ भी कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवरं मणूसा णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य १, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ५, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य ६, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधगा य ७, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य य छव्विहबंधए य ८, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ९, एवं एए णव भंगा भाणियव्वा॥ ६३५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विशेषता यह है कि मनुष्य वेदनीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी मनुष्य सात कर्म प्रकृतियों को बांधने वाले और एक प्रकृति को बांधने वाले होते हैं २. अथवा बहुत सात कर्म प्रकृतियों को बांधने वाले, एक कर्म प्रकृति बांधने वाले और एक आठ कर्म प्रकृतियों को बांधने वाला होता है ३. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले और आठ कर्म बांधने वाले होते हैं ४. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले और एक छह कर्म बांधने वाला होता है ५. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले और छह कर्म बांधने वाले होते हैं ६. अथवा सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले और एक आठ कर्म बांधने वाला और एक छह कर्म बांधने वाला होता है ७. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले, एक आठ कर्म बांधने वाला और बहुत छह कर्म बांधने वाले होते हैं ८. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले, एक कर्म बांधने वाले, आठ कर्म बांधने वाले और एक छह कर्म बांधने वाला होता है ९. अथवा बहुत सात कर्म बांधने वाले एक कर्म बांधने वाले आठ कर्म बांधने वाले और छह कर्म बांधने वाले होते हैं, इस प्रकार ये नौ भंग होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वेदनीय कर्म कर्म बंध के साथ अन्य कर्म प्रकृतियों के बंध का निरूपण किया गया है। वेदनीय कर्म बंध के साथ कोई जीव सात कर्म बांधने वाला, कोई आठ कर्म बांधने वाला और कोई छह कर्म बांधने वाला होता है उपशांत मोह आदि वाला कोई एक ही कर्म बांधने वाला भी होता है। मनुष्य के संबंध में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। नैरयिक आदि जीव कोई सात कर्म के बंधक और कोई आठ कर्म के बंधक होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत जीवों की अपेक्षा सभी सात के या बहुत आठ के, बहुत एक के, कोई एक छह कर्म के बंधक होते हैं अथवा बहुत सात कर्म के, बहुत आठ कर्म के, बहुत एक कर्म के और बहुत छह कर्म के बंधक होते हैं। शेष वर्णन नैरयिकों से वैमानिक पर्यंत ज्ञानावरणीय कर्म बंध के समान समझ लेना चाहिए। बहुत मनुष्य वेदनीय कर्म बांधते हुए ७, ८, ६ अथवा १ कर्म बांधते हैं। ७ व १ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं। ८ और ६ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं - १ असंयोगी, ४ दो संयोगी, ४ तीन संयोगी यथा - १. सभी सात और एक कर्म बांधने वाले २. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक ३. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत ४ सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ५. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत ६. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक छह कर्म बांधने वाला एक ७. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत ८. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ९. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

मोहणिज्जं० बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। जीवेगिंदिया सत्तविहबंधगा वि अट्ठविहबंधगा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मोहनीय कर्म बांधता जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहना चाहिए। जीव और एकेन्द्रिय सात कर्म बांधने वाले भी होते हैं और आठ कर्म बांधने वाले भी होते हैं।

विवेचन - मोहनीय कर्म बांधता हुआ समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय सात या आठ कर्म के बंधक होते हैं। मोहनीय कर्म बान्धने वाला छह कर्म प्रकृतियों का बंधक नहीं हो सकता क्योंकि छह कर्मों का बन्ध सूक्ष्म संपराय नामक दसवें गुणस्थान में होता हैं जबकि मोहनीय कर्म का बंध नौवें गुणस्थान तक ही होता है। शेष जीवों में सात कर्म बांधने वाले शाश्वत होते हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत होते हैं अतः उनमें तीन भंग होते हैं।

जीवे णं भंते! आउयं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! णियमा अट्ठ, एवं णेरइए जाव वेमाणिए। एवं पुहुत्तेण वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आयुष्य कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! आयुष्य कर्म को बांधता हुआ जीव नियम से आठ कर्म प्रकृतियाँ बांधता है। नैरयिकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में इसी प्रकार कहना चाहिए। इसी प्रकार बहुवचन की अपेक्षा भी कहना चाहिए।

विवेचन - आयुष्य कर्म का बंधक जीव नियम से आठ कर्म का बंधक होता है अत: उनमें एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा कोई भंग नहीं होता है।

णामगोय अंतराइयं० बंधमाणे जीवे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! जाओ णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे बंधइ ताहिं भाणियव्वो। एवं णेरइए वि जाव वेमाणिए। एवं पुहुत्तेण वि भाणियव्वं॥ ६३६॥

॥ पण्णवणाए भगवईए चउवीसइमं कम्मबंधपयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है?

उत्तर - हे गौतम! नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म को बांधता हुआ जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करते हुए जिन कर्म प्रकृतियों को बांधता है वे ही यहाँ कहनी चाहिये। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक कहना चाहिए। इसी प्रकार बहुवचन में भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - ज्ञानावरणीय कर्म के साथ जिन कर्म प्रकृतियों का बंध कहा गया है उन्हीं प्रकृतियों का बन्ध नाम, गोत्र और अन्तराय इन तीन कर्मों के बंध के साथ होता है।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का चौवीसवाँ कर्म बन्ध पद समाप्त॥

✹ ✹ ✹ ✹

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पणवीसइमं कम्मबंधवेयपयं

पच्चीसवां कर्म बंध वेद पद

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा - णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय कर्म। इसी प्रकार नैरयिकों यावत् वैमानिकों तक के ये ही आठ कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के इस पच्चीसवें पद में यह बताया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ वेदता है।

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

गोयमा! णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेएइ। एवं णेरइए जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेण वि। एवं वेयणिज्जवज्जं जाव अंतराइयं।

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियाँ वेदता है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करता हुआ जीव नियम से आठ कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है। इसी प्रकार एक नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त तक समझना चाहिये। इसी प्रकार बहुवचन की अपेक्षा भी समझना चाहिये। वेदनीय कर्म को छोड़ कर शेष सभी (छह) कर्मों के विषय में इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझना चाहिये।

विवेचन - जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म को बांधते हुए जीव आठों ही कर्म प्रकृतियाँ वेदता है उसी प्रकार वेदनीय कर्म को छोड़ कर शेष सभी कर्मों - दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, आयुष्य, मोहनीय और अन्तराय का बंध करते हुए जीव नियम से आठों ही कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है। जिस प्रकार एक जीव के लिये कहा है उसी प्रकार बहुत से जीवों के लिए भी समझना चाहिए।

जीवे णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

गोयमा! अट्ठविहवेयए वा सत्तविहवेयए वा चउव्विहवेयए वा, एवं मणूसे वि। सेसा णेरइयाई एगत्तेणं पुहुत्तेणं विणियमा अट्ठकम्मपगडीओ वेदेंति जाव वेमाणिया।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को वेदता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! वेदनीय कर्म को बांधता हुआ जीव आठ कर्म प्रकृतियों का सात कर्म प्रकृतियों का अथवा चार कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में कहना चाहिए। शेष नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिक तक जीव एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा नियम से आठ कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं।

विवेचन - समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म बांधता हुआ आठ, सात या चार कर्म प्रकृतियाँ वेदता है। इसी तरह मनुष्य के विषय में कहना। नैरयिक आदि २३ दंडक के एक जीव वेदनीय कर्म बांधते हुए आठों ही कर्म वेदते हैं।

समुच्चय जीव एक वचन की अपेक्षा से वेदनीय कर्म का बंध करते हुए सात, आठ या चार कर्म प्रकृतियों को वेदते हैं। सात कर्म का वेदन करने वाले उपशांत मोह और क्षीण मोह वाले होते हैं क्योंकि उनमें मोहनीय का वेदन नहीं होता। पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान वाले जीव आठों ही कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं। चार कर्मों का वेदन करने वाले जीव सयोगी और अयोगी केवली होते हैं क्योंकि उनके चार घाती कर्मों का उदय नहीं होता है।

जीवा णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं बंधमाणा कइ कम्मपगडीओ वेदेंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य १, अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य सत्तविहवेएए य २, अहवा अट्ठविहवेदगा य चउव्विहवेदगा य सत्तविहवेदगा य ३, एवं मणूसा वि भाणियव्वा॥ ६३७॥

॥ पण्णवणाए भगवईए पणवीसइमं कम्मबंधवेयपयं समत्तं॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! बहुत जीव वेदनीय कर्म को बांधते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी जीव वेदनीय कर्म को बांधते हुए आठ या चार कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं, २. अथवा बहुत जीव आठ या चार कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं और कोई एक जीव सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं ३. अथवा बहुत जीव आठ, चार या सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं। इसी प्रकार बहुत से मनुष्यों के वेदन संबंधी कथन करना चाहिए।

विवेचन - समुच्चय बहुत जीव वेदनीय कर्म बांधते हुए आठ, सात अथवा चार कर्म प्रकृतियाँ वेदते हैं। आठ और चार कर्म प्रकृतियाँ वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म प्रकृतियां वेदने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं - १. सभी आठ और चार कर्म वेदने वाले २. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात कर्म वेदने वाला एक ३. आठ व चार कर्म वेदने वाले बहुत, सात कर्म वेदने वाले बहुत। इसी तरह बहुत मनुष्य का कहना। नैरयिक आदि तेईस दंडक के बहुत जीव वेदनीय कर्म बांधते हुए आठ कर्म वेदते हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का पच्चीसवां कर्मबन्धवेदपद सम्पूर्ण॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छव्वीसइमं कम्मवेयबंध पयं

छव्वीसवां कर्म वेद बन्ध पद

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा-णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इसी प्रकार नैरयिकों से लगा कर यावत् वैमानिकों तक आठ कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं।

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेयमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ सात कर्म प्रकृतियों का बंध करता है, आठ कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है, छह कर्म प्रकृतियों का बंध करता है या एक कर्म का बंध करता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितने कर्मों का बंध करता है इसका निरूपण किया गया है - १. कोई जीव आयु को छोड़ कर सात कर्मों का बंध करता है २. कोई आठों कर्मों का बंध करता है ३. कोई आयुष्य और मोह को छोड़ कर छह कर्मों का बंध करता है ४. उपशांत मोह और क्षीण मोह वाले जीव केवल एक वेदनीय कर्म का बन्ध करते हैं।

णेरइए णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा। एवं जाव वेमाणिए, णवरं मणूसे जहा जीवे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ सात कर्मों का या आठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मों का बंध करता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए परन्तु मनुष्य का कथन समुच्चय जीव के समान कहना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करते हुए सात या आठ कर्मों का बंध करता है। मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ ७, ८, ६ या १ कर्म का बंध करता है।

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति ?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधए य ४, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य ५, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य एगविहबंधए य ६, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधए य एगविहबंधगा य ७, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य एगविहबंधए य ८, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य छव्विहबंधगा य एगविहबंधगा य ९, एवं एए णव भंगा। अवसेसाणं एगिंदियमणूसवज्जाणं तियभंगो जाव वेमाणियाणं। एगिंदिया णं सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी जीव सात कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं और आठ कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं २. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों और आठ कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं और एक छह कर्म प्रकृतियों का बंधक होता है ३. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों के, आठ कर्म प्रकृतियों के और छह कर्म प्रकृतियों के बंधक होते हैं ४. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों के, आठ कर्म प्रकृतियों के तथा कोई एक प्रकृति का बंधक होता है ५. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों, आठ कर्म प्रकृतियों के और एक कर्म प्रकृति के बंधक होते हैं ६. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों के, आठ कर्म प्रकृतियों के, एक जीव छह कर्म प्रकृतियों का और एक जीव एक कर्म प्रकृति का बंधक होता है ७. अथवा बहुत से जीव सात कर्म प्रकृतियों के या आठ कर्म प्रकृतियों के, एक जीव छह कर्म प्रकृतियों का और बहुत जीव एक कर्म प्रकृति के बंधक होते हैं ८. अथवा बहुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव सात कर्म प्रकृतियों के, आठ कर्म प्रकृतियों के, छह कर्म प्रकृतियों के तथा एक जीव एक कर्म प्रकृति का बंधक होता है ९. अथवा बहुत जीव सात कर्म प्रकृतियों के, आठ कर्म प्रकृतियों के, छह कर्म प्रकृतियों के और एक कर्म प्रकृति के बांधने वाले होते हैं। ये कुल नौ भंग हुए। एकेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों को छोड़कर शेष जीवों यावत् वैमानिकों तक के तीन भंग कहने चाहिए। बहुत से एकेन्द्रिय जीव सात कर्म प्रकृतियों और आठ कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं।

विवेचन - समुच्चय बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं। सात, आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं तथा छह और एक कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके नौ भंग होते हैं - १. सभी सात आठ कर्म बांधने वाले २. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ३. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत ४ सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक ५. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत ६. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक ७. साथ आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत ८. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक ९. सात आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत।

एकेन्द्रिय (पांच स्थावर) और मनुष्य के सिवाय शेष यावत् वैमानिक तक बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए सात आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग कहना चाहिए। पांच स्थावर के बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए सात आठ कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले बहुत हैं और आठ कर्म बांधने वाले भी बहुत हैं। शाश्वत होने से इनमें भंग नहीं होता।

मणूसाणं पुच्छा?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य २, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य ३, अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य ४, एवं छव्विहबंधएण वि समं दो भंगा ५, एगविहबंधएण वि समं दो भंगा ६-७, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य चउभंगो १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य एगविहबंधए य चउभंगो २, अहवा सत्तविहबंधगा य छव्विहबंधए य एगविहबंधए य चउभंगो ३, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधए य छव्विहबंधए य एगविहबंधए य भंगा अट्ठ, एवं एए सत्तावीसं भंगा। एवं जहा णाणावरणिज्जं तहा दंसणावरणिज्जं पि अंतराइयं पि॥ ६३८॥

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! (१) सभी मनुष्य सात कर्म प्रकृतियों के बन्धक होते हैं (२) अथवा बहुत से सात और एक आठ कर्म प्रकृति बांधता है (३) अथवा बहुत से मनुष्य सात कर्मों के और एक छह कर्मों का बन्धक है (४-५) इसी प्रकार छह कर्मों के बन्धक के साथ भी दो भंग होते हैं (६-७) तथा एक कर्म के बन्धक के साथ भी दो भंग होते हैं (८-११) अथवा बहुत-से सात कर्मों के बन्धक, एक आठ का और एक छह कर्मों का बन्धक यों चार भंग हुए (१२-१५) अथवा बहुत-से सात कर्मों के बन्धक, एक आठ कर्मों का और एक मनुष्य एक प्रकृति का बन्धक, यों चार भंग हुए (१६-१९) अथवा बहुत-से सात के बन्धक तथा एक छह का और एक एक कर्म का बन्धक इसके भी चार भंग हुए (२०-२७) अथवा बहुत-से सात कर्मों के बंधक, एक आठ कर्मों का, एक छह कर्मों का और एक एक कर्म प्रकृति का बन्धक होता है, यों इसके आठ भंग होते हैं। कुल मिलाकर ये सत्ताईस भंग होते हैं। जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के बन्धक का कथन किया, उसी प्रकार दर्शनावरणीय एवं अन्तराय कर्म के बन्धक का कथन करना चाहिए।

विवेचन - बहुत मनुष्य ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं। सात कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, आठ छह और एक कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके २७ भंग होते हैं - असंयोगी एक, दो संयोगी छह, तीन संयोगी बारह और चार संयोगी आठ। १. सभी सात कर्म बांधने वाले २. सात कर्म बांधने वाले बहुत आठ कर्म बांधने वाला एक ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत ४ सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत ६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक ७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत ८. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक ९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत १०. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ११. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत १२. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक १३. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत १४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत एक कर्म बांधने वाला एक १५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत १६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक १७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत १८ सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक १९. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत २०. सात कर्म बांधने वाले, बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक २१. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत २२. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत एक कर्म बांधने वाला एक २३ सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत २४. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक २५. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत २६. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक २७. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म कहना चाहिये।

जीव णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?

गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा अबंधए वा, एवं मणूसे वि। अवसेसा णारयाइया सत्तविहबंधगा अट्ठविहबंधगा य, एवं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव वेदनीय कर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव वेदनीय कर्म का वेदन करता हुआ सात कर्मों का, आठ कर्मों का, छह कर्मों का, या एक कर्म का बन्धक होता है अथवा अबंधक होता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी समझ लेना चाहिये। शेष नैरयिक आदि यावत् वैमानिक तक सात कर्मों का या आठ कर्मों का बन्ध करते हैं।

विवेचन - समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म वेदता हुआ सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधता है अथवा अबन्धक यानी कोई कर्म नहीं बांधता। इसी तरह मनुष्य के विषय में कहना चाहिये। शेष नैरयिक आदि २३ दंडक का प्रत्येक जीव वेदनीय कर्म वेदता हुआ सात या आठ कर्म बांधता है।

जीवा णं भंते! वेयणिज्जं कम्मं वेएमाणा कइ कम्मपगडीओ बंधंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य १, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य २,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधगा य ३, अबंधगेण वि समं दो भंगा भाणियव्वा ५, अहवा सत्तविहबंधगा य अट्ठविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अबंधए य चउभंगो, एवं एए णव भंगा। एगिंदियाणं अभंगयं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव वेदनीय कर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी जीव सात कर्मों के, आठ कर्मों के और एक कर्म के बन्धक होते हैं, २. अथवा बहुत-से जीव सात कर्मों के, आठ कर्मों के या एक कर्म के बन्धक होते हैं और एक छह कर्मों का बन्धक होता है। ३. अथवा बहुत से जीव सात कर्मों के, आठ कर्मों के, एक कर्म के तथा छह कर्मों के बन्धक होते हैं ४-५. अबन्धक के साथ भी दो भंग कहने चाहिए ६-९. अथवा बहुत जीव सात कर्मों के, आठ कर्मों के, एक कर्म के बंधक होते हैं तथा कोई एक छह कर्मों का बन्धक होता है तथा कोई एक अबन्धक भी होता हैं, यों चार भंग होते हैं। कुल मिलाकर ये नौ भंग हुए। एकेन्द्रिय जीवों में कोई भंग नहीं होता।

विवेचन - समुच्चय बहुत जीव वेदनीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह अथवा एक कर्म बांधते हैं या अबन्धक होते हैं। इनमें सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, छह कर्म बांधने वाले और अबन्धक अशाश्वत हैं। इनमें नौ भंग होते हैं- असंयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार। १. सभी सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले २. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक ३. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत ४. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबंधक एक ५. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबंधक बहुत ६. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अबंधक एक ७. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अबंधक बहुत ८. सात आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अबंधक बहुत।

एकेन्द्रिय के बहुत जीव वेदनीय कर्म वेदते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। इनमें भंग नहीं होता।

णारगाईणं तियभंगा जाव वेमाणियाणं। णवरं मणूसाणं पुच्छा?

सव्वे वि ताव होज्जा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य, अहवा सत्तविहबंधगा य एगविहबंधगा य छव्विहबंधए य अट्ठविहबंधए य अबंधए य, एवं एए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा। जहा किरियासु पाणाइवाय विरयस्स एवं जहा वेयणिज्जं तहा आउयं णामं गोयं च भाणियव्वं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नैरयिक आदि यावत् वैमानिक तक के तीन-तीन भंग कहने चाहिए?

प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से मनुष्य वेदनीय कर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी मनुष्य सात कर्मों के या एक कर्म के बंधक होते हैं २. अथवा बहुत से मनुष्य सात कर्मों के और एक कर्म के बंधक तथा कोई एक छह कर्मों का, एक आठ कर्म का बन्धक है या अबंधक होता है इस प्रकार कुल मिलाकर सत्ताईस भंग कहना चाहिए। जैसे प्राणातिपात विरत की क्रियाओं के विषय में कहे हैं, उसी प्रकार कहने चाहिये। जिस प्रकार वेदनीय कर्म के वेदन के साथ कर्म बंध का कथन किया है उसी प्रकार आयुष्य, नाम और गोत्र कर्म के विषय में भी कह देना चाहिए।

विवेचन - बहुत मनुष्य वेदनीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह और एक कर्म बांधते हैं या अबन्धक होते हैं। सात और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और आठ व छह कर्म बांधने वाले तथा अबंधक अशाश्वत हैं। इनके २७ भंग होते हैं असंयोगी एक, दो संयोगी ६, तीन संयोगी १२ और चार संयोगी ८। ज्ञानावरणीय कर्म के २७ भंग जैसे कहे हैं उसी तरह ये २७ भंग कह देना चाहिए। वेदनीय कर्म की तरह आयु, नाम और गोत्र कर्म भी समझना चाहिए।

मोहणिज्जं वेएमाणे जहा बंधे णाणावरणिज्जं तहा भाणियव्वं॥६३९॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छव्वीसइमं कम्मवेयबंधपयं समत्तं॥

भावार्थ - जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध का कथन किया है, उसी प्रकार मोहनीय कर्म के वेदन के साथ कर्म बन्ध का कथन कह देना चाहिए।

विवेचन - ज्ञानावरणीय के समान मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव सात, आठ या छह कर्मों का बंधक होता है। इसी तरह मनुष्य के विषय में कहना। नैरयिक आदि जीव मोहनीय कर्म वेदता हुआ सात आ आठ कर्म बांधता है। समुच्चय बहुत जीव मोहनीय कर्म वेदते हुए सात, आठ और छह कर्म बांधते हैं। सात आठ कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं और छह कर्म बांधने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रिय बहुत जीव मोहनीय कर्म वेदते हुए सात या आठ कर्म बांधते हैं। भंग नहीं होता। एकेन्द्रिय और मनुष्य को छोड़कर शेष जीव मोहनीय कर्म वेदते हुए सात आठ कर्म बांधते हैं। इनके तीन-तीन भंग होते हैं। बहुत मनुष्य मोहनीय कर्म वेदते हुए सात, आठ, छह कर्म बांधते हैं। इनके नौ भंग होते हैं-असंयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का छव्वीसवां कर्मवेदबंध पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तावीसइमं कम्मवेयवेयगपयं

सत्ताईसवाँ कर्मवेद वेदक पद

कइ णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। तंजहा - णाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्म प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक के आठ कर्म प्रकृतियाँ कही गई हैं।

जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

गोयमा! अट्ठविहवेयए वा सत्तविहवेयए वा, एवं मणूसे वि। अवसेसा एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेदेंति जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव आठ या सात कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है? इसी प्रकार मनुष्य के विषय में समझना चाहिए। शेष सभी जीव यावत् वैमानिक तक एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा नियम से आठ कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं।

जीवा णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएमाणा कइ कम्मपगडीओ वेदेंति?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा अट्ठविहवेयगा १, अहवा अट्ठविहवेयगा य सत्तविहवेयए य २, अहवा अट्ठविहवेयगा य सत्तविहवेयगा य ३, एवं मणूसा वि। दरिसणावरणिज्जं अंतराइयं च एवं चेव भाणियव्वं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करते हुए कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. सभी जीव आठ कर्म प्रकृतियों के वेदक होते हैं २. अथवा कई जीव आठ कर्म प्रकृतियों के वेदक होते हैं और कोई एक जीव सात कर्म प्रकृतियों का वेदक होता है, ३. अथवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कई जीव आठ और कई सात कर्म प्रकृतियों के वेदक होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में भी समझना चाहिए। दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्म विशेष को वेदता हुआ कितने कर्म वेदता है इसका वर्णन किया गया है। एक जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदता हुआ सात कर्म या आठ कर्म वेदता है। बहुत जीव ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए आठ कर्म या सात कर्म वेदते हैं। आठ कर्म वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म वेदने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं - १. सभी जीव आठ कर्म प्रकृतियों के वेदक होते हैं २. अथवा कई जीव आठ के वेदक होते हैं और कोई एक सात का वेदक होता है अथवा ३. कई आठ के और कई सात के वेदक होते हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म की तरह दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म के विषय में भी समझना चाहिये।

वेयणिज्जं आउयणामगोत्ताइं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

गोयमा! जहा बंधवेयगस्स वेयणिज्जं तहा भाणियव्वाणि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे बन्धक-वेदक के वेदनीय का कथन किया गया है, उसी प्रकार वेद-वेदक के वेदनीय का कथन करना चाहिए।

विवेचन - समुच्चय एक जीव वेदनीय कर्म वेदता हुआ आठ कर्म वेदता है, सात कर्म वेदता है और चार कर्म वेदता है। इसी तरह एक मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिये। नैरयिक आदि शेष जीव नियम पूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। समुच्चय बहुत जीव वेदनीय कर्म वेदते हुए आठ कर्म वेदते हैं, सात कर्म वेदते हैं और चार कर्म वेदते हैं। आठ और चार कर्म वेदने वाले शाश्वत हैं और सात कर्म वेदने वाले अशाश्वत हैं। इनके तीन भंग होते हैं। इसी तरह बहुत से मनुष्य के भी तीन भंग कहना चाहिए। नैरयिक आदि शेष बहुत जीव वेदनीय कर्म वेदते हुए नियम पूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। वेदनीय कर्म की तरह आयु, नाम और गोत्र कर्म के विषय में भी कहना चाहिए।

जीवे णं भंते! मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?

गोयमा! णियमा अट्ठ कम्मपगडीओ वेएइ, एवं णेरइए जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेण वि॥ ६४०॥

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तावीसइमं कम्मवेयवेयगपयं समत्तं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है?

उत्तर - हे गौतम! मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ जीव नियम से आठ कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है। इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक तक आठ कर्म प्रकृतियों का वेदन होता है इसी प्रकार बहुवचन की अपेक्षा से भी समझना चाहिये।

विवेचन - समुच्चय एक जीव तथा बहुत जीव मोहनीय कर्म वेदते हुए नियम पूर्वक आठ कर्म वेदते हैं। इसी तरह नैरयिक आदि २४ दंडक के एक जीव और बहुत जीव मोहनीय कर्म वेदते हुए नियम पूर्वक आठ कर्म वेदते हैं।

इस प्रकार आगम में तो इन चार पदों की मिलाकर कुल १७०० पृच्छायें हैं। २५ तो समुच्चय कर्म प्रकृतियों की, एक एक पद में ४०० पृच्छायें (२४ दंडक एवं समुच्चय जीव के आठ कर्म बांधने या वेदने की एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा से २५×८×२=४००) इस प्रकार एक-एक पद में ४२५ (२५+४००) पृच्छाएं हैं। चारों की मिलाकर १७०० पृच्छाएं होती हैं। थोकड़े वाले मात्र बहुवचन की पृच्छाओं (प्रश्नोत्तरों) को ही गिनकर आठ सौ बोलों की बन्धी कहते हैं। क्योंकि मुख्य रूप से भांगे (३-९-२७ आदि) तो बहुवचन में ही होते हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का सत्ताईसवाँ कर्म वेद वेदक पद सम्पूर्ण ॥

☆ ☆ ☆ ☆

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठावीसइमं आहारपयं

अट्ठाईसवाँ आहार पद

पढमो उद्देसो - प्रथम उद्देशक

प्रज्ञापना सूत्र के सताईसवें पद में नरक आदि गति को प्राप्त जीवों के कर्म के वेदन रूप परिणाम का कथन किया गया। प्रस्तुत अट्ठाईसवें पद में आहार परिणाम का वर्णन करते हैं जिसकी संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार हैं -

सच्चित्ताहारट्ठी केवइ किं वावि सव्वओ चेव।
कइभागं सव्वे खलु परिणामे चेव बोद्धव्वे॥ १॥
एगिंदियसरीराई लोमाहारो तहेव मणभक्खी।
एएसिं तु पयाणं विभावणा होइ कायव्वा॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - **आहारट्ठी** - आहारार्थी, **लोमाहारो** - लोम आहार, **मणभक्खी** - मनोभक्षी।

भावार्थ - १. सचित्ताहार २. आहारार्थी ३. कितने काल से आहार की इच्छा होती है? ४. किन पुद्गलों का आहार करते हैं? ५. सभी आत्म-प्रदेशों से आहार करते हैं ६. ग्रहण किये हुए पुद्गलों का कितना भाग आहार और आस्वादन करते हैं? ७. जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं क्या उन सब का आहार करते हैं? ८. आहार का परिणाम अर्थात् आहार किस रूप में परिणत होता है? ९. क्या एकेन्द्रिय शरीर आदि का आहार करते हैं? १०. लोमाहारी या प्रक्षेपाहारी ११. ओज आहारी या मनोभक्षी आहारी, इन ग्यारह पदों की यहाँ विचारणा व्याख्या करनी है।

विवेचन - प्रस्तुत दो संग्रहणी गाथाओं में ग्यारह द्वारों का प्रतिपादन किया गया है। इन ग्यारह द्वारों के द्वारा प्रथम उद्देशक में आहार संबंधी विचारणा की गयी है।

१. सचित्त आहार द्वार

णेरइया णं भंते! किं सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, मीसाहारा?

गोयमा! णो सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, णो मीसाहारा एवं असुरकुमारा जाव वेमाणिया। ओरालियसरीरा जाव मणूसा सचित्ताहारा वि अचित्ताहारा वि मीसाहारा वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक सचित्ताहारी होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं या मिश्राहारी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक सचित्ताहारी नहीं होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं, मिश्राहारी नहीं होते हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये। औदारिक शरीरधारी यावत् मनुष्य सचित्ताहारी भी हैं, अचित्ताहारी भी हैं और मिश्राहारी भी है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीव सचित्त का आहार करते हैं? अचित्त का आहार करते हैं या मिश्र का आहार करते हैं? नैरयिक जीवों के लिए कहा गया है-कि वे सचित्त आहार भी नहीं करते, मिश्र आहार भी नहीं करते किन्तु अचित्त आहार करते हैं। नैरयिक वैक्रिय शरीर धारी हैं और वे वैक्रिय शरीर के पोषण योग्य पुद्गलों का आहार करते हैं जो अचित्त ही होते हैं किन्तु जीव द्वारा ग्रहण किये हुए नहीं होते अतः वे अचित्त आहार वाले हैं किन्तु सचित्त आहार वाले और मिश्र आहार वाले नहीं है। इसी प्रकार असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार तक सभी भवनपति देवों, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में समझना चाहिये।

औदारिक शरीर वाले जीव औदारिक शरीर पोषण योग्य पुद्गलों का आहार करते हैं और वे पुद्गल पृथ्वीकाय आदि के परिणाम रूप परिणत हुए होते हैं अतः सचित्त आहार वाले, अचित्त आहार वाले और मिश्र आहार वाले होते हैं अर्थात् औदारिक शरीर वाले (पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य) सचित्त, अचित्त, मिश्र-तीनों प्रकार का आहार करते हैं।

२-८ आहारार्थी आदि द्वार

णेरइया णं भंते! आहारट्ठी? हंता गोयमा! आहारट्ठी।

णेरइया णं भंते! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?

गोयमा! णेरइयाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते। तंजहा - आभोगणिव्वत्तिए य अणाभोगणिव्वत्तिए य। तत्थ णं जे से अणाभोगणिव्वत्तिए से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ। तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं असंखिज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ॥ ६४१॥

कठिन शब्दार्थ - आभोगणिव्वत्तिए - आभोग निर्वर्तित, **अणाभोगणिव्वत्तिए** - अनाभोग निर्वर्तित, **अणुसमयमविरहिए** - अनुसमय-प्रतिसमय-अविरहित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक आहारार्थी -आहार की इच्छा वाले होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! नैरयिक आहारार्थी होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों को कितने काल से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का आहार दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. आभोगनिर्वर्तित-इच्छा पूर्वक किया हुआ और २. अनाभोग निर्वर्तित-इच्छा बिना किया हुआ। उनमें से जो अनाभोगनिर्वर्तित आहार है उसकी इच्छा प्रतिसमय-निरन्तर होती है और जो आभोग निर्वर्तित आहार है उसकी इच्छा असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त से उत्पन्न होती है।

विवेचन - आहार दो प्रकार का कहा है - १. आभोग निर्वर्तित और २. अनाभोग निर्वर्तित 'मैं आहार करूँ' इस प्रकार की इच्छा पूर्वक ग्रहण किया हुआ आहार आभोगनिर्वर्तित आहार कहलाता है। इससे विपरीत बिना इच्छा के होने वाला आहार अनाभोग निर्वर्तित आहार कहलाता है। नैरयिकों में आभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा असंख्यात समय से होती है- कम से कम अन्तर्मुहूर्त से होती है और अनाभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा प्रति समय होती है। नैरयिकों में - 'मैं आहार करूं' इस प्रकार की इच्छा अन्तर्मुहूर्त्त में होती है अतः नैरयिकों की आहार की इच्छा अन्तर्मुहूर्त्त की कही गयी है। यह तीसरा द्वार हुआ।

णेरइया णं भंते! किमाहारमाहारेंति?

गोयमा! दव्वओ अणंतपएसियाइं, खेत्तओ असंखिज्जपएसोगाढाइं, कालओ अण्णयरट्ठिइयाइं, भावओ वण्णमंताइं गंधमंताइ रसमंताइं फासमंताइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक किन पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक द्रव्य से अनन्त प्रदेशी पुद्गलों का, क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों का, काल से अन्यतर (किसी भी) काल की स्थिति वाले और भाव से वर्ण वाले, गंध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि नैरयिक किन पुद्गलों का आहार करते हैं? नैरयिक द्रव्य से अनंत प्रदेशी पुद्गलों का आहार करते हैं क्योंकि संख्यात प्रदेशी या असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहण नहीं किये जा सकते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा वे असंख्यात प्रदेशावगाढ़ स्कन्धों का आहार करते हैं। काल से एक समय, दो समय, तीन समय यावत् दस समय, संख्यात समय और असंख्यात समय की स्थिति वाले स्कन्धों को ग्रहण करते हैं। भाव से वे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले द्रव्यों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं क्योंकि प्रत्येक परमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श अवश्य पाए जाते हैं।

जाइं भंते! भावओ वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव पंचवण्णाइं आहारेंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइं पि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइं पि आहारेंति जाव सुक्किल्लाइं पि आहारेंति।

जाइं० वण्णओ कालवण्णाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति, संखिज्जगुणकालाइं, असंखिज्जगुणकालाइं, अणंतगुणकालाइं आहारेंति?

गोयमा! एगगुणकालाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकालाइं पि आहारेंति, एवं जाव सुक्किल्लाइं वि। एवं गंधओ वि रसओ वि।

कठिन शब्दार्थ - ठाणमग्गणं - स्थान मार्गणा, **विहाणमग्गणं** - विधान मार्गणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव से नैरयिक वर्ण वाले जिन पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे एक वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् क्या वे पांच वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे स्थान मार्गणा की अपेक्षा से एक वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् पांच वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं तथा विधान मार्गणा की अपेक्षा से काले वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे वर्ण से जिन काले वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे एक गुण काले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् दस गुण काले पुद्गलों का आहार करते हैं, संख्यात गुण काले, असंख्यात गुण काले या अनन्त गुण काले वर्ण वाले पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे एक गुण काले पुद्गलों का भी आहार करते हैं यावत् अनन्तगुण काले पुद्गलों का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् शुक्लवर्ण वाले पुद्गलों के विषय में भी समझना चाहिये। इसी प्रकार गन्ध और रस की अपेक्षा भी समझना चाहिए।

विवेचन - स्थान मार्गणा - आहार आदि में जीव जिन पुद्गल स्कन्धों को ग्रहण करता है उन सभी स्कन्धों में समुच्चय (सामान्य) रूप से वर्णादि की पृच्छा करना।

विधान मार्गणा - ग्रहण किये गये स्कन्धों में से प्रत्येक स्कन्धों में अलग-अलग वर्णादि की पृच्छा करना।

जाइं भावओ फासमंताइं आहारेंति ताइं णो एगफासाइं आहारेंति, णो दुफासाइं आहारेंति, णो तिफासाइं आहारेंति, चउफासाइं पि आहारेंति जाव अट्ठफासाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइं पि आहारेंति जाव लुक्खाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं० फासओ कक्खडाइं आहारेंति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं आहारेंति?

गोयमा! एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति, एवं अट्ठ वि फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाइं पि आहारेंति।

भावार्थ - जो जीव भाव से स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं, वे एक स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं, न दो स्पर्श वाले और न तीन स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते, अपितु चार स्पर्श वाले यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। विधान मार्गणा की अपेक्षा वे कर्कश यावत् रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वे जिन कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे एक गुण कर्कश पुद्गलों का आहार करते हैं, यावत् अनन्तगुण कर्कश पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे एक गुण कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् अनन्त गुण कर्कश पुद्गलों का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार आठों ही स्पर्शों के विषय में यावत् 'अनन्तगुण रूक्ष पुद्गलों का भी आहार करते हैं', तक कह देना चाहिए।

जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति ताइं किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति?

गोयमा! पुट्ठाइं आहारेंति, णो अपुट्ठाइं आहारेंति, जहा भासुद्देसए जाव णियमा छद्दिसिं आहारेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वे जिन अनन्तगुण रूक्ष पुद्गलों का आहार करते हैं, क्या वे स्पृष्ट पुद्गलों का आहार करते हैं या अस्पृष्ट पुद्गलों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे स्पृष्ट पुद्गलों का आहार करते हैं, अस्पृष्ट पुद्गलों का नहीं। जिस प्रकार भाषा-उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार यावत् वे नियम से छहों दिशाओं से आहार करते हैं।

विवेचन - नैरयिक वर्ण की अपेक्षा पांचों वर्ण वाले, गंध की अपेक्षा दोनों गंध वाले, रस की अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्श की अपेक्षा आठों स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। वर्ण से काले वर्ण वाले पुद्गलों को ग्रहण करते हैं तो एक गुण काले वर्ण के, दो गुण काले वर्ण के, तीन गुण काले वर्ण के यावत् दस गुण काले वर्ण के, संख्यात गुण काले वर्ण के, असंख्यातगुण काले वर्ण के और अनंतगुण काले वर्ण के पुद्गलों का आहार करते हैं। काले वर्ण की तरह शेष चार वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श का वर्णन भी कह देना चाहिये। नैरयिक आत्मप्रदेशों से स्पृष्ट द्रव्यों का नियमा छह दिशाओं से आहार करते हैं।

ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णओ कालणीलाइं, गंधओ दुब्भिगंधाइं, रसओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तित्तकडुयाइं, फासओ कक्खडगरुयसीयलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे विपरिणामइत्ता परिपीलइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे रसगुणे फासगुणे उप्पाइत्ता आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारं आहारेंति।

कठिन शब्दार्थ - **ओसण्णं कारणं** - ओसन्न कारण-बाहुल्यकारण (प्रधानता की अपेक्षा), **विपरिणामइत्ता** - विपरिणमन (परिवर्तन) कर के, **परिपीलइत्ता** - परिपीडन करके, **परिसाडइत्ता** - परिशाटन करके, **परिविद्धंसइत्ता** - परिविध्वंस करके, **उप्पाइत्ता** - उत्पन्न करके, **आयसरीरखेत्तोगाढे**- अपने शरीर क्षेत्र में अवगाहन किये हुए, **सव्वप्पणयाए** - सर्वात्मा से-सर्व आत्म-प्रदेशों से।

भावार्थ - बाहुल्य कारण की अपेक्षा से वर्ण से काले व नीले वर्ण वाले, गन्ध से दुर्गन्ध वाले, रस से तिक्त (तीखे), कटुक (कडुए) रस वाले और स्पर्श से कर्कश, गुरु (भारी), शीत (ठंडे) और रूक्ष पुद्‌गल द्रव्यों का आहार करते हैं, उनके पूर्व के वर्ण गुण, गन्ध गुण, रस गुण और स्पर्श गुण का विपरिणमन (परिवर्तन) करके, परिपीडिन करके, परिशाटन (नाश) करके और परिविध्वंस करके अन्य अपूर्व वर्ण गुण, गन्ध गुण, रस गुण और स्पर्श गुण को उत्पन्न करके अपने शरीर रूप क्षेत्र में रहे हुए पुद्‌गलों का सर्वात्मा से आहार करते हैं।

विवेचन - नैरयिक अधिकतर अशुभ वर्ण (काले, नीले) अशुभ गंध (दुरभिगंध) अशुभ रस (तीखे कड़वे) और अशुभ स्पर्श (कर्कश, गुरू, शीत, रूक्ष) वाले पुद्‌गलों का आहार लेते हैं। उन ग्रहण किये हुए पुद्‌गलों के पुराने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का नाश करके दूसरे अपूर्व अशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उत्पन्न करके फिर शरीर क्षेत्र में रहे हुए पुद्‌गलों का सभी आत्म-प्रदेशों से आहार करते हैं।

यहाँ **'ओसण्ण'**-बहुलता सूचक शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका आशय यह है कि अशुभ विपाक वाले मिथ्यादृष्टि काले (कृष्ण) आदि वर्ण वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं किन्तु भविष्य में तीर्थंकर आदि होने वाले नैरयिक जीव ऐसे पुद्‌गलों का आहार नहीं करते हैं इसलिए **'ओसण्ण'** ऐसा कहा है। यह चौथा द्वार हुआ।

णेरइया णं भंते! सव्वओ आहारेंति, सव्वओ परिणामेंति, सव्वओ ऊससंति, सव्वओ णीससंति, अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं ऊससंति, अभिक्खणं णीससंति, आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च ऊससंति, आहच्च णीससंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा ! णेरइया सव्वओ आहारेंति एवं तं चेव जाव आहच्च णीससंति ॥ ६४२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वओ** - सर्वतः-सर्वात्मा से - सभी आत्म प्रदेशों से, **अभिक्खणं** - बार-बार, **आहच्च** - कदाचित्, **परिणामेंति** - परिणमाते हैं-पचाते हैं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! क्या नैरयिक १. सर्वतः (सर्वात्मा से) आहार करते हैं २. सर्वतः परिणमाते हैं ३. सर्वतः उच्छ्वास लेते हैं ४. सर्वतः निःश्वास छोड़ते हैं ५. बार-बार आहार करते हैं ६. बार-बार परिणमाते हैं ७. बार-बार उच्छ्वास लेते हैं ८. बार बार निःश्वास छोड़ते हैं ९. कदाचित् आहार करते हैं १०. कदाचित् परिणमाते हैं ११. कदाचित् उच्छ्वास लेते हैं १२. कदाचित् निःश्वास छोड़ते हैं ?

उत्तर - हाँ गौतम! नैरयिक सर्वतः-सर्वात्मा से आहार करते हैं इसी प्रकार यावत् कदाचित् निःश्वास छोड़ते हैं। अर्थात् नैरयिक ये बारह बोल करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्या नैरयिक सभी आत्म-प्रदेशों से आहार करते हैं? इस विषय में बारह बोल कहे हैं। इनमें से १ से ४ बोल अनाभोग आहार की अपेक्षा से है। ५ से ८ बोल पर्याप्ता की अपेक्षा से है। ९ से १२ बोल अपर्याप्ता की अपेक्षा से है। यह पांचवां द्वार हुआ।

णेरइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं आसाएंति?

गोयमा! असंखिज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं आसाएंति।

कठिन शब्दार्थ - **सेयालंसि** - भविष्य काल में।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलों का भविष्य काल में कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वाद करते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं उन पुद्गलों का आगामी काल में असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं।

विवेचन - नैरयिक आहार रूप में ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलों का आहार नहीं करते और आस्वादन नहीं करते किन्तु उनके असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वाद करते हैं। जिन पुद्गलों का आहार नहीं करते वे पुद्गल बिना आहार किये नष्ट हो जाते हैं। जैसे गाय आदि घास का मोटा कवल लेते हैं किन्तु उसमें से कुछ गिर जाता है। आहार किये हुए जिन पुद्गलों का आस्वाद नहीं करते वे बिना आस्वाद किये ही शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं। छठा द्वार पूर्ण हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति?

गोयमा! ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या उन सब का आहार करते हैं या उन सभी का आहार नहीं करते ?

उत्तर - हे गौतम! वे सभी अपरिशेष पुद्गलों का आहार करते हैं।

विवेचन - नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं उन सभी का आहार करते हैं। कोई भी पुद्गल आहार करने से बचते नहीं है।

सर्व अपरिशेष आहार - नैरयिक जीव जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं। उसका असंख्यातवें भाग का आहार ग्रहण करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं। उन ग्रहण किये हुए सभी पुद्गलों को शरीर रूप में परिणमा देने के कारण उनके 'सर्व अपरिशेष' आहार कहा गया है। नैरयिक जीवों में रोमाहार ही होने से वे सभी गृहीत पुद्गल परिणमा देते हैं। बेइन्द्रियादि औदारिक दण्डकों में जहाँ प्रक्षेपाहार है उस प्रक्षेपाहार का असंख्यातवां भाग आहार रूप होता है, शेष विध्वंस हो जाता है। पहली बार के कथन में सामान्य रूप से आहार के पुद्गलों का ग्रहण बताया है और दूसरी बार में ग्रहण किये आहार के खल-रस भाग की अपेक्षा बताया गया है। यह खल-रस रूप आहार-प्रक्षेपाहार में ही संभव होने से उन बेइन्द्रियादि जीवों में असंख्यातवें भाग का आहार बताया है। शेष वैक्रिय के १४ दण्डकों में 'सर्व अपरिशेष' आहार बताया है।

प्रक्षेपाहार वालों में ग्रहण करते समय भी पुद्गल छूट जाने से अपरिशेष परिणमन नहीं होता। अथवा जैसे उत्करिका भेद लब्धि वाला-एक घट से हजार घट बना लेता है। देखने में वे सब सरीखे होने पर भी उनकी घनता कम हो जाती है। वैसे ही पुद्गलों की अत्यन्त सघनता होने के कारण गृहीत स्कन्धों में से असंख्यातवें भाग का ही आहार करते हैं तो भी शरीर की इतनी पुष्टि हो सकती है। यह असंख्यातवें भाग का आहार व अनंतवें भाग का आस्वादन-आभोग अनाभोग दोनों आहार के लिए समझना चाहिये। आत्म प्रदेशावगाढ़ होने के बाद आहार एवं उसके बाद आस्वादन समझना। खल भाग निकल कर सार भाग परिणत होने पर आहार समझना चाहिये। एक बार या जितनी बार आहार करे-उसका परिणमन सभी आत्म-प्रदेशों से होता है। आस्वादन-इन्द्रियादि के द्वारा अनुभवन रूप से प्राप्त।

आहारेंति - शेष पुद्गल तो बिना अनुभवन किये ही शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं।

णेरइया णं भंते! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए अणिच्छियत्ताए अ(ण) भिज्झियत्ताए अहत्ताए णो उड्ढत्ताए दुक्खत्ताए णो सुहत्ताए तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति॥ ६४३॥

कठिन शब्दार्थ - अणिट्ठत्ताए - अनिष्ट रूप से, **अकंतत्ताए** - अकान्त रूप से, **अप्पियत्ताए** - अप्रिय रूप से, **असुभत्ताए** - अशुभ रूप से, **अमणुण्णत्ताए** - अमनोज्ञ रूप से, **अमणामत्ताए** - अमनाम रूप से, **अणिच्छियत्ताए** - अनीप्सित रूप से, (अनिच्छित रूप से), **अ(ण)भिज्झियत्ताए** - अनभिलषित रूप से, **अहत्ताए** - अधो-भारी रूप से, **उड्ढत्ताए** - ऊर्ध्व-लघु रूप से, **भुज्जो-भुज्जो** - बार-बार ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे उन पुद्गलों को बार-बार किस रूप में परिणत करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे उन पुद्गलों को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में, अनिष्ट रूप से, अकान्त रूप से, अप्रिय रूप से, अशुभ रूप से, अमनोज्ञ रूप से, मनाम रूप से, अनिच्छनीय रूप से अनभिलषित रूप से, अधो-भारी रूप से, ऊर्ध्व-हल्के रूप से नहीं, दुःख रूप से, सुख रूप से नहीं, उनका बार-बार परिणमन करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों के आहार परिणाम का वर्णन किया गया है। नैरयिक जिन पुद्गलों का आहार करते हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय रूप में अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ अमनोज्ञ, अतृप्तिकर, अनीप्सित (अनिच्छनीय) अनभिलषित रूप से परिणत होते हैं। ये पुद्गल नैरयिक में गुरु परिणाम से परिणत होते हैं किन्तु लघु परिणाम से परिणत नहीं होते, दुःख रूप से परिणत होते हैं किन्तु सुख रूप से परिणत नहीं होते। आठवां द्वार पूर्ण।

असुरकुमारा णं भंते आहारट्ठी?

हंता गोयमा! आहारट्ठी। एवं जहा णेरइयाणं तहा असुरकुमाराण वि भाणियव्वं जाव तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति। तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं साइरेगवाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णओ हालिद्दसुक्किल्लाइं, गंधओ सुब्भिगंधाइं रसओ, अंबिलमहुराइं, फासओ मउयलहुयणिद्धुण्हाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे जाव फासिंदियत्ताए जाव मणामत्ताए इच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए उड्ढत्ताए णो अहत्ताए सुहत्ताए णो दुहत्ताए तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा णेरइयाणं। एवं जाव थणियकुमाराणं णवरं आभोगणिव्वत्तिए उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ॥ ६४४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या असुरकुमार आहारार्थी-आहार के अभिलाषी होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! असुरकुमार आहारार्थी होते हैं। जैसे नैरयिकों के विषय में कहा है उसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में यावत् 'उनके पुद्‌गलों का बार-बार परिणमन होता है' तक कहना चाहिये। उनमें से जो आभोग निर्वर्तित आहार है उस आहार की अभिलाषा जघन्य चतुर्थ भक्त से उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार वर्ष से होती है। बाहुल्य रूप कारण-सामान्य कारण की अपेक्षा वर्ण से हारिद्र-पीला और श्वेत, गंध से सुरभिगंध वाले, रस से अम्ल और मधुर तथा स्पर्श से मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण पुद्‌गलों का आहार करते हैं। आहार किये जाने वाले उन पुद्‌गलों के पुराने वर्ण गंध रस स्पर्श गुण को नष्ट करके यावत् स्पर्शनेन्द्रिय रूप में यावत् मनोहर रूप में इच्छनीय रूप से अभिलषित रूप से ऊर्ध्व रूप लघुरूप से भार रूप नहीं सुख रूप में परिणत होते हैं दुःख रूप में नहीं इस प्रकार उन पुद्‌गलों का बार-बार परिणमन होता है। शेष सारा वर्णन नैरयिकों के समान समझना चाहिए। इसी प्रकार स्तनितकुमारों का कथन असुरकुमारों के समान जानना चाहिये, विशेषता यह है कि आभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा उत्कृष्ट दिवस-पृथक्त्व से उत्पन्न होती है।

विवेचन - नैरयिक की तरह असुरकुमार देवों में भी दोनों प्रकार की आहार की इच्छा होती है। अनाभोग निर्वर्तित आहार की प्रति समय और आभोग निर्वर्तित आहार की जघन्य चतुर्थ भक्त (एक दिन) से उत्कृष्ट एक हजार वर्ष से कुछ अधिक समय से होती है। नागकुमार आदि शेष नौ निकाय के देवों में अनाभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा प्रति समय और आभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य चतुर्थ भक्त उत्कृष्ट पृथक्त्व दिवस (अनेक दिन) से होती है।

पुढविकाइया णं भंते! आहारट्ठी?

हंता गोयमा! आहारट्ठी।

पुढविकाइया णं भंते! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?

गोयमा! अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

पुढविकाइयाणं भंते! किमाहारमाहारेंति?

एवं जहा णेरइयाणं जाव ताइं कइदिसिं आहारेंति?

गोयमा! णिव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, णवरं ओसण्णकारणं ण भण्णइ। वण्णओ कालणीललोहियहालिद्द-सुक्किल्लाइं, गंधओ सुब्भिगंधदुब्भिगंधाइं, रसओ तित्तरसकडुयरसकसायरसअंबिल-महुराइं, फासओ कक्खडफासमउयगरुयलहुयसीयउण्हणिद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे सेसं जहा णेरइयाणं जाव आहच्च णीससंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ -प्रश्न - हे भगवन्! क्या पृथ्वीकायिक जीव आहारार्थी-आहार की इच्छा वाले होते हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! पृथ्वीकायिक जीव आहारार्थी होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों को कितने समय से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है?

उत्तर-हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों को प्रतिसमय बिना विरह के आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव किस का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कथन किया है उसी प्रकार पृथ्वीकायिकों के विषय में भी समझना चाहिए यावत् पृथ्वीकायिक जीव कितनी दिशाओं से आहार करते हैं? हे गौतम! व्याघात-प्रतिबन्ध रहित छह दिशाओं से आये पुद्गलों का और व्याघात की अपेक्षा कदाचित् तीन कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से आगत पुद्गलों का आहार करते हैं। विशेषता यह है कि ओसण्ण कारण - सामान्य कारण नहीं कहा जाता। वर्ण से काला, नीला, लाल, पीला, सफेद, गंध से सुगंधित और दुर्गंधित, रस से तीखा, कडुआ, कषायैला, खट्टा और मीठा और स्पर्श से कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों का आहार करते हैं। उनके पुराने वर्ण आदि गुण नष्ट हो जाते हैं इत्यादि सारा वर्णन नैरयिकों के समान यावत् कदाचित् श्वासोच्छ्वास लेते हैं तक समझना चाहिये।

विवेचन - पृथ्वीकायिक जीव व्याघात और निर्व्याघात से आहार लेते हैं। जब व्याघात से आहार लेते हैं तो कभी तीन दिशा का, कभी चार दिशा का और कभी पांच दिशा का आहार ग्रहण करते हैं। निर्व्याघात से वे छहों दिशा का आहार लेते हैं। व्याघात यानी अलोकाकाश से स्खलना-प्रतिबंध होना। जब कोई पृथ्वीकायिक जीव लोक निष्कुट - लोक के गवाक्ष जैसे प्रांत भाग में - अंतिम नीचे के प्रतरके अग्निकोण में होता है तब उसका नीचे का भाग अलोक से व्याप्त होने के कारण अधोदिशा के पुद्गलों का अभाव होता है। अग्निकोण खुला रहने से पूर्व दिशा के और दक्षिण दिशा के पुद्गलों का अभाव होता है। इस प्रकार अधोदिशा, पूर्व दिशा और दक्षिण दिशा अलोक से व्याप्त होने के कारण उन्हें छोड़कर शेष ऊर्ध्व, पश्चिम और उत्तर दिशा से आये पुद्गलों का वह पृथ्वीकायिक जीव आहार करता है। जब वह पृथ्वीकायिक जीव पश्चिम दिशा में स्थित होता है तब पूर्व दिशा अधिक होती है और दक्षिण तथा अधो, ये दो दिशाएं अलोक से व्याघात वाली होती है अतः वह चारों दिशाओं से आगत पुद्गलों का आहार करता है। जब ऊपर के दूसरे आदि प्रतर में रहा हुआ पश्चिम दिशा का अवलंबन लेकर रहता है। तब नीचे की दिशा भी अधिक होती है केवल पर्यन्तवर्ती एक दक्षिण दिशा ही अलोक से व्याघात वाली होती है अतः पांच दिशाओं से आये पुद्गलों का पृथ्वीकायिक जीव आहार करता है। शेष वर्णन नैरयिकों के समान है। विशेषता यह है कि **'ओसण्णं कारणं ण भण्णइ'** सामान्य कारण की अपेक्षा नहीं कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढविकाइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताएं गिण्हंति तेसिं भंते! पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं आसाएंति?

गोयमा! असंखिज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं आसाएंति।

पुढविक्काइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति? जहेव णेरइया तहेव।

पुढविकाइया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पुग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति?

गोयमा! फासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति। एवं जाव वणस्सइकाइया॥ ६४५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलों में से भविष्यकाल में कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक द्वारा आहार के रूप में ग्रहण किये गये पुद्गलों के असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या उन सभी का आहार करते हैं या उन सभी का आहार नहीं करते?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल किस रूप में बार-बार परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पुद्गल स्पर्शनेन्द्रिय की विषम मात्रा के रूप में बार-बार परिणत होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक समझ लेना चाहिये।

विवेचन - पृथ्वीकायिकों के द्वारा आहार के रूप में गृहीत पुद्गल स्पर्शनेन्द्रिय की विमात्रा-विषममात्रा के रूप में परिणत होते हैं। इसका आशय यह है कि नैरयिकों के समान एकान्त अशुभ रूप में और देवों के समान एकान्त शुभ रूप में उनका परिणमन नहीं होता किन्तु कभी शुभ और कभी अशुभ रूप में बार-बार उनका परिणमन होता है। यही पृथ्वीकायिकों की नैरयिकों से विशेषता है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के विषय में आहार संबंधी वक्तव्यता कही है उसी प्रकार शेष स्थावरों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइंदिया णं भंते! आहारट्ठी? हंता आहारट्ठी।

बेइंदिया णं भंते! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ? जहा णेरइयाणं, णवरं तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं असंखिज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, सेसं जहा पुढविकाइयाणं जाव आहच्च णीससंति, णवरं णियमा छद्दिसिं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव क्या आहारार्थी-आहार के अभिलाषी होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! बेइन्द्रिय जीव आहारार्थी होते हैं।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा होती है?

उत्तर - हे गौतम! इनका वर्णन नैरयिकों के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उसकी अभिलाषा असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त में विमात्रा से उत्पन्न होती है। शेष सारा वर्णन पृथ्वीकायिकों के समान यावत् "कदाचित् निःश्वास लेते हैं" तक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वे नियम से छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

बेइंदियाणं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते णं तेसिं पुग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति कइभागं आसाएंति? एवं जहा णेरइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे भविष्य में उन पुद्गलों के कितने भाग का आहार करते हैं और जितने भाग का आस्वादन करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इस विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गला आहारत्ताए गिण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति?

गोयमा! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते। तंजहा - लोमाहारे य पक्खेवाहारे य, जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गेण्हंति ते सव्वे अपरिसेसे आहारेंति, जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गेण्हंति तेसिमसंखिज्जइभागमाहारेंति, अणेगाइं च णं भागसहस्साइं अफासाइज्जमाणाणं अणासाइज्जमाणाणं विद्धंसमागच्छंति।

कठिन शब्दार्थ - लोमाहारे - लोमाहार, **पक्खेवाहारे** - प्रक्षेपाहार, **अफासाइज्जमाणाणं**- अस्पृश्यमान-बिना स्पर्श किये हुए, **अणासाइज्जमाणाणं**- अनास्वाद्यमान-बिना स्वाद लिए हुए, **विद्धंसमागच्छंति** - विध्वंश को प्राप्त हो जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सबका आहार करते हैं या सभी का आहार नहीं करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है- लोमाहार और प्रक्षेपाहार। वे जिन पुद्गलों को लोमाहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन सभी का समग्र रूप से आहार करते हैं और जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार रूप में ग्रहण करते हैं, उनके असंख्यातवें भाग का ही आहार करते हैं और अनेक हजार भाग स्पर्श किये बिना और स्वाद लिये बिना विध्वंस (नाश) को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन - बेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है - **१. लोमाहार** - रोमों द्वारा किया जाने वाला आहार लोमाहार कहलाता है **२. प्रक्षेपाहार** - कवलाहार-मुख में डाल कर या कौर के रूप में मुख द्वारा किया जाने वाला आहार प्रक्षेपाहार है। सामान्य रूप से वर्षा आदि काल में पुद्गलों का शरीर में प्रवेश हो जाता है जिसका अनुमान मूत्र आदि से लगाया जा सकता है, वह लोमाहार है। बेइन्द्रिय जीव लोमाहार के रूप में जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं उन सभी का पूर्ण रूप से आहार करते हैं क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है तथा जिन पुद्गलों को बेइन्द्रिय जीव प्रक्षेपाहार के रूप में ग्रहण करते हैं उनके असंख्यातवें भाग का ही आहार होता है उनमें से बहुत से आहार भाग बिना स्पर्श किये हुए और बिना स्वाद किये यों ही नष्ट हो जाते हैं क्योंकि उनमें से कितनेक अति स्थूल एवं कितनेक अति सूक्ष्म होने के कारण यथा संभव नाश को प्राप्त होते हैं।

एएसि णं भंते! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन स्वाद नहीं लिये हुए और स्पर्श नहीं किये हुए पुद्गलों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पुद्गल स्वाद नहीं लिये जाने वाले हैं और उनसे अनंतगुणा पुद्गल स्पर्श नहीं किये जाने वाले हैं।

विवेचन - बेइन्द्रिय द्वारा प्रक्षेपाहार रूप में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों में सबसे कम पुद्गल बिना स्वाद लिये होते हैं क्योंकि आस्वादन योग्य पुद्गलों में से कितनेक आस्वाद को प्राप्त होते हैं और कितनेक आस्वाद को प्राप्त नहीं होते इसलिए अनास्वाद्यमान पुद्गल थोड़े हैं। उससे अस्पृश्यमान पुद्गल अनन्तगुणा हैं। आशय यह है कि एक एक स्पर्श योग्य भाग में अनन्तवां भाग आस्वाद के योग्य होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गला आहारत्ताए - पुच्छा?

गोयमा! जिब्भिदियफासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति। एवं जाव चउरिंदिया, णवरं णेगाइं च ण भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं अपासाइज्जमाणाइं विद्धंसमागच्छंति।

एएसि णं भंते! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा, अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा॥ ६४६॥

कठिन शब्दार्थ - अणाघाइज्जमाणाणं - अनाघ्रायमाण-बिना सूंघे हुए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल किस-किस रूप में पुनःपुनः परिणत होते हैं? इत्यादि पृच्छा।

उत्तर - हे गौतम! वे पुद्गल रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की विमात्रा के रूप में पुनः पुनः परिणत होते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक कहना चाहिये। विशेषता यह है कि उनके अनेक हजार भाग बिना सूंघे हुए, बिना स्वाद लिये हुए या बिना स्पर्श किये हुए ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! इन बिना सूंघे हुए, बिना स्वाद लिये हुए और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गलों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषादिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े पुद्गल बिना सूंघे हुए हैं, उससे बिना स्वाद लिए हुए पुद्गल अनंत गुणा हैं और उनसे भी बिना स्पर्श किये हुए पुद्गल अनन्त गुणा हैं।

विवेचन - बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करता है उनको जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की विमात्रा-विषम मात्रा से-विविध रूप में परिणमता है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के विषय में समझना चाहिये। क्योंकि इनकी समान वक्तव्यता है। इसमें जो विशेषता है वह बताते हुए कहते हैं - जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार के रूप में ग्रहण करते है उन पुद्गलों के एक असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनेक हजार भाग-बहुत असंख्याता भाग सूंघे बिना, स्वाद लिये बिना और स्पर्श किये बिना नाश को प्राप्त होते हैं वह भी यथासंभव अतिस्थूलपन से या अतिसूक्ष्मपन से जानना चाहिये। इसकी अल्प बहुत्व के विषय में कहा गया है कि एक स्पर्श योग्य भाग के अनंतवें भाग आस्वाद के योग्य और उसका भी अनंतवां भाग सूघने के योग्य होता है।

तेइंदिया णं भंते! जे पोग्गला-पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! ते णं पोग्गला घाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति। चउरिंदियाणं चक्खिंदियघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति, सेसं जहा तेइंदियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेंइन्द्रिय जीव जिन पुद्‌गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्‌गल किस रूप में पुनः पुनः परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पुद्‌गल घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शन्द्रिय की विमात्रा से पुनः पुनः परिणत होते हैं। चतुरिन्द्रिय द्वारा आहार के रूप में ग्रहण किये गये पुद्‌गल चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शन्द्रिय की विमात्रा से पुनः पुनः परिणत होते हैं। शेष वर्णन तेइन्द्रियों के समान समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकेलन्द्रियों के आहार के विषय में स्पष्टीकरण किया गया है।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा तेइंदियाणं, णवरं तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! जे पोग्गला आहारत्ताए-पुच्छा?

गोयमा! सोइंदियचक्खिंदियघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियवेमायत्ताए तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

भावार्थ - पंचेन्द्रियतिर्यंचों का कथन तेइन्द्रिय जीवों के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उस आहार की अभिलाषा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त से उत्कृष्ट षष्ठ भक्त से उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच जिन पुद्‌गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्‌गल उनमें किस रूप में पुनः पुनः परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पुद्‌गल श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की विमात्रा से पुनः पुनः परिणत होते हैं।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों को आभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त में उत्कृष्ट षष्ठ भक्त में (दो दिन के बाद) होती हैं। यह कथन देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र के तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा समझना चाहिये।

मणूसा एवं चेव णवरं आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स उक्कोसेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। वाणमंतरा जहा णागकुमारा, एवं जोइसिया वि णवरं आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। एवं वेमाणिया वि, णवरं आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव ते तेसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

भावार्थ - मनुष्यों का आहार संबंधी कथन भी इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि उनको आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त में और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होने पर उत्पन्न होती है। वाणव्यंतर देवों की आहार संबंधी वक्तव्यता नागकुमारों के समान समझना चाहिये। इसी प्रकार ज्योतिषियों का भी कथन है किन्तु विशेषता यह है कि उन्हें आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस पृथक्त्व में और उत्कृष्ट भी दिवस पृथक्त्व में उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वैमानिक देवों का आहार संबंधी कथन है। विशेषता यह है कि इनको आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस पृथक्त्व में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में उत्पन्न होती है शेष सारा कथन असुरकुमारों के समान यावत् उन पुद्गलों का बार-बार परिणमन होता है तक कह देना चाहिये।

विवेचन - मनुष्यों को आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा उत्कृष्ट अष्टम भक्त-तीन दिवस व्यतीत होने पर होती है यह कथन देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्यों की अपेक्षा समझना चाहिए। ज्योतिषी देवों को जघन्य दिवस पृथक्त्व/अनेक दिन (कम से कम दो उत्कृष्ट प्रसंगानुसार) और उत्कृष्ट भी दिवस पृथक्त्व व्यतीत होने पर आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। ज्योतिषियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग होती है इसलिए उन्हें जघन्य भी दिवस पृथक्त्व व्यतीत होने पर पुनः आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। वैमानिक देवों में आभोगनिर्वर्तित आहार इच्छा पूर्वक आहार जघन्य दिवस पृथक्त्व में होता है वह पल्योपम आदि के आयुष्य वालों के लिए समझना चाहिए, उत्कृष्ट ३३ हजार वर्षों में आहार की इच्छा होती है। यह अनुत्तर विमानवासी देवों की अपेक्षा समझना चाहिये।

जिन देवों की जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने हजार वर्ष व्यतीत होने पर उन्हें आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

सोहम्मे आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

ईसाणे णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स साइरेगस्स, उक्कोसेणं साइरेगं दोण्हं वाससहस्साणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सणंकुमाराणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दोण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं सत्तण्हं वाससहस्साणं।

माहिंदे पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दोण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं, उक्कोसेणं सत्तण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं।

बंभलोए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं दसण्हं वाससहस्साणं।

लंतए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दसण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं चउदसण्हं वाससहस्साणं।

महासुक्के णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउदसण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं वाससहस्साणं।

सहस्सारे णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरसण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं वाससहस्साणं।

आणए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं वाससहस्साणं, उक्कोसेणं एगूणवीसाए वाससहस्साणं।

पाणए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसाए वाससहस्साणं, उक्कोसेणं वीसाए वाससहस्साणं।

आरणे णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वीसाए वाससहस्साणं, उक्कोसेणं एक्कवीसाए वाससहस्साणं।

अच्चुए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कवीसाए वाससहस्साणं, उक्कोसेणं बावीसाए वाससहस्साणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सौधर्मकल्प में देवों को आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा (इच्छा) जघन्य दिवस-पृथक्त्व से और उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से उत्पन्न होती है।

प्रश्न-हे भगवन्! ईशान कल्प के देवों को कितने समय में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प के देवों को जघन्य सातिरेक (कुछ अधिक) दिवस पृथक्त्व में और उत्कृष्ट सातिरेक दो हजार वर्षों से आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - सनत्कुमार सम्बन्धी पूर्ववत् प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दो हजार वर्षों में और उत्कृष्ट सात हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - माहेन्द्रकल्प के विषय में पूर्ववत् प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य सातिरेक दो हजार वर्षों में और उत्कृष्ट सातिरेक सात हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - ब्रह्मलोक कल्प के विषय में पूर्ववत् प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य सात हजार वर्षों में और उत्कृष्ट दस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - लान्तककल्प सम्बन्धी प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट चौदह हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - महाशुक्रकल्प के सम्बन्ध में प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! वहाँ जघन्य चौदह हजार वर्षों में और उत्कृष्ट सत्तरह हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - सहस्रारकल्प के विषय में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य सत्तरह हजार वर्ष में और उत्कृष्ट अठारह हजार वर्षों में आहार की इच्छा होती है।

प्रश्न - आनतकल्प के विषय में पूर्ववत् प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अठारह हजार वर्षों में और उत्कृष्ट उन्नीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा होती है।

प्रश्न - प्राणतकल्प के विषय में पूर्ववत् प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य उन्नीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट बीस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - आरणकल्प के देवों के आहार विषय में प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य बीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट इक्कीस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्रश्न-हे भगवन्! अच्युतकल्प के देवों को कितने समय में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! अच्युत कल्प के देवों को जघन्य २१ हजार वर्षों में और उत्कृष्ट २२ हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसाए वाससहस्साणं, उक्कोसेणं तेवीसाए वाससहस्साणं, एवं सव्वत्थ सहस्साणि भाणियव्वाणि जाव सव्वट्ठं।

हिट्ठिममज्झिमगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसाए, उक्कोसेणं चउवीसाए।

हिट्ठिमउवरिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसाए, उक्कोसेणं पणवीसाए।

मज्झिमहेट्ठिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसाए, उक्कोसेणं छव्वीसाए।

मज्झिममज्झिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसाए, उक्कोसेणं सत्तावीसाए।

मज्झिमउवरिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसाए, उक्कोसेणं अट्ठावीसाए।

उवरिमहेट्ठिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसाए, उक्कोसेणं एगूणतीसाए।

उवरिममज्झिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसाए, उक्कोसेणं तीसाए।

उवरिमउवरिमाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं तीसाए, उक्कोसेणं एगतीसाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन (सबसे नीचे की त्रिक के) ग्रैवेयक देवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य बाईस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट तेईस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक-एक हजार वर्ष अधिक कहना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयकों की आहार विषयक पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य तेईस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट चौबीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयकों के आहारेच्छा विषयक प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य चौवीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट पच्चीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयकों के विषय में आहारेच्छा सम्बन्धी प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य पच्चीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट छब्बीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयकों की आहारेच्छा विषयक प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य छब्बीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट सत्ताईस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-उपरिम ग्रैवेयकों आहारेच्छा सम्बन्धी प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य सत्ताईस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट अट्ठाईस हजार वर्षों में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयकों की आहारेच्छा विषयक प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अट्ठाईस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट उनतीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! उपरिम-मध्यम ग्रैवेयकों की आहारेच्छा सम्बन्धी प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य उनतीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट तीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

प्रश्न- हे भगवन्! उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकों में कितने काल से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य तीस हजार वर्ष में और उत्कृष्ट इकतीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विजयवेजयंतजयंतअपराजियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगतीसाए, उक्कोसेणं तेत्तीसाए।

सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं पुच्छा?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ॥ ६४७ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! उन्हें जघन्य इकत्तीस हजार वर्ष में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध के देवों को कितने समय में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध के देवों को अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

विवेचन - प्रस्तु सूत्र में देवों को कितने काल से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है इस विषय में स्पष्टीकरण किया गया है। देवों में दस हजार वर्ष की स्थिति वालों के चतुर्थभक्त (एक अहोरात्रि) से, पल्योपम की स्थिति वालों के पृथक्त्व दिवस (दो दिन से अनेक दिन) से एवं सागरोपम की स्थिति वालों के एक हजार वर्ष झाझेरी (कुछ अधिक) से आभोग निर्वर्तित आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। यानी जिस देवलोक की जितने सागरोपम की स्थिति है उतने ही हजार वर्षों से आहार की इच्छा होती है। जैसे चार अनुत्तर विमान के देवों की जघन्य स्थिति ३१ सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है तो उन देवों को जघन्य इकत्तीस हजार वर्षों में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

९. एकेन्द्रिय शरीर आदि द्वार

णेरइया णं भंते! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचिंदियसरीराइं आहारेंति?

गोयमा! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियसरीराइं पि आहारेंति जाव पंचिंदिय०, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा पंचिंदियसरीराइं आहारेंति, एवं जाव थणियकुमारा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पुव्वभावपण्णवणं - पूर्व भाव प्रज्ञापना-अतीतकालीन पर्यायों की प्ररूपणा, **पडुप्पण्णभावपण्णवणं** - प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापना-वर्तमान कालिक भाव की प्ररूपणा।

भावार्थ - प्रश्न- हे भगवन्! क्या नैरयिक एकेन्द्रिय शरीरों का यावत् पंचेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय शरीरों का भी आहार करते हैं यावत् पंचेन्द्रिय शरीरों का भी आहार करते हैं। प्रत्युत्पन्नभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा वे नियमा पंचेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

विवेचन - नैरयिक पूर्वभाव की प्रज्ञापना-प्ररूपणा की अपेक्षा एकेन्द्रिय के शरीर का भी आहार करते हैं यावत् शब्द से बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के शरीरों का ग्रहण करना चाहिए तथा पंचेन्द्रिय शरीरों का भी आहार करते हैं। यहाँ आशय यह है कि जब आहार रूप में ग्रहण किये जाते पुद्गलों के अतीत-भूतकाल के भाव-परिणाम का विचार करते हैं तब कोई एकेन्द्रिय शरीर रूप में परिणत, कदाचित् बेइन्द्रिय शरीर रूप में परिणत, कदाचित् तेइन्द्रिय शरीर रूप में परिणत, कदाचित् चउरिन्द्रिय शरीर रूप में परिणत और कदाचित् पंचेन्द्रिय शरीर रूप में परिणत हुए थे अतः जब भूतकाल के परिणाम का वर्तमान में आरोप करके विवक्षा करते हैं तब नैरयिक, एकेन्द्रिय के शरीरों का भी यावत् पंचेन्द्रिय के शरीरों का भी आहार करते हैं।

'पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च' - प्रत्युत्पन्न-वर्तमान भाव की प्रज्ञापनी-प्ररूपणा की अपेक्षा नैरयिक नियमा पंचेन्द्रिय शरीर का आहार करते हैं। यह ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा समझना चाहिए क्योंकि ऋजुसूत्र नय वर्तमान काल के भावों की ही प्ररूपणा करता है। ऋजुसूत्र नय जिसका आहार किया जाता है उसका आहार किया हुआ और परिणमन होते हुए को परिणत हुआ मानता है। आहार किये जाते पुद्गल वे कहे जाते हैं जो स्व शरीर रूप में परिणत होते हैं। नैरयिकों का स्व शरीर पंचेन्द्रिय शरीर है और पंचेन्द्रिय शरीर होने से वे अवश्य पंचेन्द्रिय शरीर का आहार करते हैं। अर्थात् वर्तमान में नैरयिक का पंचेन्द्रिय शरीर है और आहार रूप में ग्रहण किये हुए पुद्गल पंचेन्द्रिय शरीर रूप में परिणत होते हैं इसलिए वे पुद्गल भी पंचेन्द्रिय शरीर कहलाते हैं।

पुढविकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा एगिंदियसरीराइं आहारेंति। बेइंदिया पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव, पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा बेइंदियाणं सरीराइं आहारेंति, एवं जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउरिंदिया जाव पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च, एवं पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा जस्स जइ इंदियाइं तइंदियाइं सरीराइं आहारेंति, सेसा जहा णेरइया, जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के विषय में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! पूर्व भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा इसी प्रकार समझना चाहिए। प्रत्युत्पन्न भाव की अपेक्षा वे नियमा एकेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं। बेइन्द्रिय जीवों के विषय में पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा इसी प्रकार समझना चाहिए। प्रत्युत्पन्न भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा वे नियम से बेइन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा पूर्ववत् समझना चाहिए, वर्तमान भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा नियमा जिसके जितनी इन्द्रियाँ हैं वे उतनी इन्द्रियों वाले शरीरों का आहार करते हैं। शेष जीवों का यावत् वैमानिकों तक का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

१०. लोमाहार द्वार

णेरइया णं भंते! किं लोमाहारा पक्खेवाहारा?

गोयमा! लोमाहारा, णो पक्खेवाहारा, एवं एगिंदिया सव्वे देवा य भाणियव्वा जाव वेमाणिया। बेइंदिया जाव मणूसा लोमाहारा वि पक्खेवाहारा वि ॥ ६४८ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव लोमाहारी हैं प्रक्षेपाहारी नहीं हैं।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवों, सभी देवों यावत् वैमानिकों तक के विषय में कहना चाहिए। बेइन्द्रियों से लेकर यावत् मनुष्यों तक लोमाहारी भी हैं प्रक्षेपाहारी भी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीवों के लोमाहारी और प्रक्षेपाहारी होने की प्ररूपणा की गयी है। शरीर पर्याप्ति होने के बाद रोमों (त्वचा) के द्वारा होने वाला आहार लोमाहार कहलाता है और जो जीव लोमाहार करने वाले हैं वे लोमाहारी कहलाते हैं। कवल द्वारा मुख से शरीर में आहार डालना प्रक्षेपाहार कहलाता है जो जीव प्रक्षेपाहार करने वाले हैं वे प्रक्षेपाहारी कहलाते हैं। नैरयिक चारों प्रकार के देव और एकेन्द्रिय जीव लोमाहारी हैं प्रक्षेपाहारी नहीं, क्योंकि नैरयिकों और देवों में वैक्रिय शरीर होता है इसलिए तथाविध स्वभाव से ही वे लोमाहारी ही होते हैं, प्रक्षेपाहारी नहीं। लोमाहार भी पर्याप्त जीवों को ही होता है अपर्याप्तों को नहीं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के मुख नहीं होता अतः उनमें कवलाहार का अभाव है वे लोमाहारी ही होते हैं। तीन विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय) तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य लोमाहारी भी होते हैं और प्रक्षेपाहारी भी। क्योंकि उनमें दोनों प्रकार का आहार संभव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. मनोभक्षी आहार द्वार.

णेरइया णं भंते! किं ओयाहारा मणभक्खी?

गोयमा! ओयाहारा, णो मणभक्खी, एवं सव्वे ओरालियसरीरा वि। देवा सव्वे वि जाव वेमाणिया ओयाहारा वि मणभक्खी वि। तत्थ णं जे ते मणभक्खी देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ 'इच्छामो णं मणभक्खणं करित्तए' तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव मणामा ते तेसिं मणभक्खत्ताए परिणमंति, से जहाणामए सीया पोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, एवामेव तेहिं देवेहिं मणभक्खीकए समाणे से इच्छामणे खिप्पामेव अवेइ॥ ६४९॥

॥ पण्णवणाए भगवईए अट्ठावीसइमे आहारपए पढमो उद्देसओ समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - ओयाहारा - ओज आहारी, **मणभक्खी** - मनोभक्षी, **इच्छामणे** - इच्छा मन-मन में आहार करने की इच्छा, **मणसीकए** - मन से इच्छा किये जाने पर, **मणभक्खत्ताए** - मनोभक्ष्य रूप में, **अइवइत्ताणं** - प्राप्त हो कर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव ओज आहारी-ओज आहार करने वाले होते हैं या मनोभक्षी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव ओज आहारी होते हैं, मनोभक्षी नहीं। इसी प्रकार सभी औदारिक शरीर वाले जीव होते हैं। वैमानिक पर्यंत सभी प्रकार के देव ओज आहारी भी होते हैं और मनोभक्षी भी होते हैं। उनमें से जो मनोभक्षी देव होते हैं उनको 'हम मन में चिंतित वस्तु का भक्षण करें' इस प्रकार इच्छा मन-मन में आहार करने की इच्छा उत्पन्न होती है वे देव मन में इस प्रकार की इच्छा किये जाने पर शीघ्र ही जो पुद्गल इष्ट कान्त यावत् मनोज्ञ मनाम होते हैं वे उनके मनोभक्ष्य रूप में परिणत हो जाते हैं जैसे शीत पुद्गल शीत योनि वाले जीव के आश्रित होकर शीत रूप में परिणत होकर रहते हैं, उष्ण पुद्गल उष्ण योनि वाले जीव के आश्रित होकर उष्ण रूप में परिणत होकर रहते हैं उसी प्रकार उन देवों द्वारा मनोभक्षण किये जाने पर उनका मन शीघ्र ही संतुष्ट-शांत हो जाता है।

विवेचन - उत्पत्ति देश में जो आहार योग्य पुद्गलों का समूह है वह 'ओज' कहलाता है। ओज का आहार करने वाले 'ओज आहारी' कहलाते हैं। यह आहार उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर शरीर पर्याप्ति के अपर्याप्तावस्था तक होता है। मन में उत्पन्न इच्छा से मन से आहार करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले 'मनोभक्षी आहारी' कहलाते हैं। मनोभक्षी आहारी में ऐसी शक्ति होती है कि वे मन से अपने शरीर को पुष्ट करने वाले पुद्गलों का आहार करते हैं और आहार करने के पश्चात् वे तृप्ति रूप परम संतोष का अनुभव करते हैं।

नैरयिक ओजाहारी होते हैं क्योंकि उनमें अपर्याप्तावस्था में ओज आहार संभव है वे मनोभक्षी आहारी नहीं होते क्योंकि प्रतिकूल - असातावेदनीय कर्म के उदय के कारण तथाप्रकार के मन से इष्ट आहार ग्रहण करने रूप शक्ति का उनमें अभाव होता है। नैरयिकों की तरह ही पृथ्वीकायिकों से लेकर मनुष्यों तक जितने भी औदारिक शरीरधारी जीव हैं वे सभी ओज आहार वाले होते हैं, मनोभक्षी आहारी नहीं होते।

असुरकुमार से लगाकर वैमानिक तक के सभी देव ओज आहारी भी होते हैं और मनोभक्षी आहारी भी होते हैं। जैसे शीत पुद्गल शीत योनि वाले प्राणी के लिए सुखरूप होते हैं और उष्ण पुद्गल उष्ण योनि वाले प्राणी के लिए सुखरूप होते हैं उसी प्रकार देवों में भी मन से आहार रूप ग्रहण किये हुए पुद्गल उनकी तृप्ति के लिए और उनके परम संतोष के लिए होते हैं जिसके कारण उनकी आहार की इच्छा निवृत्त होती है।

ओज आहार आदि के विभाग को दर्शाने वाली सूत्रकृतांग सूत्र २ अध्ययन ३ निर्युक्ति की गाथाएं इस प्रकार है-

सरीरेणोयाहारो तयाय फासेण लोम आहारो।

पक्खेवाहारो पुण कावलिओ होइ णायव्वो॥ १॥

- ओज आहार शरीर के द्वारा होता है रोम आहार त्वचा के द्वारा होता है और प्रक्षेपाहार कवल करके किया जाने वाला होता है॥ १॥

ओयाहारा जीवा सव्वे अपजत्तया मुणेयव्वा।

पज्जत्तगा य लोमे पक्खेवे होंति भइयव्वा॥ २॥

- सभी अपर्याप्त जीव ओजआहारी होते हैं पर्याप्त जीव लोमाहारी और प्रक्षेपाहारी भजना से होते हैं। यानी कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं॥ २॥

एगिंदियदेवाणं णेरइयाणं णत्थि पक्खेवो।

सेसाणं जीवाणं संसारत्थाण पक्खेवा॥ ३॥

- एकेन्द्रिय, नैरयिक और देव प्रक्षेपाहारी नहीं होते जबकि शेष जीव प्रक्षेपाहारी होते हैं॥ ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोमाहारा एगिंदिया उ णेरइय सुरगणा चेव।

सेसाणं आहारो लोमे पक्खेवओ चेव॥ ४॥

- लोमाहार वाले एकेन्द्रिय, नैरयिक और देव हैं शेष सभी जीवों के लोमाहार और प्रक्षेपाहार होता है॥ ४॥

ओयाहारा मणभक्खिणो य, सव्वे वि सुरगणा होंति।

सेसा हवंति जीवा लोमे पक्खेवओ चेव॥ ५॥

- सभी प्रकार के देव ओज आहारी और मनोभक्षी होते हैं शेष जीव लोमाहारी और प्रक्षेपाहारी होते हैं॥ ५॥

अब कौनसा आहार आभोग निर्वर्तित-इच्छा पूर्वक है और कौनसा आहार अनाभोगनिर्वर्तित-इच्छा रहित किया गया है इस प्रश्न के उत्तर में कहा है।

देवों को अनाभोग निर्वर्तित ओज आहार होता है और वह अपर्याप्तावस्था में होता है। लोमाहार भी अनाभोगनिर्वर्तित होता है पर वह पर्याप्तावस्था में होता है। मन से भक्षण करने रूप आहार आभोगनिर्वर्तित है और वह पर्याप्तावस्था में होता है अन्य जीवों को नहीं होता। सभी जीवों को अनाभोग निर्वर्तित ओज आहार अपर्याप्तावस्था में होता है और पर्याप्तावस्था में लोमाहार होता है। नैरयिकों के अलावा शेष जीवों को लोमाहार अनाभोग निर्वर्तित होता है और नैरयिक को लोमाहार आभोग निर्वर्तित भी होता है। बेइन्द्रिय से लगाकर मनुष्यों तक सभी जीवों को प्रक्षेपाहार होता है और वह आभोगनिर्वर्तित-इच्छा पूर्वक ही होता है।

॥ आहार पद का प्रथम उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठावीसइमे आहार पए-बीओ उद्देसओ

अट्ठाइसवाँ आहार पद - द्वितीय उद्देशक

आहार पद के प्रथम उद्देशक की व्याख्या करने के पश्चात् सूत्रकार दूसरे उद्देशक के प्रारम्भ में विषय निरूपण करने वाली संग्रहणी गाथा कहते हैं जो इस प्रकार है -

आहार भविय सण्णी लेसा दिट्ठी य संजय कसाए।

णाणे जोगुवओगे वेदे (वेए) य सरीर पज्जत्ती।

- आहार पद के द्वितीय उद्देशक में तेरह द्वार इस प्रकार हैं - १. आहार २. भव्य ३. संज्ञी ४. लेश्या ५. दृष्टि ६. संयत ७. कषाय ८. ज्ञान ९. योग १०. उपयोग ११. वेद १२. शरीर १३. पर्याप्ति।

विवेचन - औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीरों के द्वारा पुद्गलों को ग्रहण करना 'आहार' कहलाता है। आहार पद के द्वितीय उद्देशक में तेरह द्वारों से आहार का वर्णन किया गया है।

१. आहार द्वार

जीवे णं भंते! किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव आहारक है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! जीव कथंचित् (कभी) आहारक है और कथंचित् अनाहारक है। नैरयिक से लेकर यावत् वैमानिक तक इसी प्रकार समझना चाहिए।

सिद्धे णं भंते! किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! णो आहारए, अणाहारए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध जीव आहारक नहीं होता, अनाहारक होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव के आहारक और अनाहारक विषयक प्रश्न के उत्तर में प्रभु फरमाते हैं कि जीव स्यात्-कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। क्योंकि विग्रह गति, केवली समुद्घात, शैलेशी अवस्था (चौदहवें अयोगी केवली गुणस्थान) और सिद्ध अवस्था में जीव अनाहारक होता है और शेष सभी अवस्थाओं में जीव आहारक होता है। कहा भी है-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विग्गइगइमावण्णा केवलिणो समोहया अजोगी य।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा॥

- जिस प्रकार समुच्चय रूप से एक जीव के आहारक और अनाहारक के विषय में कहा है उसी प्रकार नैरयिक से लगा कर वैमानिक पर्यन्त तक सभी जीव कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होते हैं। अब बहुवचन की अपेक्षा जीवों के आहारक एवं अनाहारक के विषयक की गई पृच्छा इस प्रकार है -

जीवा णं भंते! किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! आहारगा वि अणाहारगा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत जीव आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! बहुत जीव आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं।

णेरइयाणं पुच्छा?

गोयमा! सव्वे वि ताव होज्जा आहारगा १, अहवा आहारगा य अणाहारए य २, अहवा आहारगा य अणाहारगा य ३, एवं जाव वेमाणिया, णवरं एगिंदिया जहा जीवा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत नैरयिक आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! १. वे सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक और कोई एक अनाहारक होता है अथवा ३. बहुत नैरयिक आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना, विशेषता यह है कि एकेन्द्रिय जीवों का कथन बहुत जीवों के समान समझना चाहिये।

सिद्धाणं पुच्छा?

गोयमा! णो आहारगा, अणाहारगा ॥ दारं १ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत सिद्ध आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध आहारक नहीं होते, वे अनाहारक ही होते हैं॥ प्रथम द्वार॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि बहुत से जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। विग्रह गति के अलावा शेष समय में सभी संसारी जीव आहारक ही होते हैं, विग्रहगति तो कहीं कभी किसी जीव की होती है। यद्यपि विग्रह गति सर्वकाल में पाई जाती है किन्तु वह भी प्रतिनियत-अमुक जीवों की ही होती है। इसलिए आहारक जीव बहुत होते हैं। सिद्ध तो अनाहारक ही होते हैं जो सदैव होते हैं और वे अभव्यों से अनन्तगुणा हैं। सदैव समुच्चय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निगोदों का असंख्यातवां भाग प्रतिसमय विग्रहगति में वर्तता है और वे अनाहारक होते हैं इसलिए अनाहारक जीव भी बहुत कहे गये हैं।

बहुत से नैरयिक जीवों में आहारक-अनाहारक के तीन भंग कहे हैं जो इस प्रकार है-

१. सभी नैरयिक आहारक होते हैं - किसी समय सभी नैरयिक आहारक ही होते हैं एक भी नैरयिक अनाहारक नहीं होता, ऐसा इसलिए संभव है कि नैरयिकों में उपपात का विरह काल होता है। नैरयिकों का उपपात विरह बारह मुहूर्त्त का होता है और उस काल में पूर्व में उत्पन्न हुए एवं विग्रह गति को प्राप्त हुए नैरयिक भी आहारक होते हैं और दूसरा कोई नया नैरयिक उस समय उत्पन्न नहीं होने से अनाहारक नहीं होता।

२. बहुत से नैरयिक आहारक होते हैं और कोई एक नैरयिक अनाहारक होता है - नरक में कदाचित् एक जीव उत्पन्न होता है, कदाचित् दो, कदाचित् तीन, चार यावत् संख्यात या असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं अतः जब एक जीव उत्पन्न होता है और वह भी विग्रह गति प्राप्त होने से अनाहारक होता है उसके अलावा सभी पूर्वोत्पन्न नैरयिक होने से आहारक होते हैं तब यह दूसरा भंग घटित होता है।

३. बहुत से नैरयिक आहारक और बहुत से अनाहारक - यह तीसरा भंग जब बहुत नैरयिक विग्रह गति से नैरयिक रूप में उत्पन्न हो रहे हों तब घटित होता है। इन तीन भंगों के अलावा नैरयिकों में कोई भंग संभव नहीं हैं क्योंकि नैरयिकों में आहारकपद हमेशा बहुवचन का ही विषय होता है। इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक और बेइन्द्रिय से लगाकर वैमानिक पर्यन्त तीन तीन भंग समझना चाहिये क्योंकि उपपात का अन्तर होने से प्रथम भंग और एक दो आदि संख्या से उत्पन्न होने से शेष दो भंग संभव है। किन्तु पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं यह एक ही भंग होता है क्योंकि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय में प्रति समय असंख्यात और वनस्पतिकाय में प्रतिसमय अनन्त जीव विग्रहगति से उत्पन्न होने से अनाहारक पद में सदैव बहुवचन संभव है इसीलिए सूत्रकार ने **"एवं जाव वेमाणिया णवरं एगिंदिया जहा जीवा"** कहा है।

सिद्धों में अनाहारक होते हैं-यह एक ही भंग समझना चाहिए क्योंकि सर्व शरीरों का नाश हो जाने से उनमें आहार संभव नहीं है और वे सदैव बहुत ही होते हैं। यह प्रथम आहार द्वार समाप्त हुआ।

२. भव्य द्वार

भवसिद्धिए णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! भवसिद्धिक जीव कदाचित् आहारक होता है, कदाचित् अनाहारक होता है, इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए।

विवेचन - संख्यात, असंख्यात या अनन्तभवों में जिनकी सिद्धि होती है वे भविसिद्धिक (भव्य) कहलाते हैं। भवसिद्धिक जीव कदाचित् आहारक होते हैं और कदाचित् अनाहारक होते हैं। विग्रहगति आदि अवस्था में भवसिद्धिक जीव अनाहारक और शेष अवस्था में आहारक होते हैं। इसी प्रकार चौबीसों दण्डक के जीवों के विषय में समझना चाहिए। यहाँ सिद्ध जीव का कथन नहीं किया है क्योंकि मोक्षपद को प्राप्त हो जाने के कारण उनमें भवसिद्धिकपना नहीं है। अब बहुवचन की अपेक्षा विचार करते हैं -

भवसिद्धिया णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अभवसिद्धिए वि एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत भवसिद्धिक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! बहुत भवसिद्धिक जीवों के विषय में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये।

विवेचन - यहां भी आहारक द्वार की तरह जीव पद के विषय में और एकेन्द्रियों के विषय में प्रत्येक की अपेक्षा दोनों स्थानों में बहुवचन से 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' यह एक ही भंग पाया जाता है। शेष नैरयिक आदि स्थानों में तीन भंग होते हैं - १. सभी आहारक ही होते हैं और एक भी अनाहारक नहीं होता २. अथवा सभी आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. *अथवा बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक भी होते हैं।*

जिस प्रकार एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा भवसिद्धिक जीवों के आहारक और अनाहारकपने का कथन किया है उसी प्रकार अभवसिद्धिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए। अभवसिद्धिक जीव वे हैं जो मोक्ष गमन के योग्य नहीं हैं।

णोभवसिद्धिए णोअभवसिद्धिए णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! णो आहारए, अणाहारए एवं सिद्धे वि।

णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिया णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! णो आहारगा, अणाहारगा, एवं सिद्धा वि॥ दारं २॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! नोभवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक जीव आहारक नहीं होता, अनाहारक होता है। इसी प्रकार सिद्ध जीव के विषय में समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! बहुत नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक जीव आहारक नहीं होते हैं किन्तु अनाहारक होते हैं इसी प्रकार बहुत से सिद्ध जीवों के विषय में भी समझना चाहिए॥ द्वितीय द्वार॥

विवेचन - नोभवसिद्धिक-जो भवसिद्धिक नहीं हैं और नोअभवसिद्धिक - जो अभवसिद्धिक भी नहीं हैं ऐसे जीव सिद्ध ही हो सकते हैं। वे भवसिद्धिक नहीं क्योंकि वे भव-संसार से रहित हैं। रूढि से जो सिद्धि गमन के अयोग्य हैं वे अभवसिद्धिक कहलाते हैं इसलिए वे अभवसिद्धिक भी नहीं क्योंकि वे सिद्धि पद को प्राप्त हो चुके हैं। ऐसा होने से नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक के विचार में दो ही पद हैं-जीवपद और सिद्धिपद। दोनों स्थानों पर एक वचन की अपेक्षा 'अनाहारक होता है' यह एक ही भंग और बहुवचन में भी 'सभी अनाहारक होते हैं' यह एक ही भंग होता है। यह दूसरा द्वार पूर्ण हुआ।

३. संज्ञी द्वार

सण्णी णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिए, णवरं एगिंदियविगलिंदिया णो पुच्छिज्जंति।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! संज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! संज्ञी जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् आनाहारक होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए किन्तु विशेषता यह है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

विवेचन - जो जीव मन वाले होते हैं वे संज्ञी कहलाते हैं। मन रहित जीव असंज्ञी होते हैं। संज्ञी जीव विग्रह गति में अनाहारक होते हैं और शेष समय में आहारक होते हैं।

शंका - विग्रह गति में मन नहीं होता फिर भी उन्हें अनाहारक कैसे कहा है?

समाधान - विग्रहगति को प्राप्त होने पर भी जो जीव संज्ञी के आयुष्य का वेदन कर रहा है वह मन के अभाव में भी संज्ञी कहलाता है। जैसे कि नरक के आयुष्य का वेदन करने से विग्रहगति प्राप्त नरकगामी जीव नैरयिक ही कहलाता है। अतः संज्ञी होने पर भी अनाहारक होने में कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार वैमानिकों तक समझना चाहिए किन्तु एकेन्द्रियों एवं विकलेन्द्रियों के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए क्योंकि वे मन रहित होने से संज्ञी नहीं हैं।

सण्णी णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! जीवाईओ तियभंगो जाव वेमाणिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से संज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! जीवादि के विषय में तीन भंग वैमानिक तक समझना चाहिये।

विवेचन - बहुवचन की अपेक्षा जीवपद और नैरयिक आदि पदों में प्रत्येक के तीन भंग इस प्रकार कहने चाहिये - १. सभी आहारक होते हैं २. सभी आहारक और एक अनाहारक होता है अथवा ३. बहुत से आहारक और बहुत से अनाहारक होते हैं।

सामान्य से जीवपद में प्रथम भंग होता है क्योंकि सर्वलोक की अपेक्षा संज्ञीपने जीव निरन्तर उत्पन्न होते हैं जब एक संज्ञी जीव विग्रहगति को प्राप्त होता है तब द्वितीय भंग और जब बहुत संज्ञी जीव विग्रह गति को प्राप्त होते हैं तब तीसरा भंग होता है। इस प्रकार नैरयिक आदि पदों के विषय में भी भंगों का विचार करना चाहिए।

असण्णी णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं णेरइए जाव वाणमंतरे। जोइसियवेमाणिया ण पुच्छिज्जंति।

असण्णी णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! आहारगा वि अणाहारगा वि, एगो भंगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वाणव्यंतर तक कहना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिक के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से असंज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से असंज्ञी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। इनमें एक ही भंग होता है।

विवेचन - असंज्ञी जीव विग्रह गति में अनाहारक होता है और शेष समय में आहारक होता है। इसलिए कहा है कि कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार वाणव्यंतर तक समझना चाहिए। नैरयिक, भवनपति और वाणव्यंतर जीव असंज्ञी से और संज्ञी से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी जीवों से ही आकर उत्पन्न होते हैं, असंज्ञी से आकर उत्पन्न नहीं होते इसलिए उनमें असंज्ञीपना नहीं होने के कारण सूत्रकार ने कहा है - **'जोइसिय वेमाणिया ण पुच्छिज्जंति'** - ज्योतिषी और वैमानिक के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिये।

बहुवचन की अपेक्षा सामान्य जीव पद में एक ही भंग होता है - 'आहारक भी होते हैं और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारक भी होते हैं' क्योंकि प्रतिसमय विग्रह गति को प्राप्त अनन्त एकेन्द्रिय जीव होने से और उनमें सदैव अनाहारकपना होने से वे सदैव बहुत होते हैं।

असण्णी णं भंते! णेरइया किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! आहारगा वा १, अणाहारगा वा २, अहवा आहारए य अणाहारए य ३, अहवा आहारए य अणाहारगा य ४, अहवा आहारगा य अणाहारए य ५, अहवा आहारगा य अणाहारगा य ६, एवं एए छब्भंगा, एवं जाव थणियकुमारा। एगिंदिएसु अभंगयं, बेइंदिय जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु तियभंगो, मणूसवाणमंतरेसु छब्भंगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत असंज्ञी नैरयिक आहारक होते हैं या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! १. वे सभी आहारक होते हैं २. सभी अनाहारक होते हैं अथवा ३. एक आहारक और एक अनाहारक ४. अथवा एक आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं ५. अथवा बहुत से आहारक और एक अनाहारक होता है तथा ६. बहुत से आहारक और बहुत से अनाहारक होते हैं इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक समझना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवों में भंग नहीं होता। बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक के जीवों में तीन भंग कहने चाहिये। मनुष्यों और वाणव्यंतर देवों में छह भंग कहने चाहिये।

विवेचन - असंज्ञी नैरयिकों में आहारक अनाहारक विषयक छह भंग इस प्रकार होते हैं- १. सभी आहारक होते हैं-यह प्रथम भंग, यह भंग जब अन्य असंज्ञी नैरयिक उत्पन्न होने पर भी विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते हैं और पूर्व में उत्पन्न हुए सभी नैरयिक आहारक हो जाते हैं तब घटित होता है २. सभी अनाहारक होते हैं यह दूसरा भंग, यह भंग जब पूर्वोत्पन्न असंज्ञीनैरयिक एक भी नहीं होता है और उत्पन्न होते हुए विग्रहगति को प्राप्त बहुत से नैरयिक होते हैं तब घटित होता है ३. एक आहारक होता है और एक अनाहारक होता है, प्राकृत भाषा में द्विवचन में भी बहुवचन होता है अतः बहुवचन की अपेक्षा यह भंग बराबर है। जब बहुत काल से उत्पन्न हुआ एक असंज्ञी नैरयिक होता है तत्काल उत्पन्न होता हुआ भी एक असंज्ञी नैरयिक विग्रह गति को प्राप्त होता हो तब यह भंग घटित हो सकता है ४. एक आहारक होता है और बहुत से अनाहारक होते हैं यह चौथा भंग, यह भंग बहुत काल से उत्पन्न हुआ एक असंज्ञी नैरयिक विद्यमान हो और तत्काल उत्पन्न होते दूसरे असंज्ञी नैरयिक विग्रहगति को प्राप्त हुए हों तब जानना ५. बहुत से आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है यह पांचवां भंग, लम्बे काल से उत्पन्न हुए बहुत से नैरयिक हों और तत्काल उत्पन्न होता हुआ एक असंज्ञी नैरयिक विग्रहगति को प्राप्त हुआ हो तब यह भंग जानना ६. बहुत से आहारक होते हैं और बहुत से अनाहारक होते हैं यह छठा भंग, यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भंग लम्बे काल से उत्पन्न हुए और तत्काल उत्पन्न होते हुए बहुत से असंज्ञी नैरयिक होते हैं तब समझना चाहिए।

ये छहों भंग ही असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक भी समझ लेना चाहिए। एकेन्द्रियों में भंग का अभाव है अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पति रूप एकेन्द्रियों में दूसरे अन्य भंग नहीं होते हैं एक ही भंग होता है वह इस प्रकार है- 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' उनमें आहारक बहुत होते हैं यह सुप्रसिद्ध हैं। अनाहारक भी प्रतिसमय पृथ्वी, अप्, तैजस् और वायु प्रत्येक में असंख्याता और वनस्पति में प्रतिसमय सदैव अनन्ता होते हैं और वे भी बहुत हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्रत्येक में तीन भंग इस प्रकार समझने चाहिये - १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. बहुत से आहारक होते हैं और बहुत से अनाहारक होते हैं।

जब बेइन्द्रिय आदि में उत्पन्न होता हुआ एक भी जीव विग्रह गति में नहीं होता है और पूर्वोत्पन्न सभी जीव आहारक होते हैं तब प्रथम भंग होता है २. जब बेइन्द्रिय आदि एक जीव विग्रहगति में हो और पूर्वोत्पन्न सभी आहारक होते हैं और उत्पन्न होता हुआ एक जीव अनाहारक होता है तब दूसरा भंग होता है। जब उत्पन्न होते हुए बेइन्द्रिय आदि जीव बहुत होते हैं तब तीसरा भंग होता है। मनुष्यों और वाणव्यंतर देवों में नैरयिकों की तरह छह भंग कह देने चाहिये।

णोसण्णी-णोअसण्णी णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए य, एवं मणूसे वि। सिद्धे अणाहारए, पुहुत्तेणं णोसण्णी-णोअसण्णी जीवा आहारगा वि अणाहारगा वि, मणूसेसु तियभंगो, सिद्धा अणाहारगा॥ दारं ३॥ ६५०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नो संज्ञी-नो असंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! नो संज्ञी-नो असंज्ञी कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए। सिद्ध जीव अनाहारक होता है। बहुवचन की अपेक्षा नो संज्ञी-नो असंज्ञी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। मनुष्यों में तीन भंग होते हैं और बहुत से सिद्ध अनाहारक होते हैं॥ तृतीय द्वार॥

विवेचन- प्रस्तुत सूत्र में नोसंज्ञी-नो असंज्ञी जीव में आहारकता-अनाहारकता का निरूपण किया गया है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है क्योंकि केवलज्ञानी समुद्घात अवस्था के अभाव में आहारक होता है और शेष अवस्था में अनाहारक होता है। यह अनाहारकपना समुद्घात की अवस्था में अयोगीपने की अवस्था में और सिद्ध अवस्था में होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुवचन की अपेक्षा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं क्योंकि बहुत से केवलज्ञानी सदैव समुद्घात आदि अवस्था रहित होते हैं अतः आहारक होते हैं और सिद्ध हमेशा बहुत होते हैं और वे अनाहारक ही होते हैं। मनुष्यों में तीन भंग इस प्रकार समझने चाहिये- १. जब कोई भी केवली समुद्घात अवस्था में नहीं होता तब सभी आहारक होते हैं यह प्रथम भंग २. जब एक केवली समुद्घात आदि अवस्था को प्राप्त होता है तब सभी आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है यह द्वितीय भंग ३. जब बहुत से केवली समुद्घात आदि अवस्था को प्राप्त होते हैं तब बहुत से आहारक भी होते हैं और बहुत से अनाहारक भी होते हैं, यह तीसरा भंग घटित होता है। यह तृतीय द्वार समाप्त॥

४. लेश्या द्वार

सलेसे णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिए।

सलेसा णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, एवं कण्हलेसा वि णीललेसा वि काउलेसा वि जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सलेश्य-लेश्या सहित जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! सलेश्य जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से सलेश्य जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर इनके तीन भंग होते हैं इसी प्रकार कृष्णलेशी नीललेशी और कापोतलेशी के विषय में भी जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सलेशी जीवों में आहारकता अनाहारकता के विषय में निरूपण किया गया है। समुच्चय जीव की तरह सलेशी जीव भी कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है क्योंकि विग्रह गति, केवली समुद्घात और शैलेशी अवस्था में जीव अनाहारक और शेष अवस्था में आहारक होता है। सिद्ध जीव लेश्या रहित होता है अतः उसके विषय में यह सूत्र नहीं कहना चाहिए।

बहुवचन की अपेक्षा समुच्चय जीव और एकेन्द्रियों में 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' यह एक ही भंग होता है क्योंकि दोनों प्रकार के जीव सदैव बहुत होते हैं। शेष नैरयिक आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पदों में तीन भंग इस प्रकार होते हैं - १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा सभी आहारक और एक अनाहारक होता है अथवा ३ बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय ये तीन भंग समझने चाहिए इसीलिए सूत्रकार ने '**जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो**' पाठ दिया है। कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाले जीवों में भी समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर ये तीन भंग समझने चाहिये।

तेउलेसाए पुढविआउवणस्सइकाइयाणं छब्भंगा, सेसाणं जीवाइओ तियभंगो जेसिं अत्थि तेउलेसा, पम्हलेसाए सुक्कलेसाए य जीवाइओ तियभंगो, अलेसा जीवा मणुस्सा सिद्धा य एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि णो आहारगा अणाहारगा ॥ दारं ४॥ ६५१ ॥

भावार्थ - तेजोलेश्या की अपेक्षा पृथ्वीकायिक, अपूकायिक और वनस्पतिकायिकों में छह भंग और शेष जीवों में जिनमें तेजोलेश्या पाई जाती है उनमें तीन भंग कहने चाहिये। पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या वाले जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। लेश्या रहित जीव, मनुष्य और सिद्ध एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा आहारक नहीं होते किन्तु अनाहारक ही होते हैं॥ चतुर्थद्वार॥

विवेचन - तेजोलेश्या वाले भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म और ईशान देवों की पृथ्वी, पानी और वनस्पति में उत्पत्ति होती है जैसा कि भगवती, प्रज्ञापना की चूर्णि में कहा है कि - **"जेण तेसु भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय सोहम्मीसाणया देवा उववज्जंति तेण तेउलेस्सा लब्भइ"** अतः तेजो लेश्या वाले पृथ्वी-अप्-वनस्पति जीवों में छह भंग इस प्रकार पाते हैं - १. सभी आहारक होते हैं अथवा २. सभी अनाहारक होते हैं अथवा ३. एक आहारक होता है और एक अनाहारक होता है ४. अथवा एक आहारक होता है और सभी अनाहारक होते हैं ५. अथवा सभी आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ६. अथवा बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं। नरक के जीवों, तेउकायिकों, वायुकायिकों और तीन विकलेन्द्रियों में तेजोलेश्या नहीं होती है अतः इनको छोड़ कर शेष तेजोलेश्या वाले जीवों में तीन-तीन भंग कहने चाहिये।

पद्म लेशी और शुक्ललेशी जीवों में एक वचन की अपेक्षा कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है यह एक भंग और बहुवचन की अपेक्षा तीन भंग इस प्रकार होते हैं- १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. अथवा बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं।

लेश्या रहित जीव, मनुष्य और सिद्ध एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक ही होते हैं, आहारक नहीं। लेश्या द्वार समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. दृष्टि द्वार

समदिट्ठी णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए सिय अणाहारए एवं जाव वेमाणिए णवरं एगिंदिया णो पुच्छिज्जंति।

सम्मद्दिट्ठी णं भंते! जीवा किं आहारगा अणाहारगा?

गोयमा! आहारगा वि, अणाहारगा वि।

बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया छब्भंगा, सिद्धा अणाहारगा, अवसेसाणं तियभंगो, मिच्छादिट्ठीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्यग्दृष्टि आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर-हे गौतम! सम्यग्दृष्टि जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक कहना चाहिए, किन्तु एकेन्द्रियों की पृच्छा नहीं करनी चाहिए। बहुवचन की अपेक्षा -

प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से सम्यग् दृष्टि जीव क्या आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम बहुत से सम्यग् दृष्टि जीव आहारक भी होते हैं और बहुत से सम्यग्दृष्टि जीव अनाहारक भी होते हैं।

सम्यग्दृष्टि बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों में छह भंग होते हैं। सिद्ध अनाहारक होते हैं। शेष सभी सम्यग्दृष्टि जीवों में तीन भंग होते हैं। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर शेष सभी मिथ्यादृष्टि जीवों में तीन भंग होते हैं।

विवेचन - यहाँ सम्यग्दृष्टि औपशमिक सम्यक्त्व, सास्वादन सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व की अपेक्षा समझना चाहिए। वेदक सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करते हुए सम्यक्त्व मोहनीय के चरम समयवर्ती पुद्गलों के अनुभव के समय होती है यानी क्षायिक सम्यक्त्व के एक समय पहले होती है।

सम्यग्दृष्टि समुच्चय जीव आदि पदों में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् एक आहारक और एक अनाहारक' यह एक भंग और बहुवचन की अपेक्षा 'बहुत आहारक और बहुत अनाहारक' यह एक भंग होता है। इनमें एकेन्द्रियों का कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि उन में सम्यग्दृष्टि का अभाव होता है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय सम्यग्दृष्टि जीवों में पूर्व में कहे अनुसार छह भंग होते हैं। बेइन्द्रिय आदि जीवों में अपर्याप्तावस्था में सास्वादन सम्यक्त्व पाई जाती है इस कारण वे सम्यग्दृष्टि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। सिद्धों में क्षायिक सम्यक्त्व होती है और वे अनाहारक होते हैं। शेष नैरयिक, भवनपति, तिर्यंच पंचेन्द्रिय मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में तीन-तीन भंग इस प्रकार होते हैं -

१. कदाचित् सभी आहारक होते हैं २. कदाचित् बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. कदाचित् बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। सभी मिथ्यादृष्टि जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग पाए जाते हैं। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय में बहुत आहारक और बहुत अनाहारक रूप एक ही भंग पाता है। यहां सिद्धों का कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि उनमें मिथ्यादृष्टि का अभाव है।

सम्मामिच्छादिट्ठी णं भंते!० किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! आहारए, णो अणाहारए, एवं एगिंदियविगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिए, एवं पुहुत्तेण वि ॥ दारं ५ ॥ ६५२ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक होता है, अनाहारक नहीं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़ कर यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए। बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार समझना चाहिये॥ पंचम द्वार॥

विवेचन - सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक होता है अनाहारक नहीं, क्योंकि संसारी जीवों में अनाहारकपना विग्रह गति में होता है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि विग्रह गति में नहीं होती क्योंकि उस अवस्था में कोई भी जीव काल नहीं करता। कहा भी है - **'सम्मामिच्छो ण कुणइ कालं'** - सम्यग् मिथ्यादृष्टि काल नहीं करता। इसलिए सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव को विग्रह गति के अभाव के कारण अनाहारकपना नहीं है। इसी प्रकार क्रम से चौबीस दण्डकों के जीवों के विषय में कहना किन्तु एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों का कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि उनमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि संभव नहीं है। दृष्टि द्वार समाप्त॥

६. संयत द्वार

संजए णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं मणूसे वि, पुहुत्तेणं तियभंगो। असंजए पुच्छा? सिय आहारए, सिय अणाहारए, पुहुत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संयत जीव आहारक होता है या अनाहारक?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! संयत जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए। बहुवचन की अपेक्षा तीन भंग समझने चाहिये।

असंयत के विषय में पृच्छा। हे गौतम! कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है बहुवचन में जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भंग समझने चाहिये।

विवेचन - संयत समुच्चय जीव और मनुष्य ही हो सकता है। एक वचन की अपेक्षा संयत जीव और मनुष्य केवली समुद्घात की अवस्था में या अयोगीपन की अवस्था में अनाहारक होता है शेष समय में आहारक होता है।

बहुवचन की अपेक्षा जीवपद और मनुष्य पद में प्रत्येक में तीन भंग समझने चाहिये जो इस प्रकार हैं - १. सभी आहारक होते हैं - यह भंग जब कोई भी केवली समुद्घात और अयोगी अवस्था को प्राप्त नहीं हुए होते हैं तब समझना २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है- यह भंग जब एक जीव केवली समुद्घात करता है या शैलेशी-अयोगीपने को प्राप्त होता है तब होता है ३. अथवा आहारक भी बहुत होते हैं और अनाहारक भी बहुत होते हैं यह भंग जब बहुत जीव केवली समुद्घात करते हैं अथवा शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं तब घटित हो सकता है।

असंयत सूत्र में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' इस प्रकार कहना चाहिये। बहुवचन की अपेक्षा जीव पद और पृथ्वीकायिक आदि में आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' यह एक भंग कहना। शेष नैरयिक आदि सभी स्थानों में तीन-तीन भंग समझ लेने चाहिए।

संजयासंजए णं जीवे पंचिंदियतिरिक्खजोणिए मणूसे य एए एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि आहारगा णो अणाहारगा, णोसंजएणोअसंजए-णोसंजयासंजए जीवे सिद्धे य एए एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि णो आहारगा अणाहारगा॥ दारं ६ ॥ ६५३ ॥

भावार्थ - संयतासंयत जीव, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य, ये एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। नोसंयत नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्ध ये एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा आहारक नहीं होते किन्तु अनाहारक होते है। छठा द्वार॥

विवचेन - जो देशविरत हो उसे संयतासंयत कहते हैं। संयतासंयत, मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव ही होते हैं शेष जीवों में स्वभाव से ही देशविरति परिणाम नहीं होता है अतः संयतासंयत सूत्र में तीन पद होते हैं - सामान्य जीव पद, तिर्यंच पंचेन्द्रिय पद और मनुष्य पद। तीनों पदों में एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा आहारक ही होते हैं, अनाहारक नहीं क्योंकि दूसरे भव में जाते हुए और केवली समुद्घात आदि अवस्था में देशविरति परिणाम नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो न तो संयत है, न असंयत है और न संयतासंयत है वह नो-संयत नो-असंयत नो-संयतासंयत कहलाता है ऐसे जीव सिद्ध ही होते हैं। नो-संयत नो-असंयत नो-संयतासंयत और सिद्ध एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक ही होते हैं आहारक नहीं, क्योंकि सिद्ध अशरीरी होने के कारण आहारक नहीं होते हैं। यह छठा संयत द्वार समाप्त हुआ।

७. कषाय द्वार

सकसाई णं भंते! जीवे किं आहारए अणाहारए?

गोयमा! सिय आहारए, सिय अणाहारए, एवं जाव वेमाणिया, पुहुत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, कोहकसाईसु जीवाईसु एवं चेव, णवरं देवेसु छब्भंगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सकषायी जीव आहारक होता है या अनाहारक?

उत्तर - हे गौतम! सकषायी जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना चाहिए। बहुवचन में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग पाते हैं। क्रोध कषायी आदि जीवों में भी इसी प्रकार समझना किन्तु देवों के १३ ही दण्डकों में छह भंग होते हैं।

विवेचन - सकषायी जीव कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। बहुवचन में जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भंग समझने चाहिये। जीव पद में और पृथ्वी आदि एकेन्द्रियों में 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' यह एक भंग कहना चाहिये क्योंकि इन पदों में आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के सकषायी जीव बहुत होते हैं। शेष स्थानों में तीन भंग समझने चाहिये। क्रोध कषायी के विषय में सामान्य कषायी की तरह समझना चाहिए क्योंकि उसमें जीव पद और पृथ्वी आदि पदों के भंग का अभाव है। शेष स्थानों में तीन भंग कहना किन्तु इतनी विशेषता है कि देवों में छह भंग कहने चाहिये क्योंकि देव स्वभाव से ही बहुत लोभ वाले होते हैं किन्तु बहुत क्रोध आदि वाले नहीं होते किन्तु क्रोध कषायी भी एक आदि भी होते हैं अतः छह भंग इस प्रकार होते हैं - १. कदाचित् क्रोध कषायी सभी आहारक होते हैं क्योंकि एक भी क्रोध कषायी विग्रह गति को प्राप्त हुआ नहीं होता २. कदाचित् सभी अनाहारक होते हैं जब कोई भी क्रोध कषायी आहारक नहीं होता। यहाँ क्रोध का उदय मान आदि के उदय से अलग ही विवक्षित है किन्तु मान आदि के उदय सहित विवक्षित नहीं इसलिए क्रोध कषायी आहारक देव का अभाव संभव है ३. कदाचित् एक आहारक होता है और एक अनाहारक होता है ४ कदाचित् एक आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं ५. कदाचित् बहुत आहारक और एक अनाहारक होता है और ६. कदाचित् बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणकसाईसु मायाकसाईसु य देवणेरइएसु छब्भंगा, अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, लोभकसाईसु णेरइएसु छब्भंगा अवसेसेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो अकसाई जहा णोसण्णी-णोअसण्णी॥ दारं ७॥ ६५४॥

भावार्थ - मान कषाय वाले और माया कषाय वाले देवों और नैरयिकों में छह भंग पाये जाते हैं। जीव और एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। लोभ कषाय वाले नैरयिकों में छह भंग होते हैं। जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। अकषायी का कथन नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के समान करना चाहिए। द्वार ७॥

विवेचन - मान कषायी और माया कषायी में एक वचन की अपेक्षा पूर्ववत् एक-एक भंग होता है। बहुवचन की अपेक्षा मान कषायी और माया कषायी देवों और नैरयिकों में ६-६ भंग समझने चाहिये। नैरयिक भवस्वभाव से ही बहु क्रोध वाले और देव बहु लोभ वाले होते हैं इसलिए देवों और नैरयिकों में मान कषाय और माया कषाय स्वल्प होते हैं अतः पूर्व में कहे अनुसार छह भंग होते हैं। जीव पद में और पृथ्वी आदि पदों में प्रत्येक की अपेक्षा अन्य भंग नहीं होते क्योंकि आहारक और अनाहारक मान कषायी और माया कषायी उन-उन स्थानों में सदैव बहुत होते हैं शेष स्थानों में तीन भंग समझने चाहिये।

लोभ कषाय सूत्र में भी एकवचन में पूर्ववत् ही कहना किन्तु बहुवचन की अपेक्षा लोभकषायी नैरयिकों में छह भंग होते हैं क्योंकि उनमें लोभ कषाय अल्प है शेष जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय के स्थानों में तीन तीन भंग जानना, देवों में भी तीन भंग समझना क्योंकि उनमें लोभ की अधिकता होने से छह भंग संभव नहीं है। जीव और एकेन्द्रियों में पूर्व की तरह एक ही भंग 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' होता है।

अकषायी नो-संज्ञी नो-असंज्ञी की तरह कहना तात्पर्य यह है कि अकषायी मनुष्य और सिद्ध होते हैं। मनुष्यों में उपशांत कषाय आदि वाले ही अकषायी होते हैं शेष तो सकषायी ही होते हैं। इसलिए इनके भी तीन पद होते हैं - सामान्य से जीव पद, मनुष्य पद और सिद्धपद। उनमें सामान्य जीवपद और मनुष्य पद में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' यह एक भंग कहना। सिद्ध पद में अनाहारक ही होता है। बहुवचन की अपेक्षा जीवपद में आहारक भी होते हैं अनाहारक भी होते हैं क्योंकि केवलज्ञानी आहारक और सिद्ध अनाहारक सदैव बहुत होते हैं। मनुष्य पद में तीन भंग इस प्रकार कहने चाहिये - १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. अथवा बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। कषाय द्वार समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. ज्ञान द्वार

णाणी जहा सम्मद्दिट्ठी। आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य बेइंदियतेइंदिय-चउरिंदिएसु छब्भंगा अवसेसेसु जीवाइओ तियभंगो जेसिं अत्थि।

भावार्थ - ज्ञानी सम्यग्दृष्टि के समान समझना चाहिये। आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों में छह भंग पाये जाते हैं। शेष जीवों के विषय में जिन में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होता है उनमें तीन भंग होते हैं।

विवेचन - सम्यग् ज्ञानी की वक्तव्यता सम्यग्दृष्टि के समान समझनी चाहिए। एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होने के कारण अज्ञानी होते हैं। अतः एकेन्द्रिय के पांच दंडकों को छोड़कर शेष १९ दंडकों में एक वचन की अपेक्षा ज्ञानी कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। बहुवचन की अपेक्षा सज्ञानी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं अतः उनमें तीन भंग पाये जाते हैं किन्तु तीन विकलेन्द्रिय जीवों में छह भंग होते हैं। सिद्ध जीव अनाहारक होते हैं।

एक वचन की अपेक्षा मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी में एक भंग पूर्ववत् समझना चाहिये, बहुवचन की अपेक्षा तीन विकलेन्द्रियों में छह भंग होते हैं। एकेन्द्रियों में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का अभाव होता है अतः एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवों में तीन-तीन भंग कहने चाहिये - १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. अथवा बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं।

ओहिणाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आहारगा, णो अणाहारगा, अवसेसेसु जीवाइओ तियभंगो जेसिं अत्थि ओहिणाणं, मणपज्जवणाणी जीवा मणूसा य एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि आहारगा, णो अणाहारगा। केवलणाणी जहा णोसण्णीणोअसण्णी ॥ दारं ८-१ ॥

भावार्थ - अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। शेष जीवों में जिनमें अवधिज्ञान पाया जाता है उनमें तीन भंग होते हैं। मनःपर्यवज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा से आहारक होते हैं अनाहारक नहीं। केवलज्ञानी की वक्तव्यता नोसंज्ञी नो असंज्ञी के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - अवधिज्ञानी में एक वचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझ लेना चाहिये। बहुवचन की अपेक्षा अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच आहारक ही होते हैं किन्तु अनाहारक नहीं होते क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को अनाहारकपना विग्रह गति में होता है और उस समय उनमें अवधिज्ञान नहीं होता। पंचेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंचों को गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है किन्तु विग्रहगति में उन गुणों का अभाव होता है इसलिए विग्रहगति में अवधिज्ञान नहीं होता है और अप्रतिपतित अवधिज्ञान सहित देव या मनुष्य तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होते इसलिए अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में अनाहारकपना असंभव है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को अवधिज्ञान नहीं होता अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को छोड़कर शेष अवधिज्ञानी जीवों में तीन-तीन भंग कहने चाहिये।

मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को ही होता है अतः समुच्चयजीव और मनुष्य में एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा मनःपर्यवज्ञानी आहारक ही होते हैं किन्तु अनाहारक नहीं होते क्योंकि विग्रहगति आदि अवस्था में मनःपर्यवज्ञान संभव नहीं है।

केवलज्ञानी का कथन नोसंज्ञी नोअसंज्ञी की तरह कहना। तात्पर्य यह है कि केवलज्ञान के विचार में तीन पद होते हैं - समुच्चय (सामान्य) जीव पद, मनुष्य पद और सिद्ध पद। उनमें सामान्य जीव पद और मनुष्य पद में एक वचन की अपेक्षा कदाचित् आहारक होता है कदाचित् अनाहारक होता है कहना सिद्ध पद में अनाहारक होता है। बहुवचन की अपेक्षा सामान्य जीव पद में आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं जबकि मनुष्य पद में पूर्वानुसार तीन भंग होते हैं। सिद्ध पद में सभी अनाहारक ही होते हैं।

अण्णाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। विभंगणाणी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य आहारगा, णो अणाहारगा, अवसेसेसु जीवाइओ तियभंगो॥ दारं ८-२॥ ६५५॥

भावार्थ - अज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी जीवों में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। विभंगज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं। शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। द्वार ८॥

विवेचन - समुच्चय अज्ञानी, मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी में एकवचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझना। बहुवचन की अपेक्षा समुच्चय जीव और पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों में 'बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं' - इस प्रकार कहना शेष स्थानों में तीन भंग होते हैं। विभंगज्ञानी में एकवचन की अपेक्षा उसी प्रकार कहना, बहुवचन में विभंगज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य आहारक ही होते हैं किन्तु अनाहारक नहीं होते क्योंकि विभंगज्ञान सहित जीव की विग्रहगति से तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पत्ति असंभव है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के सिवाय शेष स्थानों में तीन भंग कहने चाहिए। ज्ञान द्वार समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. योग द्वार

सजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो। मणजोगी वइजोगी जहा सम्मामिच्छद्दिट्ठी, णवरं वइजोगो वइजोगी विगलिंदियाण वि। कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अजोगी जीवमणूससिद्धा अणाहारगा॥ दारं ९॥

भावार्थ - सयोगियों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। मन योगी और वचन योगी के विषय में सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वचन योग विकलेन्द्रियों में भी कहना चाहिए। काययोगियों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग पाये जाते हैं। अयोगी, समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध होते हैं और वे अनाहारक ही होते हैं॥ नववां द्वार॥

विवेचन - योगद्वार में सामान्य से सयोगी सूत्र एक वचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझना, बहुवचन की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर शेष स्थानों में तीन भंग होते हैं। जीवपद और पृथ्वी आदि पदों में 'आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं' - यह भंग जानना। क्योंकि उन स्थानों में आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीव बहुत होते हैं। मनयोगी और वचनयोगी की वक्तव्यता सम्यग्- मिथ्यादृष्टि की तरह कहनी चाहिये अर्थात् एक वचन और बहुवचन में आहारक ही कहना किन्तु अनाहारक नहीं कहना किन्तु वचन योग विकलेन्द्रियों को भी होता है अतः उसका कथन करना चाहिए। काय योगी सूत्र भी एक वचन और बहुवचन में सयोगी सूत्र की तरह समझना चाहिए।

अयोगी, मनुष्य और सिद्ध होते हैं अतः यहाँ तीन पद हैं - जीव पद, मनुष्य पद और सिद्ध। तीनों स्थानों में एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक की होते हैं। योगद्वार समाप्त॥

१०. उपयोग द्वार

सागाराणागारोवउत्तेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, सिद्धा अणाहारगा॥ दारं १०॥

भावार्थ - समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले जीवों में तीन भंग कहने चाहिये। सिद्ध जीव अनाहारक ही होते हैं॥ दसवां द्वार॥

विवेचन - साकार-ज्ञानोपयोग सूत्र में और अनाकार-दर्शनोपयोग सूत्र में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' - इस प्रकार कहना। सिद्ध जीव अनाहारक ही होता है। बहुवचन की अपेक्षा जीवपद में और पृथ्वी आदि पदों में 'बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं' यह भंग समझना चाहिये। शेष स्थानों में तीन भंग होते हैं। सिद्ध अनाहारक ही होते हैं॥ उपयोग द्वार समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११. वेद द्वार

सवेयए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, इत्थिवेय-पुरिसवेयएसु जीवाइओ तियभंगो, णपुंसगवेयए य जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, अवेयए जहा केवलणाणी ॥ दारं ११ ॥ ६५६ ॥

भावार्थ - सवेदी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग होते हैं। स्त्रीवेद और पुरुषवेद वाले जीवों में तीन भंग होते हैं और नपुंसक वेदी में जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भंग होते हैं। अवेदी जीवों का कथन केवलज्ञानी के समान समझना चाहिये॥ ग्यारहवां द्वार॥

विवेचन - सामान्य वेद सहित सूत्र में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है'-यह भंग समझना। बहुवचन की अपेक्षा जीवपद और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष स्थानों में तीन भंग तथा जीवपद और एकेन्द्रियों में 'बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं' इस भंग के अलावा शेष भंगों का अभाव समझना चाहिए क्योंकि वहाँ बहुत आहारक भी होते हैं और बहुत अनाहारक भी होते हैं। स्त्रीवेद सूत्र और पुरुषवेद सूत्र में एकवचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझना किन्तु यहाँ नैरयिक, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय नहीं कहना चाहिए। क्योंकि वे नपुंसक होते हैं। बहुवचन में जीवादि पदों में प्रत्येक में तीन भंग कहना चाहिए। नपुंसक वेद में भी एक वचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझना परन्तु यहाँ भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक नहीं कहना क्योंकि वे नपुंसक वेद रहित होते हैं। बहुवचन में जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष स्थानों में तीन भंग तथा जीवपद और पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय पदों में पूर्व कहे अनुसार भंगों का अभाव होता है। वेद रहित (अवेदी) के लिए जैसा केवलज्ञानी के संबंध में कहा है वैसा ही एकवचन और बहुवचन में कहना चाहिये। जीव पद और मनुष्य पद के विषय में एकवचन में 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' और बहुवचन की अपेक्षा जीव पद में 'बहुत आहारक भी होते हैं और बहुत अनाहारक भी होते हैं।' मनुष्यों में तीन भंग समझना चाहिये। सिद्ध अवस्था में सभी अनाहारक ही होते हैं ऐसा कहना चाहिए। वेद द्वार समाप्त॥

१२. शरीर द्वार

ससरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, ओरालियसरीरीजीवमणूसेसु तियभंगो, अवसेसा आहारगा, णो अणाहारगा जेसिं अत्थि ओरालियसरीरं, वेउव्विय-सरीरी आहारगसरीरी य आहारगा, णो अणाहारगा जेसिं अत्थि, तेयकम्मग-सरीरी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, असरीरी जीवा सिद्धा य णो आहारगा, अणाहारगा ॥ दारं १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सशरीरी जीवों में समुच्चयजीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। औदारिक शरीरी जीव और मनुष्यों में तीन भंग पाये जाते हैं शेष जीवों में जिनके औदारिक शरीर होता है वे आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। वैक्रिय शरीरी और आहारक शरीरी आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं, यह कथन उन्हीं के लिए कहना जिनके वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर होता है। तैजस शरीरी और कार्मण शरीरी जीवों में समुच्चय जीव और एकेन्द्रियों को छोड़ कर तीन भंग कहने चाहिये। अशरीरी जीव और सिद्ध आहारक नहीं होते, अनाहारक होते हैं। बारहवां द्वार॥

विवेचन - सशरीर सूत्र में एकवचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है।' बहुवचन की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष स्थानों में तीन भंग तथा जीवपद और पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय पदों में पूर्व में कहे अनुसार भंगों का अभाव समझना चाहिए।

औदारिक शरीर सूत्र में एक वचन की अपेक्षा पूर्ववत् समझना परन्तु यहाँ नैरयिक, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक का कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि उनमें औदारिक शरीर नहीं होता। बहुवचन की अपेक्षा जीव और मनुष्य पदों में तीन-तीन भंग इस प्रकार समझने चाहिये - १. 'सभी आहारक होते हैं' - यह भंग जब कोई भी केवली समुद्घात को या अयोगी अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ होता है तब समझना २. अथवा 'सभी आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है' - यह भंग जब एक जीव केवली समुद्घात या अयोगी अवस्था को प्राप्त होता है तब होता है ३. अथवा 'बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं' - यह भंग जब बहुत जीव केवली समुद्घात को प्राप्त या अयोगी होते हैं तब होता है। शेष एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं क्योंकि विग्रह गति से उत्तीर्ण हुए अर्थात् विग्रह गति के बाद वाले जीवों को ही औदारिक शरीर संभव है।

वैक्रिय शरीरी और आहारक शरीरी सभी एक वचन और बहुवचन में आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं होते परन्तु यह कथन जिनको वैक्रिय और आहारक शरीर संभव है उनके लिए ही कहना अन्य जीवों के लिए नहीं। क्योंकि वैक्रिय शरीर नैरयिक, भवनपति, वायुकायिक, तिर्यंचपंचेन्द्रिय मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों को होता है और आहारक शरीर मनुष्यों को ही होता है।

तैजस कार्मण शरीरी सूत्र में एक वचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' यह भंग कहना। बहुवचन की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय शेष स्थानों में तीन भंग तथा जीव पद और एकेन्द्रियों में अन्य भंगों का अभाव समझना। अशरीरी-शरीर रहित सिद्ध होते हैं उनमें दो पद हैं- जीव और सिद्ध। दोनों पदों में एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक ही होते हैं। शरीर द्वार समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१३. पर्याप्ति द्वार

आहारपज्जत्तीए पज्जत्तए सरीरपज्जत्तीए पज्जत्तए इंदियपज्जत्तीए पज्जत्तए आणापाणुपज्जत्तीए पज्जत्तए भासामणपज्जत्तीए पज्जत्तए एयासु पंचसु वि पज्जत्तीसु जीवेसु मणूसेसु य तियभंगो, अवसेसा आहारगा, णो अणाहारगा, भासामणपज्जत्ती पंचिंदियाणं, अवसेसाणं णत्थि।

भावार्थ - आहार पर्याप्ति से पर्याप्त, शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त, इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त और भाषामन पर्याप्ति से पर्याप्त, इन पांचों पर्याप्तियों से पर्याप्त जीवों और मनुष्यों में तीन-तीन भंग होते हैं शेष जीव आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं। भाषामन पर्याप्ति पंचेन्द्रिय जीवों में ही पाई जाती है अन्य जीवों में नहीं।

विवेचन - पर्याप्तियाँ छह कही गई हैं किन्तु प्रस्तुत सूत्र में पांच पर्याप्तियां ही कही है क्योंकि यहाँ भाषा और मन पर्याप्ति का एक ही पर्याप्ति में समावेश कर दिया गया है। पांचों पर्याप्तियों से पर्याप्त जीवों में एक वचन की अपेक्षा जीवपद और मनुष्य पद में 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है।' शेष स्थानों में आहारक होता है। बहुवचन की अपेक्षा जीवपद और मनुष्य पद के विषय में तीन भंग कहने चाहिए और शेष सभी आहारक कहने चाहिये परन्तु भाषामन पर्याप्ति पंचेन्द्रिय जीवों में ही होती है अतः उनके सूत्र में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों का कथन नहीं करना चाहिये।

आहारपज्जत्तीअपज्जत्तए णो आहारए, अणाहारए एगत्तेण वि पुहुत्तेण वि, सरीरपज्जत्तीअपज्जत्तए सिय आहारए सिय अणाहारए, उवरिल्लियासु चउसु अपज्जत्तीसु णेरइयदेवमणूसेसु छब्भंगा, अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो, भासामण-अपज्जत्तीए जीवेसु पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु य तियभंगो, णेरइयदेवमणुएसु छब्भंगा।

भावार्थ - आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा आहारक नहीं होते हैं अनाहारक होते हैं, शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव कदाचित् आहारक होता है कदाचित् अनाहारक होता है। आगे की चार अपर्याप्तियों वाले नैरयिकों, देवों और मनुष्यों में छह भंग होते हैं शेष में समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़ कर तीन भंग होते हैं। भाषा मन पर्याप्ति से अपर्याप्त समुच्चय जीवों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों में तीन भंग होते हैं। नैरयिकों देवों और मनुष्यों में छह भंग पाये जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक होता है, आहारक नहीं क्योंकि आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त विग्रह गति में ही होता है, उत्पत्ति स्थान को प्राप्त हुआ जीव प्रथम समय में ही आहार पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाता है, यदि ऐसा नहीं हो तो उस समय आहारकपना घटित नहीं होता। शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्त एकवचन की अपेक्षा 'कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है' उनमें विग्रह गति में अनाहारक और उत्पत्ति क्षेत्र को प्राप्त हुआ शरीर पर्याप्ति की समाप्ति तक आहारक होता है। इसी प्रकार इन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्त, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त और भाषा मनःपर्याप्ति से अपर्याप्त के लिए एक वचन की अपेक्षा कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है कहना, बहुवचन की अपेक्षा ऊपर की शरीर अपर्याप्ति प्रमुख चार अपर्याप्तियों का विचार करते हुए नैरयिक, देव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहिये, जो इस प्रकार हैं - १. कदाचित् सभी अनाहारक ही होते हैं २. कदाचित् सभी आहारक ही होते हैं ३. कदाचित् एक आहारक होता है और एक अनाहारक होता है ४. कदाचित् एक आहारक होता है और बहुत अनाहारक होते हैं ५. कदाचित् बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है और ६. कदाचित् बहुत आहारक होते हैं और बहुत अनाहारक होते हैं। शेष (नैरयिक, देव और मनुष्य के सिवाय) जीवों में जीवपद और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग इस प्रकार पाये जाते हैं - १. सभी आहारक होते हैं २. अथवा बहुत आहारक होते हैं और एक अनाहारक होता है ३. अथवा बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। जीवपद और एकेन्द्रिय पदों में शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्तइन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्त और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त में भंगों का अभाव है क्योंकि वे आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं तथा आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीव सदैव बहुत होते हैं। भाषामनःपर्याप्ति से अपर्याप्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय नहीं होते क्योंकि उनके यह पर्याप्ति असंभव है। भाषामनःपर्याप्ति पंचेन्द्रिय को ही होती है अतः बहुवचन की अपेक्षा भाषामनःपर्याप्ति से अपर्याप्त जीवों और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में तीन भंग कहने चाहिये। नैरयिकों देवों और मनुष्यों में पूर्ववत् छह भंग पाये जाते हैं। तीन विकलेन्द्रियों में चार पर्याप्तियाँ ही गिनी गई है। क्योंकि यहाँ पर भाषा और मनः पर्याप्ति को साथ ही गिना है। अर्थात् जिन दंडकों में मनः पर्याप्ति होती हैं उन दंडकों में ही भाषा पर्याप्ति मानी गई है। विकलेन्द्रियों में मनःपर्याप्ति नहीं होने से उनमें भाषा पर्याप्ति भी नहीं मानी है।

इस उद्देशक में भाषा मनः पर्याप्ति को एक ही माना है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दण्डक में सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी सम्मिलित है। उनके भाषा पर्याप्ति होने से उनका भी भाषा मनः पर्याप्ति में ग्रहण कर लिया गया है। सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त शाश्वत हैं। अतः तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आहार पर्याप्ति के अपर्याप्त को छोड़कर शेष सभी पर्याप्तियों में तीन भंग बताये गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरक देवों के छहों अपर्याप्तियों में छह भंग बताने से वे अशाश्वत हैं। परन्तु तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रियों में तीन भंग बताने से इनके अपर्याप्त का अन्तर्मुहूर्त्त विरहकाल के अन्तर्मुहूर्त्त से बड़ा समझना चाहिये।

सव्वपएसु एगत्तपुहत्तेणं जीवाइया दंडगा पुच्छाए भाणियव्वा जस्स जं अत्थि तस्स तं पुच्छिज्जइ, जस्स जं णत्थि तस्स तं ण पुच्छिज्जइ जाव भासामणपज्जत्ती अपज्जत्तएसु णेरइयदेवमणुएसु छब्भंगा, सेसेसु तियभंगो॥ ६५७॥ दारं १३॥

॥ बीओ उद्देसओ समत्तो॥

॥ पण्णवणाए भगवईए अट्ठावीसइमं आहारपयं समत्तं॥

भावार्थ - सभी पदों में एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा से जीवादि दण्डकों के अनुसार पृच्छा करनी चाहिये। जिस दंडक में जो पद संभव हो उसी की पृच्छा करनी चाहिये, जो पद जिसमें संभव नहीं हो उसकी पृच्छा नहीं करनी चाहिये। यावत् भाषा मनःपर्याप्ति से अपर्याप्त नैरयिकों, देवों और मनुष्यों में छह भंग और शेष स्थानों में तीन भंग समझने चाहिये॥ तेरहवां द्वार॥

विवेचन - यहाँ भव्य पद में लगा कर प्रायः एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा जीवादि दंडक के क्रम से पृथक्-पृथक् सूत्रों का कथन नहीं किया गया है। अतः मंद बुद्धि वालों को भ्रान्ति न हो जाय अतः उस संबंध में अतिदेश-सादृश्य प्रतिपादक सूत्र कहा है - '**सव्वपएसु एगत्त**' इत्यादि अर्थात् सभी पदों में एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा से प्रश्न और उपलक्षण से उत्तर जीवादि दण्डकों में कहना चाहिए। जिस दंडक में जो पद है उसी का प्रश्न करना। जो नहीं है उसके विषय में पृच्छा नहीं करनी चाहिये। कहां तक ऐसा करना? इसके समाधान में कहा है कि चरम दंडक के कथन तक कह देना चाहिये, इसीलिए सूत्रकार ने कहा है - '**जाव भासामणपज्जत्तीए अपज्जत्तएसु**' यावत् भाषामन पर्याप्ति से अपर्याप्तकों तक समझना चाहिये। द्वितीय उद्देशक समाप्त॥

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र के अट्ठाइसवें आहार पद का द्वितीय उद्देशक समाप्त॥

॥ अट्ठाईसवां आहार पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगूणतीसइमं उवओगपयं

उनतीसवां उपयोग पद

प्रज्ञापना सूत्र के अट्ठाइसवें पद में गति के परिणाम विशेष रूप आहार परिणाम का कथन किया गया है। इस उनतीसवें पद में ज्ञान के परिणाम विशेष रूप उपयोग का प्रतिपादन किया जाता है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

कइविहे णं भंते! उवओगे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते। तंजहा - सागारोवओगे य अणागारोवओगे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उपयोग दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

विवेचन - **'उपयुज्यतेऽनेन'** - जिसके द्वारा जीव वस्तु का परिज्ञान (जानकारी) करने के लिये प्रवृत्ति करता है, उसे उपयोग कहते हैं। अर्थात् जीव का बोध रूप तात्त्विक व्यापार उपयोग कहलाता है। उपयोग के दो भेद हैं - १. साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। प्रतिनियत अर्थ को ग्रहण करने का परिणाम आकार कहलाता है और जो आकार सहित हो वह साकार है। वस्तु का विशेषग्राही बोध रूप व्यापार साकार उपयोग कहलाता है। तात्पर्य यह है कि सचेतन या अचेतन वस्तु में उपयोग करती हुई आत्मा जब पर्याय सहित वस्तु को जानती है तब वह उपयोग साकार उपयोग कहलाता है। जिस उपयोग में पूर्वोक्त रूप आकार नहीं हो उसे अनाकार उपयोग कहते हैं। वस्तु का सामान्यग्राही बोध रूप व्यापार अनाकार उपयोग कहलाता है।

काल की अपेक्षा छद्मस्थों का साकार उपयोग अंतर्मुहूर्त्त तक और केवलियों का साकारोपयोग एक समय का होता है। अनाकार उपयोग का काल भी छद्मस्थों के लिए अंतर्मुहूर्त्त का कहा गया है किन्तु अनाकार उपयोग के काल से साकार उपयोग का काल संख्यातगुणा समझना चाहिये क्योंकि विशेष ग्राही होने से उसमें अधिक समय लगता है।

सागारोवओगे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - आभिणिबोहियणाणसागारोवओगे, सुयणाणसागारोवओगे, ओहिणाणसागारोवओगे, मणपज्जवणाणसागारोवओगे, केवल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणसागारोवओगे। मइअण्णाणसागारोवओगे, सुयअण्णाणसागारोवओगे, विभंगणाणसागारोवओगे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! साकार उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! साकारोपयोग आठ प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. आभिनिबोधिक ज्ञान साकारोपयोग २. श्रुतज्ञान साकारोपयोग ३. अवधिज्ञान साकारोपयोग ४. मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग ५. केवलज्ञान साकारोपयोग ६. मति अज्ञान साकारोपयोग ७. श्रुत अज्ञान साकारोपयोग और ८. विभंग ज्ञान साकारोपयोग।

अणागारोवओगे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - चक्खुदंसणअणागारोवओगे, अचक्खुदंसण-अणागारोवओगे, ओहिदंसणअणागारोवओगे, केवलदंसणअणागारोवओगे य। एवं जीवाणं पि॥ ६५८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनाकार उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अनाकारोपयोग चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग, अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग, अवधिदर्शन अनाकारोपयोग और केवलदर्शन अनाकारोपयोग। इसी प्रकार समुच्चय जीवों के विषय में भी कहना चाहिये।

णेरइयाणं भंते! कइविहे उवओगे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते। तंजहा-सागारोवओगे य अणागारोवओगे य।

णेरइयाणं भंते! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - मइणाणसागारोवओगे, सुयणाणसागारोवओगे, ओहिणाणसागारोवओगे, मइअण्णाणसागारोवओगे, सुयअण्णाणसागारोवओगे, विभंगणाणसागारोवओगे।

णेरइयाणं भंते! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - चक्खुदंसणअणागारोवओगे, अचक्खुदंसण-अणागारोवओगे, ओहिदंसणअणागारोवओगे, एवं जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का उपयोग दो प्रकार का कहा गया है। यथा - साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का साकारोपयोग छह प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. मतिज्ञान साकारोपयोग २. श्रुतज्ञान साकारोपयोग ३. अवधिज्ञान साकारोपयोग ४. मति अज्ञान साकारोपयोग ५. श्रुत अज्ञान साकारोपयोग ६. विभंगज्ञान साकारोपयोग।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का अनाकारोपयोग तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है- १. चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग २. अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग और ३. अवधि दर्शन अनाकारोपयोग। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीव दो प्रकार के होते हैं - १. सम्यग्दृष्टि और २. मिथ्यादृष्टि। नैरयिकों को भवनिमित्तक अवधिज्ञान अवश्य उत्पन्न होता है क्योंकि '**भवप्रत्ययो नारक देवानाम्**' (तत्त्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र २२) ऐसा शास्त्रवचन है। अतः सम्यग्दृष्टि नैरयिकों को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टि नैरयिकों को मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान होता है इसलिए सामान्य रूप से नैरयिकों में छह प्रकार का साकारोपयोग होता है। दोनों प्रकार के नैरयिकों में 'सामान्य रूप से तीन प्रकार का अनाकार उपयोग होता है - १. चक्षुदर्शन २. अचक्षुदर्शन और ३. अवधिदर्शन।'

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक साकारोपयोग और अनाकारोपयोग का कथन करना चाहिये।

पुढविकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते। तंजहा - सागारोवओगे अणागारोवओगे य।

पुढविकाइयाणं भंते! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - मइअण्णाणसागारोवओगे, सुयअण्णाण-सागारोवओगे य।

पुढविकाइयाणं भंते! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे पण्णत्ते, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों का उपयोग दो प्रकार का कहा गया है। यथा - साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों का साकारोपयोग दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार हैं - मति अज्ञान साकारोपयोग और श्रुत अज्ञान साकारोपयोग।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों का अनाकारोपयोग एक प्रकार का कहा गया है और वह है-अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक समझना चाहिये।

विवेचन - पृथ्वीकायिकों का साकार उपयोग दो प्रकार का है - मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान। अनाकार उपयोग एक अचक्षुदर्शन रूप है। शेष उपयोग उनमें नहीं होते क्योंकि उनको सम्यग्-दर्शन आदि लब्धि प्राप्त नहीं है। इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों के विषय में समझना चाहिए।

बेइंदियाणं पुच्छा?

गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते। तंजहा - सागारोवओगे अणागारोवओगे य।

बेइंदियाणं भंते! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - आभिणिबोहियणाण० सुयणाण०, मइअण्णाण०, सुयअण्णाणसागारोवओगे।

बेइंदियाणं भंते! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे, एवं तेइंदियाण वि। चउरिंदियाण वि एवं चेव, णवरं अणागारोवओगे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - चक्खुदंसण-अणागारोवओगे, अचक्खुदंसणअणागारोवओगे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों का उपयोग दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. साकारोपयोग और २. अनाकारोपयोग।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों का साकारोपयोग चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. आभिनिबोधिकज्ञान साकारोपयोग २. श्रुतज्ञान साकारोपयोग ३. मति अज्ञान साकारोपयोग और ४. श्रुतअज्ञान साकारोपयोग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों का साकारोपयोग चार प्रकार का कहा गया है- वह इस प्रकार है - १. आभिनिबोधिकज्ञान साकारोपयोग २. श्रुतज्ञान साकारोपयोग ३. मति अज्ञान साकारोपयोग और ४. श्रुत अज्ञान साकारोपयोग।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों का एक मात्र अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग कहा गया है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय जीवों के विषय में भी समझना चाहिये। चउरन्द्रिय जीवों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उनका अनाकारोपयोग दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग।

विवेचन - बेइन्द्रियों का साकार उपयोग चार प्रकार का है। यथा - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान और श्रुत अज्ञान। अपर्याप्तावस्था में सास्वादन सम्यक्त्व को प्राप्त हुए कितनेक जीवों में मति ज्ञान और श्रुतज्ञान होता है। शेष जीवों में मतिअज्ञान श्रुत अज्ञान होता है तथा अचक्षुदर्शन रूप एक अनाकार उपयोग होता है शेष उपयोग उनमें संभव नहीं है। तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीवों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये किन्तु चउरिन्द्रिय जीवों में अनाकार उपयोग दो प्रकार का होता है- चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा णेरइयाणं। मणुस्साणं जहा ओहिए उवओगे भणियं तहेव भाणियव्वं। वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ६५९॥

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिये। मनुष्यों का उपयोग समुच्चय जीवों के उपयोग के समान कहना चाहिये। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिये।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का साकार उपयोग छह प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार है - १. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मतिअज्ञान ५. श्रुतअज्ञान और ६. विभंगज्ञान तथा अनाकार उपयोग तीन प्रकार का कहा गया है यथा - १. चक्षुदर्शन २. अचक्षुदर्शन और ३. अवधिदर्शन क्योंकि कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रियों को अवधिज्ञान एवं अवधिदर्शन संभव है। मनुष्यों में आठों ही प्रकार का साकार उपयोग और चारों प्रकार का अनाकार उपयोग संभव है क्योंकि उनमें सभी ज्ञानों और सभी दर्शनों की लब्धि संभव है। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों में उपयोग का कथन नैरयिकों के समान कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवा णं भंते! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?

गोयमा! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जीवा सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि'?

गोयमा! जेणं जीवा आभिणिबोहियणाणसुयणाण ओहिणाण मणपज्जवणाण केवलणाण मइअण्णाणसुयअण्णाणविभंगणाणोवउत्ता तेणं जीवा सागारोवउत्ता, जेणं जीवा चक्खुदंसण अचक्खुदंसण ओहिदंसण केवलदंसणोवउत्ता तेणं जीवा अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जीवा सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि'।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव साकारोपयुक्त है या अनाकारोपयुक्त?

उत्तर- हे गौतम! जीव साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं?

प्रश्न - हे भगवन्! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जीव साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो जीव अभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान वाले होते हैं वे साकारोपयुक्त (साकार उपयोग) वाले कहे जाते हैं तथा जो जीव चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन से युक्त होते हैं वे अनाकार उपयोग वाले कहे जाते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि जीव साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं।

णेरइया णं भंते! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता?

गोयमा! णेरइया सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ०?

गोयमा! जेणं णेरइया आभिणिबोहियणाणसुयणाणओहिणाणमइअण्णाण-सुयअण्णाणविभंगणाणोवउत्ता तेणं णेरइया सागारोवउत्ता, जेणं णेरइया चक्खुदंसणअचक्खुदंसणओहिदंसणोवउत्ता तेणं णेरइया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-जाव 'सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि,' एवं जाव थणिय-कुमारा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या साकारोपयुक्त होते हैं या अनाकारोपयुक्त?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयुक्त भी होते हैं?

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीव साकारोपयोग वाले भी होते हैं और अनाकारोपयोग वाले भी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो नैरयिक अभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान से युक्त होते हैं वे साकारोपयोग वाले होते हैं और जो नैरयिक चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के उपयोग वाले होते हैं वे अनाकारोपयोग युक्त होते हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक साकारोपयुक्त भी होते हैं और अनाकारोपयोग वाले भी होते हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक समझना चाहिये।

पुढविकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! तहेव जाव जेणं पुढविकाइया मइअण्णाणसुयअण्णाणोवउत्ता तेणं पुढविकाइया सागारोवउत्ता, जेणं पुढविकाइया अचक्खुदंसणोवउत्ता तेणं पुढविकाइया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ जाव वणस्सइकाइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के उपयोग कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के उपयोग दो प्रकार के कहे गये हैं यथा - साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। जो पृथ्वीकायिक जीव मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के उपयोग वाले होते हैं वे साकारोपयोग वाले हैं तथा जो पृथ्वीकायिक जीव अचक्षुदर्शन के उपयोग वाले होते हैं वे अनाकारोपयुक्त होते हैं। इस कारण से हे गौतम! इस प्रकार कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीव साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये।

बेइंदियाणं भंते! अट्ठसहिया तहेव पुच्छा?

गोयमा! जाव जेणं बेइंदिया आभिणिबोहियणाणसुयणाण मइअण्णाणसुय-अण्णाणोवउत्ता तेणं बेइंदिया सागारोवउत्ता, जेणं बेइंदिया अचक्खुदंसणोवउत्ता तेणं बेइंदिया अणागारोवउत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ०। एवं जाव चउरिंदिया, णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं चउरिंदियाणं ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया, मणूसा जहा जीवा, वाणमंतर-जोइसियवेमाणिया जहा णेरइया॥ ६६०॥

॥ पण्णवणाए भगवईए एगूणतीसइमं उवओगपयं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - अट्ठ सहिया - अर्थ (कारण) सहित, **अब्भहियं** - अधिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों की पूर्ववत् अर्थ (कारण) सहित पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! यावत् जो बेइन्द्रिय जीव आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान और श्रुत अज्ञान के उपयोग वाले होते हैं वे साकारोपयुक्त है और जो बेइन्द्रिय जीव अचक्षुदर्शन के उपयोग वाले होते हैं वे अनाकारोपयुक्त हैं इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि बेइन्द्रिय जीव साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय जीवों के विषय में समझना चाहिये, विशेषता यह है कि चउरिन्द्रिय जीवों में चक्षुदर्शन अधिक कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कथन नैरयिकों के समान एवं मनुष्यों का कथन समुच्चय जीवों के समान समझना चाहिये। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में समुच्चय जीवों और चौबीस दण्डक के जीवों में साकार उपयोग और अनाकार उपयोग के विषय में कथन किया गया है।

॥ प्रज्ञापना भगवती का उनतीसवां उपयोग पद समाप्त॥

✧ ✧ ✧ ✧

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसइमं पासणया पयं

तीसवां पश्यत्ता पद

प्रज्ञापना सूत्र के उनतीसवें पद में ज्ञान के परिणाम विशेष रूप उपयोग का कथन किया गया है। अब इस तीसवें पद में भी ज्ञान के ही परिणाम विशेष रूप पश्यत्ता का वर्णन किया जाता है, जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

कइविहा णं भंते! पासणया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पासणया पण्णत्ता। तंजहा - सागारपासणया, अणागार-पासणया य।

कठिन शब्दार्थ - **पासणया** - पश्यत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. साकार पश्यत्ता और २. अनाकार पश्यत्ता।

विवेचन - 'पश्यत्ता' शब्द दृशिर-देखना धातु से बना है किन्तु रुढिवश पश्यत्ता शब्द उपयोग की तरह साकार और अनाकार बोध का प्रतिपादक है। त्रैकालिक अथवा स्पष्ट दर्शन रूप बोध को पश्यत्ता कहते हैं। पश्यत्ता के दो भेद हैं - १. साकार पश्यत्ता और २. अनाकार पश्यत्ता। विशेष रूप से और स्पष्ट रूप से त्रैकालिक (तीनों काल विषयक) ज्ञान साकार पश्यत्ता है तथा त्रैकालिक और स्पष्ट रूप से देखना अनाकार पश्यत्ता है।

सागारपासणया णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा - सुयणाणपासणया, ओहिणाणपासणया, मणपज्जवणाणपासणया, केवलणाणपासणया, सुयअण्णाणसागारपासणया, विभंगणाणसागारपासणया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! साकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! साकार पश्यत्ता छह प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है-१. श्रुतज्ञान पश्यत्ता २. अवधिज्ञान पश्यत्ता ३. मनःपर्यवज्ञान पश्यत्ता ४. केवलज्ञान पश्यत्ता ५. श्रुतअज्ञान पश्यत्ता और ६. विभंगज्ञान पश्यत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणागारपासणया णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा पण्णत्ता। तंजहा-चक्खुदंसणअणागारपासणया, ओहिदंसण-अणागारपासणया, केवलदंसणअणागारपासणया, एवं जीवाणं पि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनाकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अनाकार पश्यत्ता तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है- १. चक्षुदर्शन अनाकार पश्यत्ता २. अवधिदर्शन अनाकार पश्यत्ता और ३. केवलदर्शन अनाकार पश्यत्ता। इसी प्रकार समुच्चय जीवों में समझना चाहिये।

विवेचन - साकार और अनाकार रूप भेद से उपयोग और पश्यत्ता में अन्तर नहीं है यानी पश्यत्ता भी उपयोग विशेष ही है किन्तु दोनों का अंतर स्पष्ट करते हुए टीकाकार अभयदेवसूरि ने लिखा है कि त्रैकालिक (दीर्घकालिक) बोध पश्यत्ता है जबकि वर्तमान कालिक बोध उपयोग है। यही कारण है कि साकार पश्यत्ता के भेदों में मतिज्ञान और मति अज्ञान को नहीं लिया गया है क्योंकि इन दोनों का विषय वर्तमान कालिक है। मतिज्ञान के लिए तो कहा भी है -

जमवग्गहादिरूवं पच्चुप्पन्नवत्थुगाहगं लोए।
इंदिय मणोनिमित्तं तमाभिनिबोधिगं बेंति॥

अर्थात् लोक में अवग्रह आदि रूप, वर्तमान वस्तु को ग्रहण करने वाला इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक कहलाता है।

श्रुतज्ञान त्रिकाल विषयक है। श्रुतज्ञान से अतीत और अनागत भावों को भी जाना जा सकता है। कहा है कि -

जं पुण तिकाल विसयं आगमगंथाणुसारि विन्नाणं।
इंदिय मणोनिमित्तं सुयणाणं तं जिणा बेंति॥

अर्थात् आगम ग्रन्थ के अनुसार इन्द्रियां और मन के निमित्त से जो विज्ञान होता है उसको जिनेश्वर भगवान् श्रुतज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान भी अतीत और अनागत असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप काल को जानता है। मन:पर्यवज्ञान भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग अतीत और अनागत काल को जानता है और केवलज्ञान सर्वकाल विषयक है। श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान भी त्रिकाल विषयक है क्योंकि उनसे भी अतीत और अनागत के भावों का ज्ञान होता है अत: उन ज्ञानों को यहाँ साकार पश्यत्ता शब्द से कहा गया है। जिनमें पूर्वोक्त स्वरूप वाले आकार की स्फुरणा होती है वह बोध वर्तमानकाल विषयक होता है या त्रिकाल विषयक होता है वहाँ उपयोग शब्द प्रयुक्त होता है इसीलिए साकार उपयोग आठ प्रकार का कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन रूप चार प्रकार का अनाकार उपयोग कहा गया है जबकि अनाकार पश्यत्ता तीन प्रकार की कही गई है। अचक्षुदर्शन अनाकार पश्यत्ता नहीं कहने का कारण है कि आत्मा चक्षुरिन्द्रिय की तरह शेष इन्द्रियों और मन से स्पष्ट नहीं देखता है। अचक्षुदर्शन अनाकार पश्यत्ता रूप नहीं होने से तीन प्रकार की अनाकार पश्यत्ता कही है। चक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन में ही अनाकार पश्यत्ता का लक्षण घटित होता है।

णेरइयाणं भंते! कइविहा पासणया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सागारपासणया अणागारपासणया।

णेरइयाणं भंते! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा-सुयणाणपासणया, ओहिणाणपासणया, सुयअण्णाणपासणया, विभंगणाणपासणया।

णेरइयाणं भंते! अणागारपासणया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - चक्खुदंसण अणागारपासणया य ओहिदंसण-अणागारपासणया, एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है। यथा-साकार पश्यत्ता और अनाकार पश्यत्ता।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की साकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की साकार पश्यत्ता चार प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. श्रुतज्ञान साकार पश्यत्ता २. अवधिज्ञान साकार पश्यत्ता ३. श्रुत अज्ञान साकार पश्यत्ता और ४. विभंगज्ञान साकार पश्यत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की अनाकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की अनाकार पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है। यथा-चक्षुदर्शन अनाकार पश्यत्ता और अवधिदर्शन अनाकार पश्यत्ता। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

पुढविकाइयाणं भंते! कइविहा पासणया पण्णत्ता?

गोयमा! एगा सागारपासणया पण्णत्ता।

पुढविकाइयाणं भंते! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों में एक साकार पश्यत्ता कही गई है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों की साकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों में एक श्रुत अज्ञान साकार पश्यत्ता कही गई है। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक समझना चाहिये।

बेइंदियाणं भंते! कइविहा पासणया पण्णत्ता?

गोयमा! एगा सागारपासणया पण्णत्ता।

बेइंदियाणं भंते! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-सुयणाणसागारपासणया, सुयअण्णाण-सागारपासणया, एवं तेइंदियाण वि।

चउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-सागारपासणया य अणागारपासणया य। सागारपासणया जहा बेइंदियाणं।

चउरिंदियाणं भंते! अणागारपासणया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! एगा चक्खुदंसणअणागारपासणया पण्णत्ता।

मणूसाणं जहा जीवाणं, सेसा जहा णेरइया जाव वेमाणियाणं॥ ६६१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रियों की कितनी प्रकार की पश्यत्ता कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों में एक साकार पश्यत्ता कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों की साकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों की साकार पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है। यथा - श्रुतज्ञान साकार पश्यत्ता और श्रुत अज्ञान साकार पश्यत्ता। इसी प्रकार तेइन्द्रिय जीवों के विषय में समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों की पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीवों की पश्यत्ता दो प्रकार की कही गई है। यथा-साकार पश्यत्ता और अनाकार पश्यत्ता। साकार पश्यत्ता बेइन्द्रिय जीवों के समान समझनी चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों में अनाकार पश्यत्ता कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीवों में एक चक्षुदर्शन अनाकार पश्यत्ता कही गई है। मनुष्यों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वक्तव्यता समुच्चय जीवों के समान जाननी चाहिये। शेष सभी जीवों की पश्यत्ता संबंधी कथन नैरयिकों के समान कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव और चौबीस दण्डकों में पश्यत्ता के भेद प्रभेदों की प्ररूपणा की गयी है।

जीवा णं भंते! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी?

गोयमा! जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि'?

गोयमा! जेणं जीवा सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणी तेणं जीवा सागारपस्सी, जेणं जीवा चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी तेणं जीवा अणागारपस्सी, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जीवा सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि'।

कठिन शब्दार्थ - सागारपस्सी - साकारदर्शी-साकार पश्यत्ता वाला, **अणागारपस्सी** - अनाकारदर्शी-अनाकार पश्यत्ता वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव क्या साकारदर्शी-साकार पश्यत्ता वाले हैं या अनाकारदर्शी-अनाकार पश्यत्ता वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव साकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि जीव साकार पश्यत्ता वाले भी हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो जीव श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं वे साकार पश्यत्ता वाले होते हैं और जो जीव चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी हैं वे अनाकार पश्यत्ता वाले होते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि जीव साकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं।

विवेचन - जो साकार पश्यत्ता से युक्त होते हैं वे साकारदर्शी अथवा साकार पश्यत्ता वाले कहलाते हैं। समुच्चय जीवों में जो जीव श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी या केवलज्ञानी हैं अथवा श्रुत अज्ञानी या विभंगज्ञानी हैं वे साकारपश्यत्ता वाले हैं। जो जीव अनाकार पश्यत्ता से युक्त होते हैं वे अनाकारदर्शी अथवा अनाकार पश्यत्ता वाले कहलाते हैं। समुच्चय जीवों में जो जीव चक्षुदर्शनी अवधिदर्शनी तथा केवलदर्शनी हैं वे अनाकार पश्यत्ता वाले हैं।

आगम के मूल पाठ में पहले गुण अर्थात् पश्यत्ता की पृच्छा करने के बाद गुणों की पृच्छा (क्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव साकार पश्यत्ता वाला है? इत्यादि) की गई है। अन्यतीर्थिक लोग-गुण व गुणी को एकान्त रूप में भिन्न या अभिन्न मानते हैं। उनकी मान्यता का खण्डन (निराकरण) करने के लिए ही यह दूसरी बार पृच्छा की है तथा यह बात सिद्ध की है कि - 'गुण और गुणी एकान्त रूप से भिन्न या अभिन्न नहीं होकर कदाचित् भिन्न कदाचित् अभिन्न होते हैं।'

णेरइया णं भंते! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी?

गोयमा! एवं चेव, णवरं सागारपासणयाए मणपज्जवणाणी केवलणाणी ण वुच्चइ, अणागारपासणयाए केवलदंसणं णत्थि, एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं या अनाकार पश्यत्ता वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार समझना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें साकार पश्यत्ता के रूप में मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी नहीं कहना चाहिये तथा अनाकार पश्यत्ता में केवलदर्शन नहीं है। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमार तक समझ लेना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक जीव साकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी होते हैं किन्तु वे चारित्र अंगीकार नहीं कर सकते इसलिए उनमें मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान रूप साकार पश्यत्ता का एवं केवलदर्शन रूप अनाकार पश्यत्ता का निषेध किया है।

पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! पुढविकाइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ०?

गोयमा! पुढविकाइयाणं एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं या अनाकार पश्यत्ता वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं, अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि पृथ्वीकायिक जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों में एक मात्र श्रुतअज्ञान साकार पश्यत्ता कही गई है इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है पृथ्वीकायिक जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं, अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक समझना चाहिये।

बेइंदियाणं पुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ० ?

गोयमा! बेइंदियाणं दुविहा सागारपासणया पण्णत्ता। तंजहा-सुयणाण-सागारपासणयाय, सुयअण्णाणसागारपासणयाय, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ०। एवं तेइंदियाण वि।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं या अनाकार पश्यत्ता वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि बेइन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों में दो प्रकार की पश्यत्ता कही गई है। यथा - श्रुतज्ञान साकार पश्यत्ता और श्रुतअज्ञान साकार पश्यत्ता। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि बेइन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले हैं, अनाकार पश्यत्ता वाले नहीं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय जीवों के विषय में समझना चाहिये।

चउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! चउरिंदिया सागारपस्सी वि अणागारपस्सी वि।

से केणट्ठेणं० ?

गोयमा! जेणं चउरिंदिया सुयणाणी सुयअण्णाणी तेणं चउरिंदिया सागारपस्सी, जेणं चउरिंदिया चक्खुदंसणी तेणं चउरिंदिया अणागारपस्सी, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ०।

मणूसा जहा जीवा, अवसेसा जहा णेरइया जाव वेमाणिया॥ ६६२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों के विषय में पृच्छा?

उत्तर-हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले भी हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि चउरिन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले भी हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो चउरिन्द्रिय जीव श्रुतज्ञानी और श्रुतअज्ञानी हैं वे साकार पश्यत्ता वाले हैं और जो चउरिन्द्रिय जीव चक्षुदर्शनी हैं वे अनाकार पश्यत्ता वाले हैं। इस कारण से हे गौतम! इस प्रकार कहा जाता है कि चउरिन्द्रिय जीव साकार पश्यत्ता वाले भी हैं और अनाकार पश्यत्ता वाले भी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों की वक्तव्यता समुच्चय जीवों के समान है। शेष सभी यावत् वैमानिक तक के जीवों के विषय में नैरयिकों के समान समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में किन जीवों में कौन-कौन-सी पश्यत्ता पाई जाती है। इसका निरूपण किया गया है। समुच्चय जीव में साकार पश्यत्ता के छहों भेद और अनाकार पश्यत्ता के तीनों भेद पाये जाते हैं। नैरयिक, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में साकार पश्यत्ता के चार भेद-श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान पाये जाते हैं और अनाकार पश्यत्ता के दो भेद चक्षु दर्शन और अवधिदर्शन पाये जाते हैं। पांच स्थावर में साकार पश्यत्ता का एक भेद श्रुत अज्ञान पाता है। बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीवों में साकार पश्यत्ता के दो भेद - श्रुत ज्ञान और श्रुत अज्ञान पाते हैं। चउरिन्द्रिय जीवों में साकार पश्यत्ता के दो भेद श्रुतज्ञान, श्रुतअज्ञान और अनाकार पश्यत्ता का एक भेद चक्षुदर्शन पाता है। मनुष्य में समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिये।

केवली णं भंते! इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं हेऊहिं उवमाहिं दिट्ठंतेहिं वण्णेहिं संठाणेहिं पमाणेहिं पडोयारेहिं जं समयं जाणइ तं समयं पासइ, जं समयं पासइ तं समयं जाणइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं० जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ, जं समयं पासइ णो तं समयं जाणइ?

गोयमा! सागारे से णाणे भवइ, अणागारे से दंसणे भवइ, से तेणट्ठेणं जाव णो तं समयं जाणइ, एवं जाव अहेसत्तमं। एवं सोहम्मकप्पं जाव अच्चुयं, गेविज्जगविमाणा, अणुत्तरविमाणा, ईसिप्पब्भारं पुढविं, परमाणुपोग्गलं दुपएसियं खंधं जाव अणंतपएसियं खंधं।

कठिन शब्दार्थ - आगारेहिं - आकार-प्रकारों से, **हेऊहिं** - हेतुओं से, **उवमाहिं** - उपमाओं से, **दिट्ठंतेहिं** - दृष्टान्तों से, **वण्णेहिं** - वर्णों से, **संठाणेहिं** - संस्थानों-आकारों से, **पमाणेहिं** - प्रमाणों से, **पडोयारेहिं** - प्रत्यवतारों से अर्थात् पूर्ण रूप से चारों ओर से व्याप्त करने वाले पदार्थों से, **दुपएसियं** - द्वि प्रदेशिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या केवली इस रत्नप्रभा पृथ्वी को आकारों से, हेतुओं से, उपमाओं से, दृष्टान्तों से, वर्णों से, संस्थानों से, प्रमाणों से और प्रत्यवतारों से जिस समय जानते हैं उस समय देखते हैं? और जिस समय देखते हैं उस समय जानते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभा पृथ्वी को आकारों से यावत् प्रत्यावतारों से जिस समय जानते हैं उस समय नहीं देखते और जिस समय देखते हैं उस समय नहीं जानते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जो साकार होता है वह ज्ञान होता है और जो अनाकार होता है वह दर्शन होता है इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है केवलज्ञानी जिस समय जानता है उस समय देखता नहीं यावत् जानता नहीं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमपृथ्वी तक समझना चाहिये और इसी प्रकार सौधर्म कल्प यावत् अच्युत कल्प, ग्रैवेयक विमान, अनुत्तर विमान, ईषत्प्राग्भार पृथ्वी, परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी स्कन्ध यातव् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के विषय में समझना चाहिये।

विवेचन - छद्मस्थ जीव कर्म सहित होते हैं अतः उनको अनुक्रम से साकार और अनाकार उपयोग हो सकता है क्योंकि कर्मों से आवृत्त जीवों के एक उपयोग के समय दूसरा उपयोग घटित नहीं होता। अतः छद्मस्थ जिस समय जानता है उसी समय देखता नहीं है किन्तु केवलज्ञानी के तो चारों घाती कर्मों का क्षय हो चुका है अतः ज्ञान और दर्शन एक साथ होने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिये, इस आशंका से गौतम स्वामी ने यह प्रश्न पूछा कि क्या केवली रत्नप्रभा आदि को जिस समय जानते हैं उसी समय देखते हैं अथवा जीव स्वभाव के कारण क्रम से जानते देखते हैं? इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि - यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि केवली भगवान् का ज्ञान साकार अर्थात् विशेष का ग्राहक होता है जबकि उनका दर्शन अनाकार अर्थात् सामान्य का ग्राहक होता है अतः केवली भगवान् जब विशेष का ग्रहण करते हैं तब जानते हैं ऐसा कहा जाता है और जब सामान्य का ग्रहण करते हैं तब देखते हैं ऐसा कहा जाता है। इसलिए सिद्धान्त यह है कि जब ज्ञान होता है तब ज्ञान ही होता है और जब दर्शन होता है तब दर्शन ही होता है। ज्ञान और दर्शन छाया और धूप के समान साकार रूप और अनाकार रूप होने से परस्पर विरोधी हैं। ये दोनों एक साथ उपयुक्त नहीं रह सकते। अतएव केवली जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं और जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं।

'केवल ज्ञान केवल दर्शन उपयोग एक साथ में नहीं होते हैं' कारण - केवलज्ञान साकारोपयोग होने से आकार आदि के द्वारा भेदाकार प्रतीति करता है और केवल दर्शन अनाकार उपयोग होने से आकार आदि के द्वारा भेदाकार प्रतीति नहीं कराकर एकाकार प्रतीति कराता है। भेदाकार प्रतीति और एकाकार प्रतीति दोनों भिन्न भिन्न होने से एक साथ नहीं होती है। इसलिए केवल ज्ञान-केवल दर्शन दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं। एकाकार प्रतीति - जैसे गोत्व (गायपना), गाड़ी आदि। भेदाकार प्रतीति-श्यामा गाय, बहुलागाय, गाड़ी के ८४ अवयव आदि।

सातों नरक पृथ्वियों, देव विमानों, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध से अनंतप्रदेशी स्कन्ध तक के विषय में भी इसी प्रकार युक्तिपूर्वक समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल पाठ में आये '**आगारेहिं**' आदि पदों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

१. आगारेहिं - केवली भगवान् इस रत्नप्रभा पृथ्वी आदि को अर्थात् आकार-प्रकारों से यथा यह रत्नप्रभापृथ्वी खरकाण्ड, पंककाण्ड और अप्काण्ड के भेद से तीन प्रकार की है। खरकाण्ड के भी सोलह भेद हैं। उनमें से एक सहस्रयोजन प्रमाण रत्नकाण्ड है, तदनन्तर एक सहस्रयोजन-परिमित वज्रकाण्ड है, फिर उसके नीचे सहस्रयोजन का वैडूर्यकाण्ड है, इत्यादि रूप के आकार-प्रकारों से समझना।

२. हेऊहिं - हेतुओं से अर्थात् उपपत्तियों से-युक्तियों से। यथा इस पृथ्वी का नाम रत्नप्रभा क्यों है? युक्ति आदि द्वारा इसका समाधान यह है कि रत्नमयकाण्ड होने से या रत्न की ही प्रभा या स्वरूप होने से अथवा रत्नमयकाण्ड होने से उसमें रत्नों की प्रभाकान्ति है, अतः इस पृथ्वी का रत्नप्रभा नाम सार्थक है।

३. उवमाहिं - उपमाओं से अर्थात् सदृशताओं से। जैसे कि - वर्ण से पद्मराग के सदृश रत्नप्रभा में रत्नप्रभ आदि काण्ड हैं, इत्यादि।

४. दिट्ठंतेहिं - दृष्टान्तों-उदाहरणों से या वादी-प्रतिवादी की बुद्धि समता-प्रतिपादक वाक्यों से। जैसे - घट, पट आदि से भिन्न होता है, वैसे ही यह रत्नप्रभा पृथ्वी शर्कराप्रभा आदि अन्य नरकपृथ्वियों से भिन्न है, क्योंकि इसके धर्म उनसे भिन्न हैं। इसलिए रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि से भिन्न वस्तु है, इत्यादि।

५. वण्णेहिं - वर्ण-गन्धादि के भेद से। शुक्ल आदि वर्णों के उत्कर्ष-अपकर्षरूप संख्यातगुण, असंख्यातगुण और अनन्तगुण के विभाग से तथा गन्ध, रस और स्पर्श के विभाग से।

६. संठाणेहिं - संस्थानों-आकारों से अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी में बने भवनों और नरकावासों की रचना के आकारों से। जैसे - वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौकोर हैं, नीचे पुष्कर की कर्णिका की आकृति के हैं। इसी प्रकार नरक अन्दर से गोल और बाहर से चौकोर हैं और नीचे क्षुरप्र (खुरपा) के आकार के हैं, इत्यादि।

७. पमाणेहिं - प्रमाणों से अर्थात् उसकी लम्बाई, मोटाई, चौड़ाई आदि रूप परिमाणों से। जैसे - वह एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली तथा रज्जु-प्रमाण लम्बाई-चौड़ाई वाली है, इत्यादि।

८. पडोयारेहिं - प्रत्यवतारों से अर्थात् पूर्णरूप से चारों ओर से व्याप्त करने वाले पदार्थों (प्रत्यवतारों) से। जैसे - घनोदधि आदि वलय सभी दिशाओं-विदिशाओं में व्याप्त करके रहे हुए हैं, अतः वे प्रत्यवतार कहलाते हैं। इस प्रकार के प्रत्यवतारों से जानना।

केवली णं भंते! इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं अहेऊहिं अणुवमाहिं अदिट्ठंतेहिं अवण्णेहिं असंठाणेहिं अपमाणेहिं अपडोयारेहिं पासइ ण जाणइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा! केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासइ ण जाणइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासइ ण जाणइ'?

गोयमा! अणागारे से दंसणे भवइ, सागारे से णाणे भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव पासइ ण जाणइ', एवं जाव ईसिप्पब्भारं पुढविं परमाणुपोग्गलं अणंतपएसियं खंधं पासइ, ण जाणइ॥ ६६३॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तीसइमं पासणयापयं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - अणागारेहिं - अनाकारों से-आकार प्रकारों से रहित-रूप से, **अहेऊहिं** - अहेतु-युक्ति आदि से रहित रूप से, **अणुवमाहिं** - अनुपमाओं-सदृशता रहित रूप से, **अदिट्ठंतेहिं** - अदृष्टांतों-दृष्टांत, उदाहरण आदि के अभाव से, **अवण्णेहिं** - अवर्णों-शुक्ल आदि वर्णों से रहित, **असंठाणेहिं** - असंस्थानों-रचना विशेष-रहित रूप से, **अपमाणेहिं** - अप्रमाणों से, **अपडोयारेहिं** - अप्रत्यवतारों से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या केवलज्ञानी इस रत्नप्रभा पृथ्वी को अनाकारों से, अहेतुओं से, अनुपमाओं से, अदृष्टान्तों से, अवर्णों से, असंस्थानों से, अप्रमाणों से और अप्रत्यवतारों से देखते हैं, जानते नहीं हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! केवली इस रत्नप्रभा पृथ्वी को अनाकारों से यावत् देखते हैं, जानते नहीं हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभा पृथ्वी को अनाकारों से यावत् देखते हैं-जानते नहीं?

उत्तर - हे गौतम! जो अनाकार होता है वह दर्शन होता है और जो साकार होता है वह ज्ञान होता है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि केवली इस रत्नप्रभा पृथ्वी को अनाकारों से यावत् देखते हैं जानते नहीं।

इसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, परमाणु पुद्गल तथा अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक को केवली देखते हैं किन्तु जानते नहीं।

विवेचन - केवली अनाकार आदि रूप में जब रत्नप्रभा आदि को सामान्य रूप से ग्रहण करते हैं तब दर्शन ही होता है ज्ञान नहीं। जब वे साकार आदि रूप से वस्तु को ग्रहण करते हैं तब ही ज्ञान होता है। अतः केवली जब केवलदर्शन से रत्नप्रभा आदि किसी भी वस्तु को देखते हैं तब जानते नहीं और जब जानते हैं तब देखते नहीं।

॥ प्रज्ञापना भगवती का तीसवां पश्यत्ता पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगतीसइमं सण्णिपयं

इकतीसवां संज्ञी पद

प्रज्ञापना सूत्र के तीसवें पद में ज्ञान के परिणाम विशेष पश्यत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस इकत्तीसवें पद में समान रूप से गति के परिणाम विशेष रूप संज्ञा परिणाम का प्रतिपादन किया जाता है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

जीवा णं भंते! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी णोअसण्णी?

गोयमा! जीवा सण्णी वि असण्णी वि णोसण्णी णोअसण्णी वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव क्या संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं और नो संज्ञी-नोअसंज्ञी हैं।

विवेचन - पदार्थ के भूत, वर्तमान और भविष्य के स्वभाव का विचार करना संज्ञा कहलाता है। ऐसी संज्ञा जिनको होती है वे संज्ञी कहलाते हैं अर्थात् विशिष्ट स्मरण आदि रूप मनोज्ञान वाले जीव संज्ञी कहलाते हैं और ऐसे मनोज्ञान से रहित जीव असंज्ञी कहलाते हैं। अथवा **'संज्ञायतेऽनया'** - जिससे भूत, भविष्य और वर्तमान का सम्यक् ज्ञान हो ऐसी विशिष्ट मनोवृत्ति को संज्ञा कहते हैं और जिनमें इस प्रकार की संज्ञा हो, वे संज्ञी कहलाते हैं अर्थात् मन सहित जीव संज्ञी और जिनके मन नहीं हो वे असंज्ञी कहलाते हैं। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय असंज्ञी होते हैं। जो संज्ञी भी नहीं हो और असंज्ञी भी नहीं हो ऐसे केवलज्ञानी और सिद्ध नोसंज्ञी - नोअसंज्ञी होते हैं। अतः समुच्चय-सामान्य रूप से जीव संज्ञी भी होते हैं, असंज्ञी भी होते हैं और नोसंज्ञी, नोअसंज्ञी भी होते हैं। क्योंकि नैरयिक आदि संज्ञी होते हैं, पृथ्वीकाय आदि असंज्ञी होते हैं और सिद्ध और केवली नोसंज्ञी - नोअसंज्ञी होते हैं।

णेरइयाणं पुच्छा?

गोयमा! णेरइया सण्णी वि असण्णी वि णो णोसण्णी णोअसण्णी। एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी, नोअसंज्ञी हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक संज्ञी भी हैं असंज्ञी भी हैं किन्तु नोसंज्ञी नोअसंज्ञी नहीं है। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जो नैरयिक संज्ञी से आकर उत्पन्न होते हैं वे संज्ञी कहलाते हैं और शेष असंज्ञी कहलाते हैं। नैरयिकों में चारित्र संभव नहीं होने से उन्हें केवलज्ञान नहीं होता। इसलिए कहा है कि नैरयिक जीव संज्ञी भी होते हैं असंज्ञी भी होते हैं किन्तु नोसंज्ञी नोअसंज्ञी नहीं होते। इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति देवों के विषय में कहना चाहिये क्योंकि वे असंज्ञी से आकर भी उत्पन्न होते हैं और उनमें केवलीपने का अभाव है।

पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! णो सण्णी, असण्णी, णो णोसण्णी-णोअसण्णी।

एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव संज्ञी है, असंज्ञी हैं अथवा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव संज्ञी नहीं हैं, असंज्ञी हैं और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी भी नहीं हैं।

इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी समझना चाहिये।

मणूसा जहा जीवा। पंचेंदियतिरिक्खजोणिया वाणमंतरा य जहा णेरइया। जोइसिय वेमाणिया सण्णी, णो असण्णी, णो णोसण्णी-णोअसण्णी।

भावार्थ - मनुष्यों की वक्तव्यता समुच्चय जीवों के समान तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और वाणव्यंतर देवों का कथन नैरयिकों के समान समझना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी ही होते हैं, असंज्ञी नहीं होते और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी भी नहीं होते हैं।

विवेचन - मनुष्य सामान्य जीवों की तरह संज्ञी भी होते हैं, असंज्ञी भी होते हैं और नोसंज्ञी नोअसंज्ञी भी होते हैं क्योंकि मनुष्यों में जो गर्भज हैं वे संज्ञी हैं जो सम्मूर्च्छिम हैं वे असंज्ञी हैं और जो केवली हैं वे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और वाणव्यंतर देव नैरयिक की तरह कहना अर्थात् वे संज्ञी भी होते हैं, असंज्ञी भी होते हैं किन्तु नोसंज्ञी नोअसंज्ञी नहीं होते। तिर्यंचों में सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी हैं और गर्भज तिर्यंच संज्ञी हैं। व्यन्तर देव असंज्ञी से उत्पन्न होने वाले असंज्ञी और संज्ञी से उत्पन्न होने वाले संज्ञी समझना चाहिये। दोनों में चारित्र का अभाव होने के कारण नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं होते। ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी ही होते हैं किन्तु असंज्ञी नहीं होते क्योंकि वे असंज्ञी से आकर उत्पन्न नहीं होते और उनमें 'केवल ज्ञान' नहीं होने के कारण नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं होते।

सिद्धाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो सण्णी, णो असण्णी, णो सण्णी णो असण्णी।

णेरइय-तिरिय-मणुया य वणयरसुरा य सण्णीऽसण्णी य।

विगलिंदिया असण्णी, जोइसवेमाणिया सण्णी॥ ६६४॥

॥ पण्णवणाए भगवईए एगतीसइमं सण्णीपयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - सिद्धों के विषय में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध न तो संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, किन्तु नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं।

संग्रहणी गाथा का अर्थ - नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, वाणव्यंतर और असुरकुमार आदि भवनपति संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। विकलेन्द्रिय असंज्ञी होते हैं किन्तु ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी ही होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डक के जीवों में कौन संज्ञी, कौन असंज्ञी और कौन नोसंज्ञी नोअसंज्ञी होते हैं, इसका निरूपण किया गया है।

॥ प्रज्ञापना भगवती का इकतीसवां संज्ञी पद समाप्त॥

✧ ✧ ✧ ✧

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बत्तीसइमं संजमपयं

बत्तीसवां संयत पद

प्रज्ञापना सूत्र के इकत्तीसवें पद में संज्ञी जीवों के परिणाम का कथन किया गया है अब इस बत्तीसवें पद में चारित्र के परिणाम विशेष संयम का कथन किया जाता है जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

जीवाणं भंते! किं संजया, असंजया, संजयासंजया, नोसंजया नोअसंजया-नोसंजयासंजया?

गोयमा! जीवा संजया वि १, असंजया वि २, संजयासंजया वि ३, णोसंजय णो असंजय णोसंजयासंजया वि ४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव संयत होते हैं, असंयत होते हैं, संयतासंयत होते हैं अथवा नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव संयत भी होते हैं, असंयत भी होते हैं, संयतासंयत भी होते हैं और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत भी होते हैं।

विवेचन - जो सर्व सावद्य योगों से सम्यक् रूप से निवृत्त हो चुके हैं अर्थात् चारित्र परिणाम के वृद्धि के कारणभूत निरवद्य योगों में प्रवृत्त हैं वे संयत कहलाते हैं। आशय यह है कि जो हिंसा पाप स्थानों से सर्वथा विरत हो चुके हैं वे **संयत** हैं। उनसे विपरीत **असंयत** हैं। जो हिंसादि से देश से-आंशिक रूप से निवृत्त हो चुके हैं वे **संयतासंयत** कहलाते हैं तथा जो इन तीनों से भिन्न है, संयत आदि तीनों पर्यायों से निवृत्त हो चुके हैं ऐसे सिद्ध **नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत** कहलाते हैं।

शंका - सिद्धों को संयत आदि तीनों पर्यायों से निवृत्त कैसे समझना?

समाधान - संयत निरवद्य योग की प्रवृत्ति और सावद्य योग की निवृत्ति रूप है अतः संयत आदि पर्याय योग के आश्रित है और सिद्ध भगवान् योग से रहित हैं क्योंकि उनके शरीर और मन का अभाव है अतः सिद्ध भगवान् संयत आदि तीनों पर्यायों से निवृत्त कहे गये हैं।

इस प्रकार समुच्चय जीव पद में संयत, असंयत, संयतासंयत और नोसंयत नोअसंयत नो संयतासंयत रूप चारों अवस्थाएं घटित होती है।

णेरइया णं भंते! पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णेरइया णो संजया, असंजया, णोसंजयासंजया णोसंजय णोअसंजय णोसंजयासंजया, एवं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या संयत होते हैं, असंयत होते हैं, संयतासंयत होते हैं अथवा नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक संयत नहीं होते, संयतासंयत नहीं होते और नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत भी नहीं होते किन्तु असंयत होते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रियों तक समझना चाहिये।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णो संजया, असंजया वि, संजयासंजया वि णो णोसंजयणोअसंजयणोसंजयासंजया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक क्या संयत होते हैं, असंयत होते हैं, संयतासंयत होते हैं, अथवा नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक संयत नहीं होते, असंयत होते हैं, संयतासंयत भी होते हैं किन्तु नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत नहीं होते।

विवेचन - *अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति वाले तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाले* तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव के भी श्रावक के व्रत हो सकते हैं तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव-बारह व्रतधारी श्रावक भी हो सकते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रियों में - संथारा, महाव्रतारोपण होते हुए भी भव के कारण से उनमें चारित्र के परिणाम अर्थात् छठा आदि गुणस्थान नहीं आ सकते हैं। चारित्र के परिणाम तो कषायों की तीसरी चौकड़ी (प्रत्याख्यानावरण) के क्षयोपशम से ही आते हैं। जबकि श्रावक के तो दूसरी चौकड़ी (अप्रत्याख्यानी) का ही क्षयोपशम होता है। अतः श्रावक के तीन करण, तीन योग से पापों का त्याग होने पर भी संयतपना नहीं आता है। जैसा कि जिनभद्रगणी ने विशेषणवती ग्रन्थ में कहा भी है -

'न महव्वय सब्भावे वि, चरण परिणाम संभवो तेसिं।

न बहुगुणानामंपि जओ, केवल संभूइ परिणामो॥ १॥'

मणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! मणूसा संजया वि असंजया वि संजयासंजया वि णो णोसंजय णोअसंजयणोसंजयासंजया।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा णेरइया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मनुष्य संयत होते हैं, असंयत होते हैं, संयतासंयत होते हैं अथवा नोसंयत नोअसंयत-नोसंयतासंयत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य संयत होते हैं, असंयत भी होते हैं, संयतासंयत भी होते हैं किन्तु नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत नहीं होते हैं।

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

सिद्धाणं पुच्छा।

गोयमा! सिद्धा णो संजया, णो असंजया, णो संजयासंजया, णोसंजयणोअसंजय णोसंजयासंजया।

''संजय असंजयमीसगा य जीवा तहेव मणुया य।
संजय रहिया तिरिया सेसा अस्संजया होंति॥ ६६५॥''

॥ पण्णवणाए भगवईए बत्तीसइमं संजमपयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध संयत होते हैं? इत्यादि प्रश्न।

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध संयत नहीं होते, असंयत नहीं होते, संयतासंयत भी नहीं होते किन्तु नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत होते हैं।

गाथा का अर्थ - जीव और मनुष्य संयत, असंयत और मिश्र (संयतासंयत) होते हैं। तिर्यंच संयत नहीं होते। शेष (एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नैरयिक और देव) असंयत होते हैं॥ ६६५॥

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुच्चय जीव और चौबीस दण्डकों के जीवों में संयत आदि की प्ररूपणा की गयी है।

१. संयत - सम्पूर्ण सावद्य योगों से निवृत्त पांच महाव्रतधारी श्रमण।

२. असंयत - सावद्य योगों से अविरत जीव।

३. संयतासंयत - जो हिंसादि से एक देश से विरत होते हैं और एक देश से विरत नहीं होते हैं।

४. नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत - उपरोक्त तीनों अवस्थाओं से रहित सिद्ध भगवान्।

समुच्चयजीव संयत, असंयत, संयतासंयत, नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के अतिरिक्त शेष २२ दण्डकों के जीव असंयत होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंयत और संयतासंयत होते हैं। मनुष्य संयत, असंयत और संयतासंयत होते हैं। सिद्ध भगवान् न संयत होते हैं, न असंयत होते हैं और न संयतासंयत होते हैं किन्तु वे नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होते हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती का बत्तीसवां संयतपद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेत्तीसइमं ओहिपयं

तेतीसवां अवधि पद

प्रज्ञापना सूत्र के बत्तीसवें पद में संयत आदि का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार इस तेतीसवें पद में अवधिज्ञान विषयक प्ररूपणा करते हैं। अवधिज्ञान के विषय में यह प्ररूपणा विभिन्न द्वारों के माध्यम से की गई है जिसकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

भेय विसयसंठाणे अब्भिंतर बाहिरे य देसोही।

ओहिस्स य खयवुड्डी पडिवाई चेव अपडिवाई॥

भावार्थ-अवधिज्ञान के भेद १, विषय २, संस्थान ३, अभ्यंतरावधि ४, बाह्यावधि ५, देशावधि ६, क्षय-हीयमान अवधि ७, वृद्धि-वर्द्धमान अवधि ८, प्रतिपाती ९ और अप्रतिपाती १०, ये तेतीसवें पद के दस द्वार हैं।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में तेतीसवें पद के अर्थाधिकारों की प्ररूपणा की गयी है। जिसके दस द्वार इस प्रकार हैं - **१. भेद द्वार** - प्रथम भेद द्वार में अवधिज्ञान के भेद-प्रभेद की प्ररूपणा की गई है। **२. विषय द्वार** - अवधिज्ञान द्वारा प्रकाशित क्षेत्र का विषय **३. संस्थान द्वार** - अवधिज्ञान के संस्थान (आकार) **४. आभ्यंतर द्वार** - आभ्यंतर अवधिज्ञान **५. बाह्य द्वार** - बाह्य अवधिज्ञान **६. देश द्वार** - देश अवधिज्ञान और सर्व अवधिज्ञान **७. क्षय द्वार** - हीयमान अवधिज्ञान **८. वृद्धि द्वार** - वर्द्धमान अवधिज्ञान **९. प्रतिपाति द्वार** - प्रतिपाति-गिरने के स्वभाव वाला अवधिज्ञान और **१०. अप्रतिपाति द्वार**-अप्रतिपाति-नहीं गिरने वाला-भवपर्यंत स्थिर रहने वाला अवधिज्ञान का निरूपण है।

इन दस द्वारों में से कहीं कहीं चौथे और पांचवें द्वार को, कहीं कहीं सातवें और आठवें द्वार को तथा नौवें और दसवें द्वार को एक ही द्वार में सम्मिलित कर क्रमशः सात द्वारों या आठ द्वारों से भी विषय की प्ररूपणा की गयी है।

१. भेद द्वार

कइविहा णं भंते! ओही पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा ओही पण्णत्ता। तंजहा - भवपच्चइया य खओवसमिया य, दोण्हं भवपच्चइया, तंजहा - देवाण य णेरइयाण य, दोण्हं खओवसमिया, तंजहा - मणूसाणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाण य॥ ६६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - ओही - अवधि, **भवपच्चइया** - भवप्रत्ययिक, **खओवसमिया** - क्षायोपशमिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. भवप्रत्ययिक और २. क्षायोपशमिक। दो को भवप्रत्ययिक अवधि होता है, यथा - देवों और नैरयिकों को। दो को क्षायोपशमिक अवधि होता है। यथा - मनुष्यों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अवधिज्ञान का स्वरूप और उसके भेद बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है-इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना आत्मा को रूपी पदार्थों का जो मर्यादित ज्ञान होता है उसको **अवधिज्ञान** कहते हैं। अवधिज्ञान के दो भेद हैं -

१. **भवप्रत्ययिक - 'भवन्ति अस्मिन्'** जिसमें कर्मों के वशीभूत होकर प्राणी उत्पन्न होते हैं वह नैरयिक आदि जन्म भव कहलाता है और भव ही जिसका कारण हो वह भवप्रत्ययिक है। भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान नैरयिकों और देवों को होता है।

शंका - अवधिज्ञान क्षायोपशमिक भाव में है और नैरयिक आदि भव औदयिक भाव में हैं तो उन्हें भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कैसे होता है?

समाधान - भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान भी परमार्थ से क्षायोपशमिक ही है परन्तु वह क्षयोपशम देव और नैरयिक भव में पक्षियों के आकाश में गमन करने की लब्धि की तरह अवश्य होता है अतः नैरयिकों और देवों का अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कहलाता है। इस विषय में नंदी सूत्र के चूर्णिकार भी कहते हैं -

"नणु ओही खओवसमिओ चेव, नारगादि भवो से उदइए भावे, तओ कहं भवपच्चइओ भण्णइ? उच्चते, सो वि खओवसमिओ चेव, किन्तु सो खओवसमो देवनारगभवेसु अवस्सं भवइ, को दिट्ठंतो? पक्खीणं आगासगमणं व तओ भवपच्चइओ भण्णइ"

२. **क्षायोपशमिक** - जिस अवधिज्ञान में क्षयोपशम ही मुख्य कारण हो वह अवधिज्ञान क्षायोपशमिक कहलाता है। क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है। सभी मनुष्यों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को यह अवधिज्ञान नहीं होता किन्तु जो मनुष्य या तिर्यंच अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम करते हैं यानी अवधिज्ञानावरणीय कर्म के उदयावलिका में प्रविष्ट अंश का वेदन कर क्षय करते हैं और जो उदयावलिका को प्राप्त नहीं है उसके विपाकोदय को उपशम कर देते हैं उन्हें ही क्षायोपशमिक अवधिज्ञान होता है।

२. विषय द्वार

णेरइया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अद्ध गाउयं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति॥

कठिन शब्दार्थ - खेत्तं - क्षेत्र को, **ओहिणा** - अवधिज्ञान से, **गाउयाइं** - गव्यूति-गाऊ (कोस)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जघन्य से आधा गाऊ और उत्कृष्ट से चार गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

रयणप्पभापुढविणेरइया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

सक्करप्पभापुढविणेरइया जहण्णेणं तिण्णिगाउयाइं, उक्कोसेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

वालुयप्पभापुढविणेरइया जहण्णेणं अड्ढाइज्जाइं गाउयाइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

पंकप्पभापुढविणेरइया जहण्णेणं दोण्णि गाउयाइं, उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाणं गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

धूमप्पभापुढविणेरइया जहण्णेणं दिवड्ढं गाउयाइं, उक्कोसेणं दो गाउयाइं ओहिणा जाणंति पसंति।

तमापुढविणेरइया जहण्णेणं गाउयं, उक्कोसेणं दिवड्ढं गाउयं ओहिणा जाणंति पासंति।

अहेसत्तमाए पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अद्ध गाउयं, उक्कोसेणं गाउयं ओहिणा जाणंति पासंति ॥ ६६७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य साढ़े तीन गाऊ और उत्कृष्ट चार गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य तीन गाऊ और उत्कृष्ट साढ़े तीन गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य ढाई गाऊ और उत्कृष्ट तीन गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अवधिज्ञान से जघन्य दो गाऊ और उत्कृष्ट ढाई गाऊ क्षेत्र को जानते देखते हैं।

धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य डेढ़ गाऊ और उत्कृष्ट दो गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

तमः प्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य एक गाऊ और उत्कृष्ट डेढ़ गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

प्रश्न – हे भगवन्! अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर – हे गौतम! तमस्तमःप्रभा (अधःसप्तम) पृथ्वी के नैरयिक जघन्य आधा गाऊ और उत्कृष्ट एक गाऊ क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

विवेचन – प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक जीवों की अवधिज्ञान से जानने देखने की क्षेत्र मर्यादा बताई गई है। जो इस प्रकार है –

क्रं०	**नाम**	**जघन्य विषय**	**उत्कृष्ट विषय**
१.	समुच्चय नैरयिक	आधा कोस (गाऊ)	चार कोस
२.	रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	साढ़े तीन कोस	चार कोस
३.	शर्करा पृथ्वी के नैरयिक	तीन कोस	साढ़े तीन कोस
४.	वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	ढाई कोस	तीन कोस
५.	पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	दो कोस	ढाई कोस
६.	धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	डेढ़ कोस	दो कोस
७.	तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	एक कोस	डेढ़ कोस
८.	तमःतमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक	आधा कोस	एक कोस

असुरकुमारा णं भंते! ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसं जोयणाइं, उक्कोसेणं असंखिज्जे दीवसमुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णागकुमारा णं जहण्णेणं पणवीसं जोयणाइं, उक्कोसेणं संखिज्जे दीवसमुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार जघन्य पच्चीस योजन और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्रों को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

नागकुमार देव जघन्य पच्चीस योजन और उत्कृष्ट संख्यात द्वीप समुद्रों को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक समझना चाहिये।

विवेचन - असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय जघन्य पच्चीस योजन उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र है। अवधिज्ञान का यह जघन्य विषय दस हजार वर्ष की स्थिति वाले असुरकुमार देवों की अपेक्षा समझना चाहिये। पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय संख्यात द्वीप समुद्र है और सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का विषय असंख्यात द्वीप समुद्र है। नागकुमार आदि नवनिकाय के देवों के अवधिज्ञान का विषय जघन्य पच्चीस योजन उत्कृष्ट संख्यात द्वीप समुद्र है।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणं असंखिज्जे दीव समुद्दे०।

मणूसा णं भंते! ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइं खंडाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

वाणमंतरा जहा णागकुमारा॥ ६६८॥

कठिन शब्दार्थ - लोयप्पमाणमेत्ताइं - लोक प्रमाण, **खंडाइं** - खण्डों को।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्रों को जानते देखते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और उत्कृष्ट अलोक में लोकप्रमाण असंख्यात खण्डों को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

वाणव्यंतर देवों के अवधिज्ञान का विषय नागकुमार देवों के समान समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवा भाग उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्र है। मनुष्य के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट संपूर्ण लोक है तथा अलोक में लोकप्रमाण असंख्यात खण्ड जानने का सामर्थ्य है। यद्यपि अलोक में अवधिज्ञान के विषय रूपी द्रव्य नहीं है किन्तु क्षमता (विषय) की अपेक्षा जानने का सामर्थ्य है ऐसा समझना चाहिये।

अलोकाकाश में रूपी द्रव्य नहीं होने से वहाँ के अरूपी आकाश प्रदेशों को अवधिज्ञान के द्वारा नहीं देखा जाता है। परन्तु जिस अवधिज्ञान की अलोकाकाश में देखने की जितनी-जितनी शक्ति बढ़ती है। उससे लोक में रहे हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म पुद्‌गलों (परमाणु आदि) को देखने का ज्ञान भी बढ़ जाता है। टीका में कहा है - उक्तं

"सामत्थमेत्तमुत्तं, दट्ठव्वं जंइ हवेज्ज पेच्छज्ज।
न उ तं तं इच्छइ, छिज्जइ सो रुवि निबंधणो भणिओ॥ १॥
वड्ढंतो पुण ओहिं लोगत्थं चेव पासइ दव्वं।
सुहुमयरं २, परमोहि जाव परमाणु॥ २॥"

वाणव्यंतर देवों के अवधिज्ञान का विषय जघन्य २५ योजन उत्कृष्ट संख्यात द्वीप समुद्र है। अवधिज्ञान का यह जघन्य विषय दस हजार वर्ष की स्थिति वाले वाणव्यंतर देवों की अपेक्षा समझना चाहिये।

जोइसिया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं संखिज्जे दीवसमुद्दे, उक्कोसेण वि संखिज्जे दीवसमुद्दे०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देव जघन्य संख्यात द्वीप समुद्रों तक तथा उत्कृष्ट भी संख्यात द्वीप समुद्रों तक अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

सोहम्मगदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए हिट्ठिले चरमंते, तिरियं जाव असंखिज्जे दीवसमुद्दे उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति, एवं ईसाणगदेवा वि। सणंकुमार देवा वि एवं चेव, णवरं जाव अहे दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए हिट्ठिल्ले चरमंते, एवं माहिंददेवा वि। बंभलोयलंतग देवा० तच्चाए पुढवीए हिट्ठिल्ले चरमंते, महासुक्कसहस्सारगदेवा०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते, आणय-पाणय-आरणच्चुयदेवा अहे जाव पंचमाए धूमप्पभाए ० हेट्ठिले चरमंते, हेट्ठिम मज्झिमगेवेज्जगदेवा अहे जाव छट्ठाए तमाए पुढवीए हेट्ठिले चरमंते।

उवरिमगेविज्जग देवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं उक्कोसेणं अहेसत्तमाए० हेट्ठिले चरमंते, तिरियं जाव असंखिज्जे दीवसमुद्दे, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

कठिन शब्दार्थ - हिट्ठिल्ले (हेट्ठिल्ले) - निचले, **चरमंते -** चरमान्त, **सयाइं -** अपने।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म देव कितने क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म देव जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट नीचे यावत् इस रत्नप्रभा पृथ्वी के निचले चरमान्त तक तिरछे यावत् असंख्यात द्वीप समुद्रों तक और ऊपर अपने-अपने विमानों तक अवधिज्ञान के द्वारा जानते देखते हैं। इसी प्रकार ईशानक देवों के विषय में भी समझना चाहिये। सनत्कुमार देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि ये नीचे यावत् दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के निचले चरमान्त तक अवधिज्ञान से जानते देखते हैं। माहेन्द्र देवों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। ब्रह्मलोक और लान्तक देव नीचे तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी के नीचले चरमान्त तक जानते देखते हैं। महाशुक्र और सहस्रार देव चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के निचले चरमान्त तक तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देव नीचे यावत् पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के निचले चरमान्त तक जानते देखते हैं। निचले और मध्यम ग्रैवेयक देव यावत् नीचे छठी तमःप्रभा पृथ्वी के निचले चरमान्त तक जानते देखते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उपरिम ग्रैवेयक देव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

उत्तर - हे गौतम! उपरिम ग्रैवेयक देव जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट नीचे अधःसप्तम पृथ्वी के निचले चरमान्त तक, तिरछे यावत् असंख्यात द्वीप समुद्रों को तथा ऊपर यावत् अपने अपने विमानों तक के क्षेत्र को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

अणुत्तरोववाइय देवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

गोयमा! संभिण्णं लोगणालिं ओहिणा जाणंति पासंति॥ ६६९॥

कठिन शब्दार्थ - संभिण्णं - सम्भिन्न-सम्पूर्ण, **लोगणालिं -** लोकनाड़ी को।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! अनुत्तरौपपातिक देव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते देखते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अनुत्तरौपपातिक देव संपूर्ण लोकनाड़ी को अवधिज्ञान से जानते देखते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय निरूपित किया गया है जो इस प्रकार है - पहले दूसरे देवलोक के देवों के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी का नीचे का चरमान्त, तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र तथा ऊपर अपने अपने विमान की ध्वजा पताका तक है। तीसरे चौथे देवलोक के देवों के अवधिज्ञान का विषय पहले दूसरे देवलोक के देवों के समान है किन्तु इतना अन्तर है कि नीचे दूसरे शर्कराप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते देखते हैं। पांचवें छठे देवलोक के देव नीचे तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, सातवें आठवें देवलोक के देव नीचे चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नवें से बारहवें देवलोक के देव नीचे पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नवग्रैवेयक के नीचे की और बीच की त्रिक के देव नीचे छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक और ऊपर की त्रिक के देवता नीचे सातवीं तमःतमः प्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते देखते हैं। ये सभी तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र और पर अपने विमान की ध्वजा पताका तक जानते देखते हैं। पांच अनुत्तर विमान के देवता संभिन्न लोकनाड़ी अपनी ध्वजा पताका के ऊपर का भाग छोड़ कर परिपूर्ण चौदह राजू प्रमाण समस्त लोक को देखते हैं।

प्रश्न - वैमानिक देव-देवियों का जघन्य अवधि अंगुल का असंख्यात भाग कैसे समझना? शेष दोनों का क्यों नहीं?

उत्तर - श्री जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण आचार्य रचित ग्रन्थ विशेषावश्यक भाष्य गाथा ७०२ में वैमानिकों का जघन्य अवधि अंगुल के असंख्यातवें भाग का बताया है - वह परभव से लाये गये अवधि की अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् जो (तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य) परभव से अवधि लेकर वैमानिक में उत्पन्न होता है, उसे उत्पन्न होते समय परभव (तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य भव) जितना अवधि ही रहता है, देवभव सम्बन्धी अवधि बाद में (पर्याय अवस्था में) उत्पन्न होता है। वैमानिकों का अवधि अत्यधिक बड़ा होने से परभव से लाया अवधि अपर्याप्त अवस्था तक रहने से वैमानिकों का जघन्य अवधि अंगुल का असंख्यातवां भाग बताया है। अपर्याप्त अवस्था में देवभव का विशाल अवधि बढ़ नहीं पाता है। बाद में बढ़ जाने पर पर्याप्त अवस्था में ही बढ़ता है। भवनपति आदि देवों में वैमानिकों जैसा विशाल अवधि नहीं होने से - अपर्याप्त अवस्था से ही देवभव जितना अवधि का क्षेत्र हो जाता है। अतः उनके जघन्य अवधि २५ योजन का बताया है

दूसरी मान्यता - श्रावक श्री दलपतरायजी कृत 'नवतत्त्व प्रश्नोत्तरी में वैमानिकों का जघन्य अवधि अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना बताया है - उसका आशय वे अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने सूक्ष्म द्रव्यों को जानने वाले होते हैं शेष देव नहीं जानते हैं।' परभव से अवधि लाने वालों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम से कम अंगुल का असंख्यातवां भाग एवं अधिक से अधिक देशोन लोक तक ही हो सकता है। पूर्व भव से बिना अवधि लाये भी वैमानिकों में उत्पन्न हो सकते हैं। भवनपति व्यंतर में भी पूर्वभव से अवधि लेकर उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु इनका अवधि वैमानिकों जितना विशाल नहीं होने से देवभव के प्रथम समय में ही देवभव सम्बन्धी अवस्थित अवधि हो जाता है। अतः उनके परभवज (परभव से लाये) अवधि की क्षेत्र सीमा वहाँ नहीं रहती है।

आगम में अपनी अपनी निकाय (जाति) के देवों के जघन्य उत्कृष्ट अवधि का क्षेत्र बताया है, वह त्रैकालिक देवों में से सबसे न्यूनतम को जघन्य एवं अधिकतम को उत्कृष्ट अवधि कहा है।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों में परस्पर अवधि की तुलना में क्षेत्र एवं स्थिति से समान होता है किन्तु पर्यायों में परस्पर अनन्त गुणा फर्क होता है। जैसे दो डाक्टर समान डिग्री वाले (एम. डी. या एम. एस. या एम. बी. बी. एस.) होने पर भी अनुभव (पर्याय) में फर्क होता है। वैसे ही देवों में भी क्षेत्र सीमा सरीखी होने पर भी उस क्षेत्र में रहे हुए पुद्‌गलों को देखने में न्यूनाधिकता, गहराई, क्षमता में अन्तर हो जाता है। इसी प्रकार अन्य समान स्थिति वाले देवों के अवधि का उत्कृष्ट क्षेत्र समान ध्यान में आता है। किन्तु पर्यायों की अपेक्षा न्यूनाधिकता तो उनमें भी रहती ही है।

शंका - भवनपति, व्यंतर देवों के जन्म से ही देवभव जितना अवधि हो जाता है, किन्तु वैमानिकों के जन्म से ही क्यों नहीं?

समाधान - जैसे गाय भैंसादि के बच्चे (बछड़े, पाड़े) जन्म के दिन ही चलते फिरते हो जाते हैं पक्षियों के बच्चे कुछ ही समय में उड़ने लग जाते हैं, परन्तु उनसे विशिष्ट होते हुए भी मनुष्य को चलने फिरने में महीनों समय लग जाता है। तथापि बाद में अधिक विकास तो मनुष्य ही कर सकता है। इसी प्रकार वैमानिक विशिष्ट होते हुए भी उनका अवधि पर्याप्त होने के बाद ही देवभव जितना बनता है। जैसे आम्र विशिष्ट वृक्ष होते हुए भी वर्षों के बाद फल देता है जबकि तरबूज आदि की बेले-कुछ महीनों में ही बड़े-बड़े फल दे देती है।

३. संस्थान द्वार

णेरइया णं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! तप्पागारसंठिए पण्णत्ते।

असुरकुमाराणं पुच्छा।

गोयमा! पल्लग संठिए एवं जाव थणियकुमाराणं।

कठिन शब्दार्थ - **तप्पागारसंठिए** - तप्र आकार संस्थित, **पल्लगसंठिए** - पल्लक संस्थित-पल्लक के आकार का।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का अवधिज्ञान किस संस्थान-आकार वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का अवधिज्ञान तप्र के संस्थान वाला कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों का अवधिज्ञान किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों का अवधिज्ञान पल्लक जैसे संस्थान-आकार वाला है। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिकों के अवधिज्ञान का संस्थान 'तप्र' के जैसा कहा गया है। तप्र का अर्थ टीका में 'नदी के प्रवाह में दूर से बहता हुआ काष्ठ समुदाय' बताया है। यह काष्ठ समुदाय लम्बा और त्रिकोण होता है इसी तरह नैरयिक के अवधिज्ञान का संस्थान भी लम्बा और त्रिकोण होता है। थोकड़ों में नैरयिकों के अवधिज्ञान का आकार तिपाई जैसा कहा है। उसका आशय भी उपरोक्त ही समझना चाहिये।

भवनपति देवों के अवधिज्ञान का संस्थान पल्लक (पल्लग-पाला) जैसा कहा गया है। 'पल्लक' लाट देश में प्रसिद्ध धान्य रखने का विशेष प्रकार का पात्र होता है जो नीचे और ऊपर लम्बा होता है तथा ऊपरिभाग में कुछ संकडा होता है।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! णाणासंठाण संठिए, एवं मणूसाण वि।

वाणमंतराणं पुच्छा।

गोयमा! पडह संठाण संठिए।

जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा! झल्लरिसंठाण संठिए पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - **पडह संठाण संठिए** - पटह (ढोल) के संस्थान से संस्थित, **झल्लरि संठाण संठिए** - झल्लरी (झालर) के संस्थान वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अवधिज्ञान का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अवधिज्ञान नाना प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है। मनुष्यों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

प्रश्न - वाणव्यंतर देवों के अवधि संस्थान के विषय में प्रश्न?

उत्तर - हे गौतम! वाणव्यंतरदेवों का अवधिज्ञान पटह (ढोल) के आकार का कहा गया है।

प्रश्न - ज्योतिषी देवों के अवधि संस्थान के विषय में प्रश्न?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवों का अवधिज्ञान झालर के आकार का कहा गया है।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों का अवधिज्ञान अनेक आकार का कहा गया है। जैसे स्वयंभूरमण समुद्र में मत्स्य नाना आकार के होते हैं वहाँ मत्स्यों की वलय की आकृति वाले संस्थान का निषेध किया है किन्तु तिर्यंचों और मनुष्यों के अवधि का संस्थान तो वलयाकार भी होता है कहा भी है -

णाणागारो तिरियमणुएसु मच्छा सयंभूरमणे व्व।

तत्थ वलयं निसिद्धं तस्स पुण तयंपि होज्जाहि॥

वाणव्यंतर देवों के पटह की आकृति वाला अवधि है। पटह वाद्य विशेष है जैसे ढोल कहा जाता है वह कुछ लम्बा और ऊपर नीचे समान परिमाण वाला होता है। ज्योतिषी देवों का अवधि झालर के आकार जैसा है। दोनों ओर से विस्तीर्ण और चमड़े से मढ़े हुए मुख वाला वलय की आकृति वाला वाद्य विशेष झालर होता है। झालर एक प्रकार का गोलाकार विस्तीर्ण बाजा विशेष होता है। जो लगभग छोटी ढोलक जैसा होता है।

सोहम्मगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! उड्ढमुयंगागारसंठिए पण्णत्ते, एवं जाव अच्चुय देवाणं।

गेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा! पुप्फचंगेरिसंठिए पण्णत्ते।

अणुत्तरोववाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जवणालिया संठिए ओही पण्णत्ते॥ ६७०॥

कठिन शब्दार्थ - उड्ढमुयंगागारसंठिए - ऊर्ध्व मृदंग के आकार वाला, मृदंग एक वाद्य विशेष होता है जो नीचे से विस्तीर्ण और ऊपर से संकुचित होता है वह खड़ा मृदंग समझना चाहिये। **पुप्फचंगेरि संठिए** - पुष्प चंगेरी (गूंथे हुए फूलों की शिखा सहित चंगेरी-छबडी या टोकरी) के आकार वाला **जवणालिया संठिए** - यवनालिका-कन्या की चोली-के आकार वाला।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! सौधर्म देवों के अवधिज्ञान का आकार किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म देवों के अवधिज्ञान का आकार ऊर्ध्व (खड़ी) मृदंग जैसा है। इसी प्रकार यावत् अच्युत देवों तक समझना चाहिये।

प्रश्न - ग्रैवेयक देवों के अवधि संस्थान के विषय में पूर्ववत् प्रश्न।

उत्तर - हे गौतम! ग्रैवेयक देवों का अवधिज्ञान पुष्प चंगेरी के आकार का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! अनुत्तरौपातिक देवों के अवधिज्ञान का आकार कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अनुत्तरौपपातिक देवों का अवधिज्ञान यवनालिका के आकार का कहा गया है।

विवेचन - बारह देवलोक के देवों के अवधिज्ञान का संस्थान खड़ी मृदंग के आकार का होता है। नवग्रैवेयक देवों के अवधिज्ञान का संस्थान (गूंथे हुए फूलों के शिखर वाला) फूलों की चंगेरी जैसा तथा अनुत्तर विमान के देवों के अवधिज्ञान का संस्थान यवनालिका (कन्या की चोली-कंचुक) जैसा होता है।

नारक आदि दण्डकों में अवधि क्षेत्र का आकार (संस्थान) 'वृहत् संग्रहणी' आदि ग्रन्थों में पाया जाता है। जिज्ञासुओं को उन उन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

४-५ आभ्यंतर बाह्य द्वार

णेरइया णं भंते! ओहिस्स वि अंतो, बाहिं?

गोयमा! अंतो, णो बाहिं। एवं जाव थणियकुमारा।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! णो अंतो, बाहिं।

मणूसाणं पुच्छा।

गोयमा! अंतो वि बाहिं वि।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ६७१॥

कठिन शब्दार्थ - अंतो - आभ्यंतर (अंदर), **बाहिं** - बाह्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक अवधिज्ञान के अंतः-अंदर-मध्यवर्ती मध्य में रहने वाले होते हैं या बाह्य-बाहर होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक अवधिज्ञान के अंतः-अंदर होते हैं, बाह्य नहीं होते। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच के विषय में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवधिज्ञान के अंतः-अंदर नहीं होते, बाह्य होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य अवधिज्ञान के अंतः होते हैं या बाह्य होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य अवधिज्ञान के अन्दर भी होते हैं और बाहर भी होते हैं। वाणव्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जो अवधिज्ञान निरन्तर अवधिज्ञानी के साथ रहता है और सभी दिशाओं में अपने जानने योग्य क्षेत्र को जानता है उसे आभ्यंतर अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान सदा अवधिज्ञानी के साथ नहीं रहता, बीच-बीच में विच्छिन्न हो जाता है वह बाह्य अवधिज्ञान है। आभ्यंतर अवधिज्ञान जन्म से साथ आता है और बाह्य अवधिज्ञान पीछे से उत्पन्न होता है।

नैरयिक, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में आभ्यंतर अवधिज्ञान होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में बाह्य अवधिज्ञान होता है। मनुष्य में आभ्यंतर और बाह्य दोनों अवधिज्ञान होते हैं।

६-७ देश सर्व अवधिद्वार

णेरइया णं भंते! किं देसोही सव्वोही?

गोयमा! देसोही, णो सव्वोही, एवं जाव थणियकुमारा।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! देसोही, णों सव्वोही।

मणूसाणं पुच्छा।

गोयमा! देसोही वि सव्वोही वि।

वाणमंतरजोइसियवेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ६७२॥

कठिन शब्दार्थ - देसोही - देशावधि, **सव्वोही** - सर्वावधि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों को देशावधि होता है या सर्वावधि होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का अवधिज्ञान देशावधि होता है, सर्वावधि नहीं। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अवधिज्ञान देश अवधि होता है या सर्वावधि?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अवधिज्ञान देशावधि होता है सर्वावधि नहीं।

प्रश्न - मनुष्यों के अवधिज्ञान विषयक पृच्छा।

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों का अवधिज्ञान देशावधि भी होता है और सर्वावधि भी होता है वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - परम अवधिज्ञान से छोटा अवधिज्ञान, देशावधि कहलाता है और परम अवधिज्ञान सर्व अवधि कहलाता है। नैरयिकों, चारों प्रकार के देवों (भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक) और तिर्यंच पंचेन्द्रियों में देश अवधि होता है, सर्व अवधि नहीं। मनुष्यों में देश अवधि भी होता है और सर्व अवधि भी होता है क्योंकि उनमें परम अवधिज्ञान भी संभव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेष द्वार

णेरइयाणं भंते! ओही किं आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हीयमाणए, पडिवाई, अप्पडिवाई, अवट्ठिए, अणवट्ठिए?

गोयमा! आणुगामिए, णो अणाणुगामिए, णो वड्ढमाणए, णो हीयमाणए णो पडिवाई, अप्पडिवाई, अवट्ठिए, णो अणवट्ठिए एवं जाव थणियकुमाराणं।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! आणुगामिए वि जाव अणवट्ठिए वि, एवं मणूसाण वि।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ६७३॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तेत्तीसइमं ओहिपयं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - आणुगामिए - आनुगामिक, **अणाणुगामिए** - अनानुगामिक, **वड्ढमाणए** - वर्धमान, **हीयमाणए** - हीयमान, **पडिवाई** - प्रतिपाती, **अप्पडिवाई** - अप्रतिपाती, **अवट्ठिए** - अवस्थित, **अणवट्ठिए** - अनवस्थित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का अवधिज्ञान क्या आनुगामिक होता है, अनानुगामिक होता है, वर्द्धमान होता है, हीयमान होता है, प्रतिपाती होता है, अप्रतिपाती होता है, अवस्थित होता है या अनवस्थित होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का अवधिज्ञान आनुगामिक होता है किन्तु अनानुगामिक नहीं होता वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाती और अनवस्थित नहीं होता, अप्रतिपाती और अवस्थित होता है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अवधिज्ञान आनुगामिक होता है आदि पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अवधिज्ञान आनुगामिक भी होता है यावत् अनवस्थित भी होता है। इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में भी समझना चाहिये।

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - आनुगामिक अवधिज्ञान आदि का स्वरूप इस प्रकार है -

१. आनुगामिक (अनुगामी) - जो अवधिज्ञान ज्ञानी के साथ जाता है वह आनुगामिक अवधिज्ञान है। जैसे मनुष्य दीपक को साथ में लेकर चलता है तो प्रकाश उसके साथ-साथ जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अनानुगामिक (अननुगामी) - जो अवधिज्ञान जहाँ उत्पन्न हुआ है वहीं रहता है, ज्ञानी के उस स्थान से चले जाने पर जो ज्ञानी के साथ नहीं जाता और ज्ञानी के वापिस वहाँ आने पर जो पुनः हो जाता है वह अनानुगामिक अवधिज्ञान कहलाता है। जैसे धूणी का प्रकाश धूणी के आसपास रहता है धूणी से दूर जाने पर धूणी का प्रकाश साथ में नहीं जाता और धूणी पर लौट आने पर पुनः प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

३. वर्द्धमान - जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद परिणाम विशुद्धि के साथ बढ़ता है वह वर्द्धमान अवधिज्ञान कहलाता है।

४. हीयमान - जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद परिणाम अविशुद्धि के कारण हीन होता जाय उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

५. प्रतिपाती - गिरने के स्वभाव वाला अवधिज्ञान प्रतिपाती कहलाता है।

६. अप्रतिपाती - जिस अवधिज्ञान का स्वभाव प्रतिपाती नहीं है जो भव पर्यंत स्थिर रहने वाला है वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान है।

७. अवस्थित - स्थिर रहने वाला अर्थात् उस भव तक अवधिज्ञान एक सरीखा रहता है तथा कदाचित् जो अवधिज्ञान जन्मान्तर होने पर भी आत्मा में अवस्थित रहता है या केवलज्ञान की उत्पत्ति पर्यन्त ठहरता है वह अवस्थित अवधिज्ञान कहलाता है।

८. अनवस्थित - एक सरीखा नहीं रहने वाला अवधिज्ञान अनवस्थित कहलाता है।

नैरयिकों और चारों जाति के देवों का अवधिज्ञान आनुगामिक, अप्रतिपाति और अवस्थित होता है। मनुष्यों और तिर्यंच पंचेन्द्रियों में अवधिज्ञान के उपरोक्त सभी भेद पाते हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती का तेतीसवां अवधिपद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउत्तीसइमं परियारणापयं

चौतीसवां परिचारणा पद

प्रज्ञापना सूत्र के तेतीसवें पद में ज्ञान के परिणाम विशेष रूप अवधिज्ञान का निरूपण किया गया है। अब इस चौतीसवें प्रवीचार (परिचारणा) पद में वेद परिणाम विशेष रूप परिचारणा का वर्णन किया जाता है। जिसकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

अणंतरागयाहारे १ आहारे भोयणाइ य २।

पोग्गला णेव जाणंति ३ अज्झवसाणा ४ य आहिया॥ १॥

सम्मत्तस्साहिगमे ५ तत्तो परियारणा ६ य बोद्धव्वा।

काए फासे रूवे सद्दे य मणे य अप्प बहुं ७॥ २॥

भावार्थ - १. अनन्तरागत आहार २. आहार के विषय में आभोग या अनाभोगपना ३. आहार रूप में ग्रहण किये हुए पुद्गलों को नहीं जानते ४. अध्यवसान-अध्यवसायों का कथन ५. सम्यक्त्व अभिगम-सम्यक्त्व की प्राप्ति ६. काय, स्पर्श, रूप, शब्द और मन से संबंधित परिचारणा और ७. अंत में परिचारणा करने वालों का अल्प बहुत्व-इन सात द्वारों से चौतीसवें पद का निरूपण किया गया है।

विवेचन - चौतीसवें पद में प्रतिपाद्य विषय की प्ररूपणा दो संग्रहणी गाथाओं में वर्णित उपरोक्त सात द्वारों से समझनी चाहिये।

१. अनन्तरागत आहार द्वार

णेरइया णं भंते! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया, तओ परियाइणया तओ परिणामणया, तओ परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया?

हंता गोयमा! णेरइया णं अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया तओ परियाइणया, तओ परिणामणया, तओ परियारणया, तओ पच्छा विउव्वणया।

कठिन शब्दार्थ - **अणंतराहारा** - अनंतराहारक-उत्पत्ति क्षेत्र की प्राप्ति के समय ही आहार करने वाले, **णिव्वत्तणया** - निर्वर्तना-शरीर की निष्पत्ति, **परियाइणया** - पर्यादानता-चारों ओर से पुद्गलों को ग्रहण करना, **परिणामणया** - परिणामना-गृहीत पुद्गलों का इन्द्रिय आदि रूप में परिणाम-परिणत होना, **परियारणया** - परिचारणा-शब्दादि विषयों का उपभोग, **विउव्वणया** - विकुर्वणा-वैक्रिय लब्धि से अनेक प्रकार के अनेक रूप बनाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक अनन्तराहारक-उत्पत्ति क्षेत्र प्राप्ति के साथ ही (अनन्तर) आहार करने वाले होते हैं? इसके बाद निर्वर्तना - शरीर की निष्पत्ति होती है? फिर पर्यादानता-यथायोग्य रूप से अंग और प्रत्यंगों से लोमाहार आदि द्वारा चारों ओर से पुद्गलों का ग्रहण करते हैं फिर परिणामना - गृहीत पुद्गलों को इन्द्रिय आदि रूप में परिणत करते हैं? तत्पश्चात् परिचारणा-विषयभोग और उसके बाद विकुर्वणा करते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! नैरयिक अनन्तराहारक होते हैं फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है तत्पश्चात् पर्यादानता और परिणामना होती है तत्पश्चात् वे परिचारणा करते हैं और विकुर्वणा करते हैं।

विवेचन - नैरयिक उत्पत्ति के अनन्तर ही आहार करते हैं, फिर शरीर बनाते हैं, फिर पुद्गलों का पर्यादान करते हैं फिर इन्द्रिय आदि रूप में परिणत करते हैं फिर शब्द आदि विषयों के भोग रूप परिचारणा करते हैं और फिर वैक्रियं करते हैं।

असुरकुमारा णं भंते! अणंतराहारा, तओ णिव्वत्तणया, तओ परियाइणया, तओ परिणामणया, तओ विउव्वणया, तओ पच्छा परियारणया?

हंता गोयमा! असुरकुमारा अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया जाव तओ पच्छा परियारणया एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या असुरकुमार अनन्तराहारक होते हैं? फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है? फिर वे पर्यादानता व परिणामना करते हैं। तत्पश्चात् क्रमशः विकुर्वणा और परिचारणा करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार अनन्तराहारी-उत्पत्ति क्षेत्र की प्राप्ति के समय ही आहार करने वाले होते हैं फिर शरीर की उत्पत्ति होती है यावत् फिर वे परिचारणा करते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार पर्यंत समझना चाहिये।

विवेचन - असुरकुमार आदि देवों में विकुर्वणा पहले होती है और परिचारणा बाद में जब कि नैरयिकों आदि में परिचारणा के बाद विकुर्वणा का क्रम है। देवों का स्वभाव ही ऐसा है कि विशिष्ट शब्दादि के उपभोग की अभिलाषा होने पर पहले वे वैक्रिय रूप बनाते हैं तत्पश्चात् परिचारणा करते हैं।

पुढवीकाइया णं भंते! अणंतराहारा, तओ णिव्वत्तणया, तओ परियाइणया, तओ परिणामणया, तओ परियारणया, तओ विउव्वणया?

हंता गोयमा! तं चेव जाव परियारणया, णो चेव णं विउव्वणया। एवं जाव चउरिंदिया, णवरं वाउक्काइया पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य जहा णेरइया। वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा असुरकुमारा॥ ६७४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या पृथ्वीकायिक अनन्तराहारक होते हैं? फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है तत्पश्चात् पर्यादानता, परिणामना, फिर परिचारणा और फिर क्या विकुर्वणा होती है?

उत्तर - हाँ गौतम! पृथ्वीकायिक जीव अनन्तराहारक होते हैं यावत् परिचारणा पर्यन्त पूर्ववत् समझना चाहिये किन्तु वे विकुर्वणा नहीं करते। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक कहना चाहिये विशेषता यह है कि वायुकायिक जीव, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के विषय में नैरयिकों के समान समझना चाहिए। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों की वक्तव्यता असुरकुमारों की वक्तव्यता के समान कहनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक आदि चौबीस दण्डकों के जीवों के विषय में अनन्तराहार, निष्पत्ति, पर्यादानता, परिणामना, परिचारणा और विकुर्वणा के क्रम का निरूपण किया गया है।

नैरयिक, उत्पत्ति क्षेत्र में पहुँचते ही समय के व्यवधान के बिना ही आहार करते हैं तत्पश्चात् उनके शरीर की निर्वर्तना (निष्पत्ति-रचना) होती है। शरीर निष्पत्ति के बाद अंग प्रत्यंगों द्वारा लोमाहार आदि से पुद्गलों का पर्यादान-ग्रहण होता है। फिर उन गृहीत पुद्गलों का शरीर इन्द्रिय आदि के रूप में परिणमन होता है। परिणमन के बाद वे परिचारणा करते हैं और तत्पश्चात् विकुर्वणा करते हैं। नैरयिकों की तरह ही वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के विषय में समझना चाहिये। चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय जीव विकुर्वणा नहीं करते अतः विकुर्वणा को छोड़ कर शेष बोल कह देना। चारों जाति के देवों का कथन भी नैरयिकों की तरह समझना किन्तु देवों में स्वभाव से ही पहले विकुर्वणा होती है तत्पश्चात् वे परिचारणा करते हैं। कहा भी है -

पुव्वं विउव्वणा खलु पच्छा परियारणा सुरगणाणं।

सेसाणं पुव्व परियारणा उ पच्छा विउव्वणया॥

अर्थात् - सभी देवों में पहले विकुर्वणा और बाद में परिचारणा होती है जबकि शेष जीवों में पहले परिचारणा और फिर विकुर्वणा होती है।

२. आभोग अनाभोग आहार द्वार

णेरइयाणं भंते! आहारे किं आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए?

गोयमा! आभोगणिव्वत्तिए वि अणाभोगणिव्वत्तिए वि, एवं असुरकुमाराणं जाव वेमाणियाणं, णवरं एगिंदियाणं णो आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए।

कठिन शब्दार्थ - आभोगणिव्वत्तिए - आभोग-निर्वर्तित-इच्छा पूर्वक, **अणाभोगणिव्वत्तिए** - अनाभोगनिर्वर्तित-बिना इच्छा से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! नैरयिकों का आहार आभोग-निर्वर्तित होता है या अनाभोग निर्वर्तित?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का आहार आभोग निर्वर्तित भी होता है और अनाभोग निर्वर्तित भी होता है। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये। विशेषता यह है कि एकेन्द्रिय जीवों का आहार आभोग निर्वर्तित नहीं होता, अनाभोग निर्वर्तित होता है।

विवेचन - आहार के दो भेद हैं - १. आभोग निर्वर्तित और २. अनाभोग निर्वर्तित। इच्छा पूर्वक ग्रहण किया जाने वाला आहार आभोग निर्वर्तित कहलाता है और इच्छा के बिना ही ग्रहण किया जाने वाला रोमाहार आदि अनाभोग निर्वर्तित आहार कहलाता है। एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष १९ दण्डकों के जीव दोनों प्रकार का आहार करते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में केवल अनाभोग निर्वर्तित आहार ही होता है, उनके आभोग निर्वर्तित आहार नहीं होता।

टीकाकार कहते हैं कि जीव जब मनो व्यापार पूर्वक आहार ग्रहण करता है तब आभोग निर्वर्तित और इसके अलावा शेष समय में अनाभोग निर्वर्तित आहार होता है।

३. पुद्गल ज्ञान द्वार

णेरइयाणं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति ते किं जाणंति पासंति आहारेंति उदाहु ण जाणंति ण पासंति आहारेंति?

गोयमा! ण जाणंति ण पासंति आहारेंति, एवं जाव तेइंदिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं क्या वे उन्हें जानते देखते हैं और उनका आहार करते हैं अथवा नहीं जानते, नहीं देखते हैं किन्तु आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं वे न तो जानते हैं और न देखते हैं किन्तु उनका आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् तेइन्द्रिय तक कहना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक आहार के पुद्गलों को नहीं जानते हैं और देखते भी नहीं है किन्तु वे आहार के पुद्गलों का आहार करते हैं। कारण यह है कि नैरयिक लोमाहार करते हैं और लोमाहार के पुद्गल बहुत सूक्ष्म होते हैं जो उनके अवधिज्ञान के विषय नहीं होते इसलिए वे उन्हें जानते नहीं हैं और चक्षुइन्द्रिय के अविषय होने से वे उनके पुद्गलों को देखते भी नहीं है। बेइन्द्रिय भी नहीं जानते क्योंकि वे मिथ्याज्ञानी होने से उनको आहार के पुद्गलों का सम्यग्ज्ञान नहीं होता। बेइन्द्रियों में मति अज्ञान है और वह भी अस्पष्ट है अतः वे अपने द्वारा ग्रहण किये हुए प्रक्षेपाहार को भी सम्यक् रूप से नहीं जानते और चक्षुइन्द्रिय नहीं होने से देखते भी नहीं है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय भी ज्ञान दर्शन रहित होने से जानते देखते नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउरिंदिया णं पुच्छा?

गोयमा! अत्थेगइया ण जाणंति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं क्या उन्हें जानते देखते हैं और उनका आहार करते हैं अथवा नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! कई चउरिन्द्रिय जीव आहार के रूप में ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों को नहीं जानते, किन्तु देखते हैं और आहार करते हैं और कई चउरिन्द्रिय जीव न तो जानते हैं न देखते हैं किन्तु आहार करते हैं।

विवेचन - कितनेक चउरिन्द्रिय जीव ऐसे होते हैं जो आहार रूप ग्रहण किये हुए पुद्गलों को जानते नहीं क्योंकि वे मिथ्याज्ञानी होते हैं और बेइन्द्रियों की तरह उनका मति अज्ञान भी अस्पष्ट होता है किन्तु चक्षु इन्द्रिय होने से वे देखते हैं जैसे कि मक्खी आदि गुड़ आदि वस्तुओं को देखती है और उनका आहार करती है। अन्य कितनेक चउरिन्द्रिय जीव ऐसे होते हैं जो मिथ्याज्ञानी होने से जानते नहीं किन्तु अंधकार आदि के कारण चक्षु का उपयोग नहीं लगने से वे देख भी नहीं पाते हैं पर आहार करते हैं।

चौरेन्द्रिय प्रक्षेपाहार के स्वरूप को नहीं जानता है। परन्तु चक्षु होने से देखता है। कितनेक अंधकार तथा अंधे हो जाने इत्यादि कारणों से नहीं देखते हैं। चौरेन्द्रिय ओजाहार, रोमाहार को नहीं जानते नहीं देखते-आहार करते हैं। प्रक्षेपाहार भी रात्रि आदि में कभी आँख विकृत हो जाने से नहीं जानते नहीं देखते आहार करते हैं। बादर प्रक्षेपाहार को नहीं जानते देखते आहार करते हैं। चौरेन्द्रिय एवं असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कवलाहार की अपेक्षा समझना। क्योंकि चक्षु के द्वारा रोमाहार देखना संभव नहीं है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया णं पुच्छा।

गोयमा! अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति? अत्थेगइया जाणंति ण पासंति आहारेंति २, अत्थेगइया ण जाणंति पासंति आहारेंति ३, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति ४ एवं जाव मणुस्साण वि। वाणमंतर जोइसिया जहा णेरइया।

भावार्थ - प्रश्न - तिर्यंच पंचेन्द्रियों के विषय में पूर्ववत् पृच्छा।

उत्तर - हे गौतम! १. कई पंचेन्द्रिय तिर्यंच ग्रहण किये जाने वाले आहार के पुद्गलों को जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं २. कई जानते हैं देखते नहीं और आहार करते हैं ३. कई जानते नहीं, देखते हैं और आहार करते हैं और ४. कई न तो जानते हैं, न देखते हैं किन्तु आहार करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के विषय में समझना चाहिये। वाणव्यंतरों और ज्योतिषियों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रक्षेपाहार की अपेक्षा चौभंगी इस प्रकार समझनी चाहिये - १. कितनेक पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्यग्ज्ञानी होने से प्रक्षेपाहार को जानते हैं चक्षुइन्द्रिय होने से देखते हैं और आहार करते हैं २. कितने सम्यग्ज्ञानी होने से यथावस्थित परिज्ञान होने के कारण जानते हैं परन्तु अंधकार आदि में चक्षुइन्द्रिय के अनुपयोग से देखते नहीं हैं ३. कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रिय मिथ्याज्ञानी होने के कारण जानते नहीं, किन्तु चक्षुइन्द्रिय के उपयोग से देखते हैं ४. कितनेक मिथ्याज्ञानी होने से जानते नहीं, चक्षुइन्द्रिय के उपयोग के अभाव में देखते नहीं किन्तु आहार करते हैं।

लोमाहार की अपेक्षा चौभंगी इस प्रकार हैं - १. कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रिय अवधिज्ञान का विषय होने के कारण लोमाहार को जानते हैं, तथाप्रकार के क्षयोपशम होने से और इन्द्रिय सामर्थ्य अति विशुद्ध होने से देखते हैं और आहार करते हैं २. कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रिय अवधिज्ञान से रहित होने के कारण जानते नहीं, इन्द्रिय सामर्थ्य के अभाव में देखते भी नहीं हैं ३. कितनेक जानते नहीं किन्तु इन्द्रिय सामर्थ्य होने से देखते हैं और ४. कितनेक मिथ्याज्ञान होने से, अवधिज्ञान रहित होने से या अवधिज्ञान के विषय से अतीत होने से जानते नहीं और तथाप्रकार के इन्द्रिय सामर्थ्य के अभाव से देखते भी नहीं हैं। किन्तु आहार करते हैं इसी प्रकार मनुष्यों में भी लोमाहार और प्रक्षेपाहार की अपेक्षा चौभंगियाँ समझ लेनी चाहिये।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि श्रावक-शिक्षितादि हो, विशिष्टज्ञानी अवधिज्ञानी आदि आहार के स्वरूप को जानते हैं आँखों से देखते हैं या ज्ञान से भी देख सकते हैं तथा आहार ग्रहण करते हैं। सूक्ष्म आहार होने से जानते हैं परन्तु देखते नहीं हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय श्रावक '२८८ बोलों से आहार ग्रहण किया जाता है' इत्यादि मति, श्रुत से जानता है व चक्षुरिन्द्रिय से देखता है। परन्तु चित्त विक्षिप्तता व अनाभोगादि कारणों से कोई नहीं जानते हैं तथा अंधे व अन्धकार आदि कारणों से नहीं देखते हैं।

टीकाकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय व मनुष्य के लिए प्रक्षेपाहार तो मतिश्रुत से तथा रोमाहार अवधि से जानना कहते हैं। परन्तु रोमाहार के पुद्गल स्थूल हों तो जैसे-पानी से स्नान करना, अनेक प्रकार के मालिश द्रव्यों से मालिश करना रोमाहार है-ऐसे द्रव्यों को मति-श्रुत से भी जानना संभव लगता है। सूक्ष्म रोमाहार के पुद्गल तो अवधि से ही जानते हैं। अतः रोमाहार की अपेक्षा भी अवधि का विषय हो तो यथासंभव चतुर्भंगी घटा लेना चाहिए।

नैरयिकों की तरह वाणव्यंतरों और ज्योतिषी देवों के विषय में समझना चाहिये।

वेमाणियाणं पुच्छा?

गोयमा! अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-"वेमाणिया अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति?"

गोयमा! वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य, एवं जहा इंदियउद्देसए पढमे भणियं तहा भाणियव्वं जाव से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ० ॥ ६७५ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं क्या वे उनको जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं अथवा वे न जानते हैं, न देखते हैं और आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! कई वैमानिक देव जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं और कई न जानते हैं, न देखते हैं, आहार करते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि - १. कई वैमानिक देव जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं और २. कई वैमानिक देव नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं किन्तु आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और २. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। इस प्रकार जैसे प्रथम इन्द्रिय उद्देशक में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी यावत् इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा गया है तक कहना चाहिये।

विवेचन - वैमानिक देवों के दो भेद हैं - १. मायी मिथ्यादृष्टि और २. अमायी सम्यग्दृष्टि। मायी मिथ्यादृष्टि देव ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के अन्त तक होते हैं जबकि अमायी सम्यग्दृष्टि देव अनुत्तर विमानवासी होते हैं। इस विषय में मूल टीकाकार कहते हैं -

"वेमाणिया मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नगा जाव उवरिमगेवेज्जा, अमायिसम्मदिट्ठी-उववण्णगा अनुत्तरसुरा एवं गृह्यन्ते" इति-

इनमें जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव हैं अर्थात् ऊपर की त्रिक के ऊपर के ग्रैवेयक तक के देव हैं वे मन से-संकल्पमात्र से भक्षण करने योग्य आहार के परिणाम के योग्य पुद्गलों को अवधिज्ञान से नहीं जानते हैं क्योंकि वे पुद्गल उनके अवधिज्ञान का विषय नहीं होते और आँखों से देखते भी नहीं क्योंकि आँखों का तथाप्रकार का सामर्थ्य नहीं है। जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक अर्थात् अनुत्तर विमानवासी देव हैं वे दो प्रकार के हैं - १. अनन्तरोपपन्नक-प्रथम समय में उत्पन्न यानी जिनको उत्पन्न हुए एक भी समय का अन्तर नहीं पडा है २. परम्परोपपन्नक - जिनको उत्पन्न हुए द्वितीय आदि समय हुआ है अर्थात् जिनको उत्पन्न होने में समय आदि का अन्तर पड़ा है। इनमें जो अनन्तरोपपन्नक हैं वे जानते नहीं, देखते नहीं क्योंकि प्रथम समय में उत्पन्न हुए होने से उनके अवधिज्ञान का उपयोग और चक्षुइन्द्रिय नहीं किन्तु जाने और देखे बिना ही आहार करते हैं। उनमें जो परम्परोपपन्नक हैं वे दो प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के हैं- १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक। जो अपर्याप्तक हैं वे जानते नहीं देखते नहीं क्योंकि पर्याप्तियाँ पूरी नहीं होने से अवधि आदि का उपयोग नहीं होता। जो पर्याप्तक हैं वे दो प्रकार के हैं - १. उपयोग सहित और २. उपयोग रहित। उनमें जो उपयोग सहित हैं वे जानते हैं क्योंकि उपयोग से यथाशक्ति ज्ञान से अपने विषय को जानने की अवश्य प्रवृत्ति होती है और आँख से देखते हैं क्योंकि उनका इन्द्रिय सामर्थ्य अधिक होता है। जो उपयोग रहित हैं वे जानते नहीं देखते नहीं क्योंकि उपयोग नहीं है।

टीकाकार 'अमायी सम्यग्दृष्टि' में मात्र अनुत्तर देवों को ही लेते हैं - परन्तु धारणा से प्रथमादि देवलोक के एक सागर झाझेरी स्थिति से ऊपर वाले 'अमायी सम्यग्दृष्टि' जान सकते हैं।

४. अध्यवसाय द्वार

णेरइयाणं भंते! केवइया अज्झवसाणा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

ते णं भंते! किं पसत्था अपसत्था?

गोयमा! पसत्था वि अपसत्था वि एवं जाव वेमाणियाणं।

कठिन शब्दार्थ - **अज्झवसाणा** - अध्यवसान (अध्यवसाय), **पसत्था** - प्रशस्त, **अपसत्था** - अप्रशस्त।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने अध्यवसाय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के असंख्यात अध्यवसाय कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अध्यवसाय प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिकों के असंख्यात अध्यवसाय होते हैं क्योंकि वे प्रतिसमय भिन्न-भिन्न अध्यवसाय वाले होते हैं और ये अध्यवसाय प्रशस्त (शुभ) भी होते हैं और अप्रशस्त (अशुभ) भी होते हैं इसी प्रकार चौबीस दण्डकों के विषय में समझना चाहिये।

५. सम्यक्त्व अभिगम द्वार

णेरइया णं भंते! किं सम्मत्ताभिगमी, मिच्छत्ताभिगमी, सम्मामिच्छत्ताभिगमी?

गोयमा! सम्मत्ताभिगमी वि मिच्छत्ताभिगमी वि सम्मामिच्छत्ताभिगमी वि, एवं जाव वेमाणियाणं, णवरं एगिंदिय विगलिंदिया णो सम्मत्ताभिगमी, मिच्छत्ताभिगमी णो सम्मामिच्छत्ताभिगमी॥ ६७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ- संम्मत्ताभिगमी - सम्यक्त्वाभिगामी-सम्यक्त्व की प्राप्ति वाला, **मिच्छत्ताभिगमी**-मिथ्यात्वाभिगामी-मिथ्यात्व की प्राप्ति वाला, **सम्मामिच्छत्ताभिगमी** - सम्यग्मिथ्यात्वाधिगामी-सम्यक्त्व मिथ्यात्व (मिश्र) की प्राप्ति वाला।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक सम्यक्त्वाधिगामी - सम्यक्त्व की प्राप्ति वाला होता है, मिथ्यात्व की प्राप्ति वाला होता है या सम्यग् मिथ्यात्व की प्राप्ति वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक सम्यक्त्व की प्राप्ति वाला भी होता है, मिथ्यात्व की प्राप्ति वाला भी होता है और सम्यग्-मिथ्यात्व की प्राप्ति वाला भी होता है। इसी प्रकार वैमानिकों तक समझना चाहिये किन्तु विशेषता है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय सम्यक्त्व प्राप्ति वाले नहीं होते, सम्यग्-मिथ्यात्व की प्राप्ति वाले नहीं होते किन्तु मिथ्यात्व की प्राप्ति वाले होते हैं। अभिगम और अधिगम दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हो सकते हैं। अतः दोनों शब्दों का प्रयोग सही है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों के जीवों में कौन-कौन से जीव सम्यक्त्वाभिगामी मिथ्यात्वाधिगामी और सम्यक्त्व-मिथ्यात्वाधिगामी हैं उसका निरूपण किया गया है। एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों को छोड़ कर शेष सभी जीव सम्यक्त्व की प्राप्ति वाले भी होते हैं, मिथ्यात्व की प्राप्ति वाले भी होते हैं और सम्यक्त्व मिथ्यात्व की प्राप्ति वाले भी होते हैं, सम्यक्त्व और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व की प्राप्ति वाले नहीं होते। यद्यपि कितनेक विकलेन्द्रिय जीवों को सास्वादन सम्यक्त्व पाया जाता है तथापि वे मिथ्यात्व की ओर ही अभिमुख होने के कारण सम्यक्त्व होने पर भी सूत्रकार ने उसकी यहां विवक्षा नहीं की है।

६. परिचारणा द्वार

देवा णं भंते! किं सदेवीया सपरियारा, सदेवीया अपरियारा, अदेवीया सपरियारा, अदेवीया अपरियारा?

गोयमा! अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा, अत्थेगइया देवा अदेवीया सपरियारा, अत्थेगइया देवा अदेवीया अपरियारा, णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा, तं चेव जाव णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा?

गोयमा! भवणवइ वाणमंतर जोइस सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा सदेवीया सपरियारा, सणंकुमारा माहिंद बंभलोगलंतगमहासुक्कसहस्सार-आणयपाणय-आरण अच्चुएसु कप्पेसु देवा अदेवीया सपरियारा, गेवेज्ज अणुत्तरोववाइया देवा अदेवीया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपरियारा, णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ - 'अत्थेगइया देवा सदेवीया सपरियारा, तं चेव जाव णो चेव णं देवा सदेवीया अपरियारा॥ ६७७॥'

कठिन शब्दार्थ - सपरियारा - सपरिचार-मैथुनसेवी, **अपरियारा** - अपरिचार-मैथुन सेवन रहित, **सदेवीया** - देवी सहित, **अदेवीया** - देवी रहित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या १. देव-देवियों सहित और सपरिचार-विषय सेवन करने वाले होते हैं अथवा २. देवियों सहित और अपरिचार होते हैं अथवा ३. देवी रहित और सपरिचार होते हैं अथवा ४ देवी सहित और अपरिचार होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. कई देव-देवियों सहित सपरिचार होते हैं २. कई देव-देवियों रहित सपरिचार होते हैं ३. कई देव-देवियों रहित और अपरिचार होते हैं किन्तु ४ किन्तु कोई भी देव-देवियों सहित अपरिचार नहीं होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि कई देव-देवियों सहित सपरिचार होते हैं यावत् देवियों सहित अपरिचार नहीं होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म तथा ईशान कल्प के देव देवियों सहित और सपरिचार-परिचार सहित होते हैं। सनत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में देव-देवियों रहित सपरिचार होते हैं। नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानवासी देव-देवी रहित और अपरिचार-परिचार रहित होते हैं परन्तु कोई भी देव-देवियाँ सहित और परिचार रहित नहीं होते। इस कारण से हे गौतम! इस प्रकार कहा जाता है कि कितनेक (कई) देवी सहित और सपरिचार होते हैं इत्यादि उसी प्रकार कहना यावत् देव-देवी सहित और परिचार रहित नहीं होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में परिचारणा में देवों के चार भंग किये हैं। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देव सदेवी और सपरिचार (परिचारणा सहित) होते हैं। तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक के देव अदेवी (देवी रहित) सपरिचार होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव अदेवी अपरिचार होते हैं किन्तु 'सदेवी अपरिचार' का भंग देवों में नहीं पाता है। यहाँ परिचारणा में देवों के ४ भंग किये हैं वहाँ 'देव स्थान' समझना चाहिये। 'देवों के किसी के होवे या नहीं' यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि विरति का परिणाम नहीं होने से तथा देवों में वैसी ही वृत्ति होने से प्रायः परिचारणा वाले ही होते हैं। कोई भी देवस्थान 'सदेवी अपरिचार' नहीं होते हैं।

कइविहा णं भंते! परियारणा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंचविहा परियारणा पण्णत्ता। तंजहा - कायपरियारणा, फासपरियारणा रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-पंचविहा परियारणा पण्णत्ता। तंजहा - काय-परियारणा जाव मणपरियारणा?

गोयमा! भवणवइवाणमंतरजोइस सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा, सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा बंभलोयलंतगेसु देवा रूवपरियारगा महासुक्कसहस्सारेसु देवा सद्दपरियारगा, आणयपाणयआरणअच्चुएसु कप्पेसु देवा मणपरियारगा, गेवेज्ज अणुत्तरोववाइया देवा अपरियारगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! तं चेव जाव मणपरियारगा।

कठिन शब्दार्थ - कायपरियारगा - काय परिचारक-काया से मैथुन-विषय भोग सेवन करने वाले, **फासपरियारगा** - स्पर्श परिचारक-स्पर्श से-आलिंगन मर्दन आदि से विषय सेवन करने वाले, **रूवपरियारगा** - रूप परिचारक-परस्पर विलास सहित दृष्टि विक्षेप, अंग प्रदर्शन आदि से विषय सेवन करने वाले, **सद्द परियारगा** - शब्द परिचारक-मधुर आनंद जनक अनुपम उच्च नीच शब्द श्रवण द्वारा विषय सेवन करने वाले, **मणपरियारगा** - मन परिचारक-उच्चनीच मनोभावों से विषय सेवन करने वाले, **अपरियारगा** - अपरिचारक-विषय सेवन नहीं करने वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परिचारणा कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! परिचारणा पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. काय परिचारणा २. स्पर्श परिचारणा ३. रूप परिचारणा ४. शब्द परिचारणा और ५. मन परिचारणा।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा गया है कि परिचारणा पांच प्रकार की है यथा-कायपरिचारणा यावत् मन परिचारणा?

उत्तर - हे गौतम! भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म, ईशान कल्प के देव कायपरिचारक सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्प के देव स्पर्श परिचारक, ब्रह्मलोक लान्तक कल्प के देव रूप परिचारक, महाशुक्र और सहस्रार कल्प के देव शब्द परिचारक, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों के देव मन परिचारक तथा नवग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक देव अपरिचारक होते हैं। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा गया है कि यावत् आनत आदि कल्पों के देव मन परिचारक होते हैं।

विवेचन - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देव काया की परिचारणा वाले होते हैं। तीसरे, चौथे देवलोक के देव स्पर्श की परिचारणा वाले, पांचवें छठे देवलोक के देव रूप की परिचारणा वाले, सातवें आठवें देवलोक के देव शब्द की परिचारणा वाले, नववें से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारहवें देवलोक के देव मन की परिचारणा वाले होते हैं। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में परिचारणा नहीं होती है क्योंकि उनके वेद का उदय बहुत मंद होता है।

तत्थ णं जे ते काय परियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ 'इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारं करेत्तए' तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ ओरालाइं सिंगाराइं मणुण्णाइं मणोहराइं मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियरूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता तेसिं देवाणं अंतियं पाउब्भवंति, तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणं करेंति। से जहाणामए सीयापोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, एवमेव तेहिं देवेहिं ताहिं अच्छराहिं सद्धिं कायपरियारणे कए समाणे से इच्छामणे खिप्पामेव अवेइ॥ ६७८॥

कठिन शब्दार्थ - इच्छामणे - इच्छा प्रधान मन अथवा मन में इच्छा, **अच्छराहिं** - अप्सराओं के, **मणसीकए समाणे** - मन करने पर, **खिप्पामेव** - क्षिप्रमेव-शीघ्र ही, **सिंगाराई** - श्रृंगार-आभूषण आदि से श्रृंगार युक्त।

भावार्थ - उनमें से जो काय परिचारक देव हैं उनके मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के साथ काय परिचारणा - मैथुन सेवन करना चाहते हैं। उन देवों द्वारा इस प्रकार मन से सोचने पर वे अप्सराएं उदार श्रृंगार युक्त मनोज्ञ, मनोहर एवं मनोरम उत्तर वैक्रिय रूप बनाती है। इस प्रकार विकुर्वणा करके वे उन देवों के पास आती है तब वे उन अप्सराओं के साथ कायपरिचारणा करते हैं। जिस प्रकार शीत पुद्गल शीत योनि वाले प्राणी को प्राप्त होकर शीत अवस्था को प्राप्त करके रहते हैं अथवा उष्ण पुद्गल उष्ण योनि वाले प्राणी को पाकर अत्यंत उष्ण अवस्था को प्राप्त करके रहते हैं उसी प्रकार उन देवों द्वारा अप्सराओं के साथ काय परिचारणा करने पर उनका इच्छा प्रधान मन शीघ्र ही हट जाता है अर्थात् तृप्त हो जाता है।

विवेचन - काया की परिचारणा वाले देवों के मन में जब परिचारणा की इच्छा उत्पन्न होती है तो देवियाँ उस इच्छा को जान कर वस्त्र, आभूषण, श्रृंगार से शोभित, मनोज्ञ, मनोहर, मनोरम, उत्तरवैक्रिय रूप बना कर देवों के सामने उपस्थित होती है। देव इन देवियों के साथ मनुष्य की तरह काया से परिचारणा करते हैं।

अत्थि णं भंते! तेसिं देवाणं सुक्कपोग्गला?

हंता अत्थि! तेणं भंते! तासिं अच्छराणं कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति?

गोयमा! सोइंदियत्ताए चक्खिंदियत्ताए घाणिंदियत्ताए रसिंदियत्ताए फासिंदियत्ताए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इट्ठत्ताए कंतत्ताए मणुण्णत्ताए मणामत्ताए सुभगत्ताए सोहग्गरूव जोव्वणगुण-लावण्णत्ताए ते तासिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति॥ ६७९॥

कठिन शब्दार्थ - सोहग्गरूवजोव्वणगुणलावण्णत्ताए - सौभाग्य, रूप यौवन गुण लावण्य रूप से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या उन देवों के शुक्र-पुद्गल होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! उन देवों के शुक्र-पुद्गल होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उन अप्सराओं के लिए वे किस रूप में बार-बार परिणत होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पुद्गल उनके लिए श्रोत्रेन्द्रिय रूप से, चक्षुरिन्द्रिय रूप से, घ्राणेन्द्रिय रूप से, रसनेन्द्रिय रूप से, स्पर्शनेन्द्रिय रूप से, इष्ट रूप से, कांत रूप से, मनोज्ञ रूप से, मनाम रूप से, सुभग रूप से, सौभाग्य रूप यौवन गुण लावण्य रूप से बार-बार परिणत होते हैं।

विवेचन - शुक्र और वीर्य इन दोनों शब्दों के अर्थ में भिन्नता होती है आगमों में प्राय: शुक्र शब्द का ही प्रयोग मिलता है। देवता के शुक्र पुद्गल देवियों के शरीर में संक्रान्त होकर श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय रूप में इस तरह परिणत होते हैं कि वे इष्ट, कान्त, मनोज्ञ, अतिशय मनोज्ञ तथा रूप, यौवन, लावण्य, गुणों से सुभग-सभी को प्रिय लगती है।

तत्थ णं जे ते फासपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ, एवं जहेव कायपरियारगा तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे ते रूवपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ - 'इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेत्तए' तएणं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा ताइं उरालाइं जाव मणोरमाइं उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं उवदंसेमाणीओ उवदंसेमाणीओ चिट्ठंति, तएणं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं रूवपरियारणं करेंति सेसं तं चेव जाव भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

भावार्थ - उनमें जो स्पर्श परिचारक देव हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है। जिस प्रकार काया से परिचारणा करने वाले देवों के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी सम्पूर्ण रूप से कहना चाहिये।

उनमें जो रूप परिचारक देव हैं उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के साथ रूप परिचारणा करना चाहते हैं। उन देवों द्वारा इस प्रकार मन से सोचने पर वे देवियाँ उसी प्रकार यावत् उत्तरवैक्रिय रूप विक्रिया करती है। विकुर्वणा करके जहाँ वे देव होते हैं वहाँ आती है और आकर उन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के न बहुत दूर और न अति नजदीक स्थित होकर उन उदार यावत् मनोरम रूपों को दिखलाती खड़ी रहती है तब वे देव उन अप्सराओं के साथ रूप परिचारणा करते हैं। शेष सारी वक्तव्यता उसी प्रकार यावत् वे बारबार परिणत होते हैं तक कहनी चाहिये।

यद्यपि रूप परिचारणा वाले देव अपने अवधिज्ञान से वहीं पर रही हुई देवियों के रूप को देख सकते हैं। तथापि परिचारणा का साधन रूप नहीं होकर इन्द्रिय ही है। इसलिए देवियाँ उनके पास जाती है। अत: रूप परिचारणा में इन्द्रियों से रूप देखना समझना-अवधिज्ञान से नहीं।

तत्थ णं जे ते सद्दपरियारगा देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ 'इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारणं करेत्तए' तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे तहेव जाव उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता जेणामेव ते देवा तेणामेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तेसिं देवाणं अदूरसामंते ठिच्चा अणुत्तराइं उच्चावयाइं सद्दाइं समुदीरेमाणीओ समुदीरेमाणीओ चिट्ठंति, तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं सद्दपरियारणं करेंति, सेसं तं चेव जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

कठिन शब्दार्थ - उच्चावयाइं - उच्च-नीच न्यूनाधिक, **समुदीरेमाणीओ** - उच्चारण करती हुई।

भावार्थ - उनमें जो शब्दपरिचारक देव होते हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि हम अप्सराओं के साथ शब्द परिचारणा करना चाहते हैं। उन देवों के द्वारा इस प्रकार मन में विचार करने पर उसी प्रकार यावत् उत्तरवैक्रिय रूपों की विक्रिया करके जहाँ वे देव होते हैं वहाँ देवियाँ पहुँच जाती हैं। पहुँच कर वे उन देवों के न अति दूर और न अति पास रुक कर सर्वोत्कृष्ट उच्च नीच शब्दों का बार-बार उच्चारण करती रहती है। इस प्रकार वे देव उन अप्सराओं के साथ शब्द परिचारणा करते हैं। शेष कथन उसी प्रकार यावत् बारबार परिणत होते हैं।

विवेचन - पहले देवलोक की देवियाँ सातवें देवलोक तक तथा दूसरे देवलोक की देवियाँ आठवें देवलोक तक जाती है तथा नववें से बारहवें देवलोक में **'तत्थ गयाओ'** स्वस्थान में ही देव परिचारणा (मन:परिचारणा) करते हैं। दूसरे देवलोक की देवियाँ ऊपर के देवों के साथ मन: परिचारणा करे तो वह देवी अवधि से नहीं देख सकती है-परन्तु दिव्यमति से देख सकती है। नमि विनमि के समान। परिचारणा की दृष्टि से देवी आठवें देवलोक से आगे नहीं जाती - परन्तु दूसरे किसी कार्यवशात् (वहाँ तक विषय होने से) १२ वें देवलोक तक जा सकती है। प्रज्ञापना पद २१ में पहले देवलोक के देव देवी का वहाँ जाकर समुद्घात करना बताया है। अत: देवियाँ १२ वें देवलोक तक जा सकती है।

मन: परिचारणा से भी देवों के पुद्गल देवी के शरीर में पहुँच जाते हैं। पापड़ व आंख खराब होने के दृष्टान्त से समझ सकते हैं। अथवा नागरवेल का पान एक भी खराब हो जावे तो हजारों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूर जहाँ कहीं भी इसके पान होंगे वे खराब हो जायेंगे। क्योंकि सबका सम्बन्ध नागरवेल की जड़ से ही है। इसी प्रकार मन परिचारणा में भी वीर्य के पुद्गल देवी तक स्खलित हो (पहुँच) जाते हैं।

तत्थ णं जे ते मणपरियारगा देवा तेसिं इच्छामणे समुप्पज्जइ-'इच्छामो णं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेत्तए' तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताओ अच्छराओ तत्थ-गयाओ चेव समाणीओ अणुत्तराइं उच्चावयाइं मणाइं संपहारेमाणीओ संपहारेमाणीओ चिट्ठंति, तए णं ते देवा ताहिं अच्छराहिं सद्धिं मणपरियारणं करेंति, सेसं णिरवसेसं तं चेव जाव भुज्जो-भुज्जो परिण. ंति॥ ६८०॥

भावार्थ - उनमें जो मन परिचारक देव होते हैं, उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है-हम अप्सराओं के साथ मन से परिचारणा करना चाहते हैं। तत्पश्चात् उन देवों के द्वारा मन में इस प्रकार इच्छा होने पर वे अप्सराएं शीघ्र ही वहीं रही हुई उत्कृष्ट उच्च-नीच मन को धारण करती हुई रहती है तत्पश्चात् वे देव उन अप्सराओं के साथ मन से परिचारणा करते हैं। शेष सारा वर्णन यावत् बारबार परिणत होते हैं तक कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवों की परिचारणा विषयक कथन किया गया है। देवों में काय परिचारणा की तरह ही स्पर्श परिचारणा होती है। स्पर्श परिचारणा में परस्पर आलिंगन, मर्दन आदि रूप स्पर्श द्वारा ही विषय सेवन होता है। रूप परिचारणा में देवियाँ अनेक प्रकार के उत्तरवैक्रिय से रूपों की विकुर्वणा कर देवों के स्थान पर उपस्थित होती है और देवों के न समीप और न दूर रह कर अपना रूप दिखाती है। रूप परिचारणा में परस्पर सविलास, दृष्टि विक्षेप, अंग प्रत्यंग प्रदर्शन आदि द्वारा तृप्ति अनुभव करते हैं। शब्द परिचारणा में भी देवियाँ देवों के स्थान पर आकर देवों के न समीप न दूर रह कर मधुर मन में आनंद उत्पन्न करने वाले अनुपम उच्च नीच शब्द बोलती है तब देव देवियों के साथ शब्द परिचारणा करते हैं। मन परिचारणा वाले देवों के मन में जब मन परिचारणा की इच्छा होती है तो देवियाँ उनकी इच्छा जान कर यावत् उत्तर वैक्रिय कर अपने स्थान पर ही परम संतोष जनक अनुपम उच्च-नीच मनोभाव धारण किये रहती हैं तब देव उन देवियों के साथ मन परिचारणा करते हैं।

काय परिचारणा की तरह ही स्पर्श परिचारणा, रूप परिचारणा, शब्द परिचारणा और मन परिचारणा में देवियों के शरीर में दिव्य प्रभाव से देवता के शुक्र पुद्गल संक्रांत होते हैं।

७. अल्प बहुत्व द्वार

एएसि णं भंते! देवाणं कायपरियारगाणं जाव मणपरियारगाणं, अपरियारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा देवा अपरियारगा, मणपरियारगा संखेज्जगुणा, सद्दपरियारगा असंखेज्जगुणा, रूवपरियारगा असंखेज्जगुणा, फासपरियारगा असंखेज्जगुणा, कायपरियारगा असंखेज्जगुणा॥ ६८१ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए चउत्तीसइमं परियारणा पयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन काय परिचारक यावत् मन परिचारक और अपरिचारक देवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सब से थोड़े अपरिचारक देव हैं, उनसे मन परिचारक संख्यात गुणा, उनसे शब्द परिचारक असंख्यातगुणा, उनसे रूप परिचारक असंख्यातगुणा, उनसे स्पर्श परिचारक असंख्यात गुणा और उनसे भी कायपरिचारक देव असंख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में परिचारक और अपरिचारक देवों का अल्पबहुत्व कहा गया है। सबसे थोड़े अपरिचारक-विषय सेवन रहित देव हैं क्योंकि ग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक देव दोनों मिल कर क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आकाश प्रदेश की राशि प्रमाण है। उनसे मन:परिचारक देव संख्यातगुणा हैं क्योंकि मन:परिचारणा वाले आनत आदि चार कल्पों में रहने वाले देव हैं और वहाँ रहने वाले देव पूर्व देवों की अपेक्षा संख्यात गुणा क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आकाश प्रदेश की राशि प्रमाण है। उनसे शब्द परिचारक देव असंख्यात गुणा हैं क्योंकि वे महाशुक्र और सहस्रार कल्पवासी हैं और वे घन रूप किये हुए लोक की एक प्रदेश की श्रेणी के असंख्यातवें भाग जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने हैं। उनसे रूप परिचारक देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में रहने वाले देव हैं और वे पूर्व देवों की अपेक्षा असंख्यातगुणी श्रेणी के असंख्यातवें भाग में रहे हुए आकाश प्रदेश की राशि प्रमाण हैं। उनसे भी स्पर्श परिचारक देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वे सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में रहने वाले हैं और वहाँ रहे देव ब्रह्मलोक और लान्तक देवों की अपेक्षा असंख्यातगुणी श्रेणि के असंख्यातवें भाग के आकाश प्रमाण कहे गये हैं। उनसे भी कायपरिचारक देव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि भवनपति से लगाकर दूसरे ईशान देवलोक तक के सभी देव कायपरिचारक हैं और वे सभी मिल कर प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्य श्रेणियों के आकाश प्रदेश की राशि प्रमाण हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का चौतीसवां परिचारणा पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पणतीसइमं वेयणापयं

पैतीसवां वेदना पद

प्रज्ञापना सूत्र के चौतीसवें पद में वेदना के परिणाम विशेष रूप प्रवीचार का निरूपण किया गया है। इस पैतीसवें पद में गति के परिणाम विशेष वेदना का प्रतिपादन किया जाता है। जिसकी संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार हैं -

सीया य दव्व सरीरा साया तह वेयणा भवइ दुक्खा।

अब्भुवगमोवक्कमिया णिदा य अणिदा य णायव्वा॥ १॥

सायमसायं सव्वे सुहं च दुक्खं अदुक्खमसुहं च।

माणसरहियं विगलिंदिया उ सेसा दुविहमेव॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - अब्भुवगमोवक्कमिया - आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, **सायमसायं** - साता और असाता, **माणसरहियं** - मन रहित।

भावार्थ - १. शीत २. द्रव्य ३. शरीर ४. साता ५. दुःख रूप वेदना ६. आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना ७. निदा और अनिदा वेदना, इस प्रकार वेदना पद के सात द्वार समझने चाहिये॥ १॥

साता और असाता वेदना सभी जीव वेदते हैं। इसी प्रकार सुख, दुःख और अदुःख असुख वेदना भी सभी जीव वेदते हैं। विकलेन्द्रिय मानसवेदना से रहित-मन रहित वेदना वेदते हैं और शेष जीव दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

विवेचन - पैतीसवें वेदना पद में सात द्वारों के द्वारा वेदना का निरूपण किया गया है जो इस प्रकार है - **१. शीत वेदना द्वार** - शीत, उष्ण और शीतोष्ण के भेद से वेदना तीन प्रकार की कही गयी है। **२. द्रव्य द्वार** - इस दूसरे द्वार में चार प्रकार से वेदना का निरूपण किया गया है - १. द्रव्य २. क्षेत्र ३. काल और ४. भाव। **३. शरीर वेदना द्वार** - इस द्वार में वेदना के तीन भेद किये गये हैं - १. शारीरिक २. मानसिक और ३. शारीरिक मानसिक **४. साता वेदना द्वार** - १. साता २. असाता ३. साता असाता रूप तीन प्रकार की वेदना का कथन चौथे द्वार में किया गया है। **५. दुःख वेदना द्वार** - पांचवें द्वार में सुख, दुःख और अदुःखसुखा (सुख दुःख रूप) वेदना का प्रतिपादन है। **६. आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना द्वार** - छठे द्वार में इन दोनों प्रकार की वेदनाओं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का वर्णन है। ७. **निदा और अनिदा वेदना द्वार** - सातवें द्वार में निदा और अनिदा के भेद से दो प्रकार की वेदनाओं का निरूपण किया गया है।

दूसरी गाथा में बताया गया है कि सभी जीव साता और असाता सुख दुःख और अदुःख सुख रूप वेदना वेदते हैं। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मन रहित वेदना वेदते हैं और शेष जीव दोनों प्रकार की शारीरिक और मानसिक वेदना वेदते हैं।

१. शीत आदि वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा - सीया, उसिणा, सीओसिणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. शीत वेदना २. उष्ण वेदना और ३. शीतोष्ण वेदना।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन प्रकार की वेदना कही गई है जो इस प्रकार है - १. शीत वेदना - शीत पुद्गलों के सम्पर्क से होने वाली वेदना २. उष्ण वेदना - उष्ण पुद्गलों के संयोग से होने वाली वेदना ३. शीतोष्ण वेदना - शीत-उष्ण पुद्गलों के संयोग से होने वाली वेदना।

णेरइया णं भंते! किं सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति, सीओसिणं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति। केई एक्केक्कपुढवीए वेयणाओ भणंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक शीत वेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना वेदते हैं या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक शीत वेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं किन्तु शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते हैं कोई कोई एक-एक (प्रत्येक) पृथ्वी में वेदना के विषय में कहते हैं -

रयणप्पभापुढविणेरइया णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! णो सीयं वेयणं वेदेंति, उसिणं वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति, एवं जाव वालुयप्पभापुढविणेरइया।

पंकप्पभापुढविणेरइयाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति। ते बहुयतरागा जे उसिणं वेयणं वेदेंति, ते थोवतरागा जे सीयं वेयणं वेदेंति।

धूमप्पभाए एवं चेव दुविहा, णवरं ते बहुयतरागा जे सीयं वेयणं वेदेंति, ते थोवतरागा जे उसिणं वेयणं वेदेंति।

तमाए य तमतमाए य सीयं वेयणं वेदेंति, णो उसिणं वेयणं वेदेंति, णो सीओसिणं वेयणं वेदेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना वेदते हैं? उष्ण वेदना वेदते हैं? या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना नहीं वेदते, शीतोष्ण वेदना भी नहीं वेदते, किन्तु उष्ण वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में कहना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में पूर्ववत् पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं किन्तु शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते। जो उष्ण वेदना वेदते हैं वे नैरयिक बहुत हैं और जो शीत वेदना वेदते हैं, वे नैरयिक अल्प है।

धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में भी दोनों प्रकार की वेदना कहनी चाहिये। विशेषता यह है कि जो शीत वेदना वेदते हैं वे नैरयिक बहुत हैं और जो उष्ण वेदना वेदते हैं वे नैरयिक अल्प (थोड़े) हैं।

तमा पृथ्वी और तमस्तमा पृथ्वी के नैरयिक शीत वेदना वेदते हैं किन्तु उष्ण वेदना और शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते हैं।

विवेचन - पहली, दूसरी और तीसरी नरक में शीत योनि वाले नैरयिक होते हैं ये उष्ण वेदना वेदते हैं। चौथी नरक में शीत योनि वाले और उष्ण योनि वाले नैरयिक होते हैं, शीत योनि वाले उष्ण वेदना वेदते हैं और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। इस नरक में शीत योनि वाले बहुत और उष्ण योनि वाले थोड़े हैं इसलिए उष्ण वेदना वाले अधिक हैं और शीत वेदना वाले थोड़े हैं। पांचवीं नरक में भी दोनों तरह के - शीत योनि वाले और उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं। शीत योनि वाले उष्ण वेदना वेदते हैं और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। इसमें शीत योनि वाले थोड़े हैं और उष्ण योनि वाले बहुत हैं अतः उष्ण वेदना वाले थोड़े और शीत वेदना वाले बहुत हैं। छठी नरक में उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं उन्हें शीत की वेदना होती है। सातवीं नरक में महा उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं अतः उन्हें शीत की प्रचण्ड वेदना होती है। इस प्रकार नरक में शीत वेदना और उष्ण वेदना होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमाराणं पुच्छा?

गोयमा! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेदेंति, सीओसिणं पि वेयणं वेदेंति, एवं जाव वेमाणिया॥ ६८२॥

भावार्थ - प्रश्न - असुरकुमारों के विषय में पूर्ववत् पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार आदि शीत वेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं और शीतोष्ण वेदना भी वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिकों को छोड़ कर शेष तेइस दण्डकों के जीव तीनों वेदना-शीत वेदना, उष्ण वेदना और शीतोष्ण वेदना-वेदते हैं।

२. द्रव्यादि वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! चउव्विहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. द्रव्य से २. क्षेत्र से ३. काल से और ४. भाव से।

विवेचन - वेदना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप सामग्री के निमित्त से उत्पन्न होती है क्योंकि सभी वस्तुएं द्रव्यादि सामग्री के वश से उत्पन्न होती है। जब प्राणी की वेदना पुद्गल द्रव्य के संयोग से होती है तो वह द्रव्य वेदना कहलाती है २. नैरयिक आदि को उपपात क्षेत्र आदि की अपेक्षा होने वाली वेदना क्षेत्र वेदना कहलाती है ३. नैरयिक आदि भव की काल के संबंध से विवक्षा की जाती है तो काल वेदना अथवा ऋतु दिन रात आदि के संयोग से होने वाली वेदना काल वेदना कहलाती है और ४. वेदनीय कर्म के उदय रूप प्रधान कारण से उत्पन्न होने वाली वेदना भाव वेदना कहलाती है।

णेरइया णं भंते! किं दव्वओ वेयणं वेदेंति जाव भावओ वेयणं वेदेंति?

गोयमा! दव्वओ वि वेयणं वेदेंति जाव भावओ वि वेयणं वेदेंति, एवं जाव वेमाणिया।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या द्रव्य से वेदना वेदते हैं यावत् भाव से वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक द्रव्य से भी वेदना वेदते हैं यावत् भाव से भी वेदना वेदते हैं इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक आदि चौबीस ही दण्डक के जीव चारों वेदना (द्रव्य वेदना, क्षेत्र वेदना, काल वेदना और भाव वेदना) वेदते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. शारीरिक आदि वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा - सारीरा, माणसा, सारीरमाणसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. शारीरिक २. मानसिक और ३. शारीरिक मानसिक।

विवेचन - शरीर में होने वाली वेदना शारीरिक वेदना कहलाती है। मन में होने वाली वेदना मानसिक वेदना तथा शरीर और मन दोनों में होने वाली वेदना शारीरिक-मानसिक वेदना कहलाती है।

णेरइया णं भंते! किं सारीरं वेयणं वेदेंति, माणसं वेयणं वेदेंति, सारीरमाणसं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! सारीरं पि वेयणं वेदेंति, माणसं पि वेयणं वेदेंति, सारीरमाणसं पि वेयणं वेदेंति। एवं जाव वेमाणिया, णवरं एगिंदियविगलिंदिया सारीरं वेयणं वेदेंति, णो माणसं वेयणं वेदेंति, णो सारीरमाणसं वेयणं वेदेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक शारीरिक वेदना वेदते हैं, मानसिक वेदना वेदते हैं या शारीरिक मानसिक वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक शारीरिक वेदना भी वेदते हैं, मानसिक वेदना भी वेदते हैं, शारीरिक-मानसिक वेदना भी वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय शारीरिक वेदना ही वेदते हैं, मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना नहीं वेदते हैं।

विवेचन - नैरयिक परस्पर उदीरणा करने से, परमाधार्मिकों द्वारा उत्पन्न करने से या क्षेत्र के प्रभाव से जब शरीर में वेदना का अनुभव करते हैं तब शारीरिक वेदना वेदते हैं। जब बाद के भव को लेकर मन में दुःख का विचार करते हैं तथा दुष्कर्म करने वाले बहुत पश्चात्ताप करते हैं तब मानसिक वेदना वेदते हैं। जब विवक्षित काल में शरीर विषयक पीड़ा का अनुभव करते हैं और उतने काल तक उपरोक्तानुसार मन विषयक पीड़ा का अनुभव करते हैं तब उस काल विशेष की अपेक्षा शारीरिक मानसिक वेदना वेदते हैं। यहाँ भी वेदना का अनुभव अनुक्रम से ही होता है अतः विवक्षित उतने काल की अपेक्षा दोनों वेदनाओं का कथन किया गया है।

एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों को छोड़कर शेष जीव तीनों प्रकार की वेदना (शारीरिक, मानसिक,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक मानसिक) वेदते हैं। एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में मन नहीं होने से वे मानसिक और शारीरिक-मानसिक वेदना नहीं वेदते हैं केवल शारीरिक वेदना ही वेदते हैं।

४. साता आदि वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा - साया, असाया, सायासाया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. साता २. असाता और ३. साता-असाता।

विवेचन - सुख रूप वेदना साता वेदना कहलाती है। दुःख रूप वेदना को असाता वेदना कहते हैं। सुख-दुःख उभय रूप वेदना साता-असाता वेदना कहलाती है।

णेरइया णं भंते! किं सायं वेयणं वेदेंति, असायं वेयणं वेदेंति, सायासायं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! तिविहं पि वेयणं वेदेंति, एवं सव्वजीवा जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या साता वेदना वेदते हैं, असाता वेदना वेदते हैं या साता असाता वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक तीनों प्रकार की वेदना वेदते हैं, इसी प्रकार सभी जीवों यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक से लगा कर वैमानिक तक चौबीस ही दण्डक के जीव तीनों प्रकार की वेदना (साता, असाता, साताअसाता) वेदते हैं। नैरयिक तीर्थंकरों के जन्मादि के समय साता वेदना वेदते हैं और शेष समय में असाता वेदना वेदते हैं। जब पूर्व भव का मित्र देव या दानव वचनामृतों से शांत करता है तब मन में साता और क्षेत्र के प्रभाव से असाता का अनुभव करते हैं अथवा मन में ही उनके दर्शन से और उनके वचन सुनने से साता और पश्चात्ताप के अनुभव से असाता वेदना वेदते हैं तब साता-असाता वेदना कही है। नैरयिकों की तरह ही वैमानिक पर्यंत कहना चाहिये। पृथ्वीकायिक आदि जीव जब तक कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक साता और उपद्रव होने पर असाता का अनुभव करते हैं और भिन्न-भिन्न अवयवों में उपद्रव होने और न होने से साता-असाता वेदना वेदते हैं। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव सुख का अनुभव करते हुए साता वेदना, च्यवन आदि के समय असाता वेदना तथा दूसरों की संपत्ति आदि देखने से मात्सर्य आदि का अनुभव और अपनी प्रिय देवी के मधुर आलापादि का अनुभव एक साथ हो तब साता-असाता वेदना वेदते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. दुःख आदि वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा - दुक्खा, सुहा, अदुक्खमसुहा।

णेरइया णं भंते! किं दुक्खं वेयणं वेदेंति पुच्छा?

गोयमा! दुक्खं पि वेयणं वेदेंति, सुहं पि वेयणं वेदेंति, अदुक्खमसुहं पि वेयणं वेदेंति, एवं जाव वेमाणिया॥ ६८३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना तीन प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. दुःखा २. सुखा और ३. अदुःख-सुखा।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या दुःखा वेदना वेदते हैं, सुखा वेदना वेदते हैं या अदुःख-सुखा वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव दुःखा वेदना भी वेदते हैं, सुखा वेदना भी वेदते हैं और अदुःख-सुखा वेदना भी वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कह देना चाहिये।

विवेचन - जिसमें दुःख का वेदन हो वह दुःखा, जिसमें सुख का वेदन हो वह सुखा वेदना कहलाती है किन्तु जो वेदना एकान्त दुःख रूप नहीं कही जा सकती क्योंकि सुख भी होता है और वह एकान्त सुख रूप भी नहीं कही जा सकती क्योंकि दुःख भी होता है अतः वह अदुःख सुखा-सुख-दुःखात्मिका वेदना कहलाती है।

शंका - फिर साता, असाता, साता-असाता तथा सुखा, दुःखा और अदुःखसुखा वेदना में क्या अंतर है?

समाधान - साता, असाता, साता-असाता रूप वेदना कर्म से उदय प्राप्त वेदनीय कर्म पुद्गलों के अनुभव से होती है जबकि सुखा, दुःखा और अदुःखसुखा वेदना दूसरों से दी जाती है।

चौबीस ही दण्डकों के जीव सुखा, दुःखा, अदुःखसुखा रूप तीनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

६. आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा - अब्भोवगमिया य उवक्कमिया य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! वेदना दो प्रकार की कही गई है। यथा - १. आभ्युपगमिकी और २. औपक्रमिकी।

विवेचन - जो वेदना स्वयं अंगीकार की जाती है वह आभ्युपगमिकी वेदना है जैसे - केशलुंचन, आतापना लेना आदि। जो वेदना स्वयं उदय हुए या उदीरणा द्वारा उदय में लाये गये वेदनीय कर्म के अनुभव से होती है वह औपक्रमिकी वेदना कहलाती है।

णेरइया णं भंते! किं अब्भोवगमियं वेयणं वेदेंति उवक्कमियं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! णो अब्भोवगमियं वेयणं वेदेंति, उवक्कमियं वेयणं वेदेंति, एवं जाव चउरिंदिया। पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा य दुविहं पि वेयणं वेदेंति, वाणमंतरजोइसियवेमाणिया जहा णेरइया॥ ६८४॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिक आभ्युपगमिकी वेदना वेदते हैं या औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक आभ्युपगमिकी वेदना नहीं वेदते, औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में दोनों प्रकार की वेदना होती है क्योंकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में कर्म क्षय करने के लिए आभ्युपगमिकी वेदना संभव है। शेष सभी जीव औपक्रमिकी वेदना ही वेदते हैं, आभ्युपगमिकी वेदना नहीं वेदते। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय जीवों में मन का अभाव होने के कारण आभ्युपगमिकी वेदना संभव नहीं है। नैरयिक भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों में तथाप्रकार के भव स्वभाव के कारण आभ्युपगमिकी वेदना नहीं होती है।

७. निदा-अनिदा वेदना द्वार

कइविहा णं भंते! वेयणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा वेयणा पण्णत्ता। तंजहा-णिदा य अणिदा य।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! वेदना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वेदना दो प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - १. निदा वेदना और २. अनिदा वेदना।

विवेचन - वेदना दो प्रकार की हैं - १. निदा और २. अनिदा। "**नितरां निश्चितं वा सम्यग् दीयते चित्तमस्यामिति निदा**"-जिसमें पूर्ण रूप से चित्त लगा हो, जिसका भलीभांति ध्यान हो अर्थात् जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदना में मानसिक ज्ञान होता है वह निदा वेदना है। जिसकी और चित्त बिल्कुल न हो, जिस वेदना में मानसिक ज्ञान नहीं होता वह अनिदा वेदना है।

णेरइया णं भंते! किं णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति?

गोयमा! णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णिदायं पि अणिदायं पि वेयणं वेदेंति?'

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सण्णीभूया य असण्णीभूया य। तत्थ णं जे ते सण्णीभूया ते णं णिदायं वेयणं वेदेंति, तत्थ णं जे ते असण्णीभूया ते णं अणिदायं वेयणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं णेरइया णिदायं पि वेयणं वेदेंति अणिदायं पि वेयणं वेदेंति, एवं जाव थणियकुमारा।

कठिन शब्दार्थ - **सण्णीभूया** - संज्ञीभूत-संज्ञी से आकर उत्पन्न होने वाले, **असण्णीभूया** - असंज्ञीभूत-असंज्ञी से आकर उत्पन्न होने वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक निदा वेदना वेदते हैं या अनिदा वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नैरयिक निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा - संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत। उनमें जो संज्ञी भूत नैरयिक होते हैं वे निदा वेदना वेदते हैं और उनमें जो असंज्ञीभूत नैरयिक होते हैं वे अनिदा वेदना वेदते हैं। हे गौतम! इस कारण ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिये।

विवेचन - नैरयिक निदा और अनिदा दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं। क्योंकि नैरयिक जीव दो प्रकार के होते हैं - १. संज्ञीभूत नैरयिक-जो संज्ञी से आकर उत्पन्न हुए हैं २. असंज्ञीभूत नैरयिक - जो असंज्ञी से आकर उत्पन्न हुए हैं। असंज्ञीभूत नैरयिक पूर्व के अन्य जन्मों में किये हुए किसी भी प्रकार के शुभ, अशुभ या वैरादि का स्मरण नहीं करते हैं क्योंकि स्मरण उन्हीं का होता है जो तीव्र संकल्प से किया हुआ होता है किन्तु पूर्व के असंज्ञी भव में मन रहित होने से तीव्र संकल्प नहीं होता अतः असंज्ञीभूत नैरयिक अनिदा वेदना वेदते हैं। संज्ञीभूत नैरयिक पूर्व भव का सब कुछ स्मरण करते हैं क्योंकि उनके पूर्व भव में अनुभव किये गये विषयों का स्मरण करने योग्य मन होता है अतः वे निदा वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों से लगा कर स्तनितकुमारों तक दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं क्योंकि उनकी भी संज्ञी और असंज्ञी से उत्पत्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढविकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'पुढविकाइया णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति'?

गोयमा! पुढविकाइया सव्वे असण्णी, असण्णिभूयं अणिदायं वेयणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ पुढविकाइया णो णिदायं वेयणं वेदेंति, अणिदायं वेयणं वेदेंति एवं जाव चउरिंदिया।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा वाणमंतरा जहा णेरइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव निदा वेदना वेदते हैं या अनिदावेदना?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव निदा वेदना नहीं वेदते किन्तु अनिदा वेदना वेदते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीव निदा वेदना नहीं वेदते किन्तु अनिदा वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी और असंज्ञीभूत होते हैं इसलिए अनिदा वेदना वेदते हैं निदा वेदना नहीं वेदते। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीव निदा वेदना नहीं वेदते किन्तु अनिदा वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य और वाणव्यंतर देवों की वक्तव्यता नैरयिकों के समान समझनी चाहिये।

विवेचन - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के जीव सम्मूर्च्छिम होते हैं अतः मन रहित होने के कारण वे अनिदा वेदना ही वेदते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य और वाणव्यंतर देवों का कथन नैरयिकों की तरह कहना चाहिये अर्थात् जैसे नैरयिकों के विषय में कहा है वैसे ही ये जीव निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य दो प्रकार के होते हैं - १. सम्मूर्च्छिम और २. गर्भज। उनमें जो सम्मूर्च्छिम हैं वे मन रहित होने से अनिदा वेदना वेदते हैं और जो गर्भज हैं वे मन सहित होने से निदा वेदना वेदते हैं। वाणव्यंतर देव संज्ञी से भी आकर उत्पन्न होते हैं और असंज्ञी से भी आकर उत्पन्न होते हैं अतः नैरयिकों की तरह वे भी निदा और अनिदा दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं।

जोइसियाणं पुच्छा?

गोयमा! णिदायं पि वेयणं चेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जोइसिया णिदायं पि वेयणं वेदेंति, अणिदायं पि वेयणं वेदेंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जोइसिया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य। तत्थ णं जे ते माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा ते णं अणिदायं वेयणं वेदेंति, तत्थ णं जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा ते णं णिदायं वेयणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ - 'जोइसिया दुविहं पि वेयणं वेदेंति' एवं वेमाणिया वि॥ ६८५॥

॥ पण्णवणाए भगवईए पणतीसइमं वेयणापयं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - माइमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा - मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक, **अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा** - अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देव निदा वेदना वेदते हैं या अनिदा वेदना वेदते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देव निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि ज्योतिषी देव निदा वेदना भी वेदते हैं और अनिदा वेदना भी वेदते हैं।

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देव दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और २. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। उनमें जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक हैं वे अनिदावेदना वेदते हैं और जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक हैं वे निदा वेदना वेदते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि ज्योतिषी देव निदा, अनिदा दोनों प्रकार की वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार वैमानिक देवों के विषय में भी समझना चाहिये।

विवेचन - ज्योतिषी और वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं - १. मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और २. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। जो मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हुए हैं वे मिथ्यादृष्टि से, व्रत विराधना से या अज्ञान तप से - 'हम इस प्रकार से उत्पन्न हुए हैं' - ऐसा नहीं जानते अतः सम्यक् रूप से यथावस्थित ज्ञान के अभाव से वे अनिदा वेदना का अनुभव करते हैं। इससे विपरीत जो अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्न हुए हैं वे सम्यग्दृष्टि के कारण यथावस्थित स्वरूप को जानते हैं अतः जो भी वेदना वेदते हैं वह निदा वेदना होती है।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का पैंतीसवा वेदना पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्तीसइमं समुग्घायपयं

छत्तीसवां समुद्घात पद

प्रज्ञापना सूत्र के पैंतीसवें पद में गति के परिणाम विशेष रूप वेदना का प्रतिपादन किया गया है। अब इस छत्तीसवें पद में भी गति के परिणाम विशेष रूप समुद्घात का विचार किया जाता है। जिसमें समुद्घात की वक्तव्यता विषयक संग्रहणी गाथा इस प्रकार हैं -

वेयण १ कसाय २ मरणे ३ वेउव्विय ४ तेयए य ५ आहारे ६।

केवलिए चेव भवे ७ जीवमणुस्साण सत्तेव॥

भावार्थ - १. वेदना २. कषाय ३. मरण ४. वैक्रिय ५. तैजस ६. आहारक और ७. केवली समुद्घात, ये सात समुद्घात जीव और मनुष्यों में होती है।

समुद्घात के भेद

कइ णं भंते! समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए १, कसायसमुग्घाए २, मारणंतियसमुग्घाए ३, वेउव्वियसमुग्घाए ४, तेयासमुग्घाए ५, आहारगसमुग्घाए ६, केवलिसमुग्घाए ७।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! समुद्घात कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! समुद्घात सात प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात ५. तैजस समुद्घात ६. आहारक समुद्घात और ७. केवली समुद्घात।

विवेचन - वेदना आदि के साथ तन्मय होकर मूल शरीर को छोड़े बिना प्रबलता से आत्म-प्रदेशों को शरीर अवगाहना से बाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का नाश करना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं। यथा - १. वेदनीय २. कषाय ३. मारणांतिक ४. वैक्रिय ५. तैजस ६. आहारक और ७. केवली।

१. वेदनीय (वेदना) समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पंदन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुद्घात है। इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है। साता वेदनीय कर्म की समुद्घात नहीं होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. कषाय समुद्घात - तीव्र क्रोध आदि कषायों के द्वारा आत्म-प्रदेशों में स्पंदन होकर कुछ आत्म प्रदेशों का शरीरावगाहना से बाहर आ जाना कषाय समुद्घात कहलाता है। इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है। चारों कषायों की समुद्घात होती है।

३. मारणांतिक समुद्घात - मृत्यु से अंतर्मुहूर्त्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लम्बा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं जाड़ाई वाला) आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना मारणांतिक समुद्घात कहलाता है। इस समुद्घात में आयुष्य कर्म के प्रभूत प्रदेशों की क्षपणा होती है।

४. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए आत्म-प्रदेशों का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन तक का दण्ड निकालना (जाडाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) वैक्रिय समुद्घात कहलाता है। इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है।

५. तैजस् समुद्घात - शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना तैजस् समुद्घात कहलाता है। इसमें तैजस नाम कर्म की क्षपणा होती है।

६. आहारक समुद्घात - जीवदया, ऋद्धि दर्शन, ज्ञान ग्रहण या संशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिए संख्यात योजन का आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना आहारक समुद्घात कहलाता है। इसमें आहारक शरीर नाम कर्म की क्षपणा होती है।

७. केवली समुद्घात - वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिए चार समयों में आत्म-प्रदेशों को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः संकोचित करके शरीरस्थ हो जाना केवली समुद्घात कहलाता है। इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय नाम और गोत्र कर्मों की क्षपणा होती है।

जिन महापुरुषों की आयु ६ माह अथवा उससे कम शेष रहने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है उनमें से जिन की आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है उनकी स्थिति सम करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं केवली समुद्घात के अंतर्मुहूर्त्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है।

समुद्घात-काल

वेयणासमुग्घाए णं भंते! कइसमइए पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते, एवं जाव आहारगसमुग्घाए।

केवलिसमुग्घाए णं भंते! कइसमइए पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठसमइए पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना समुद्घात कितने समय का कहा गया है ?

उत्तर - हे गौतम! वेदना समुद्घात असंख्यात समयों वाले अन्तर्मुहूर्त्त का कहा गया है। इसी प्रकार यावत् आहारक समुद्घात तक कहना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! केवली समुद्घात कितने समय का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! केवली समुद्घात आठ समय का कहा गया है।

विवेचन - पहली छह समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्त्त (असंख्यात समय का अंतर्मुहूर्त्त) का है तथा केवली समुद्घात का काल आठ समय का है।

यहाँ पर वेदना आदि समुद्घातों की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की बताई है। वह सामान्य नय (अपेक्षा) से समझना चाहिये। अन्य आगमपाठों (भगवती सूत्र आदि) से 'कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात तथा वैक्रिय समुद्घात की जघन्य स्थिति एक समय की होना स्पष्ट हो जाता है' भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ९ में - 'वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट दो समय बताई है।' इस आगमपाठ से वैक्रिय समुद्घात की जघन्य स्थिति एक समय की होना स्पष्ट हो जाता है।

चौवीस दण्डकों में समुद्घात

णेरइयाणं भंते! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए।

असुरकुमाराणं भंते! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेयासमुग्घाए, एवं जाव थणियकुमाराणं।

पुढविक्काइयाणं भंते! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, एवं जाव चउरिंदियाणं। णवरं वाउक्काइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव वेमाणियाणं भंते! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेयासमुग्घाए। णवरं मणुस्साणं सत्तविहे समुग्घाए पण्णत्ते। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेयासमुग्घाए, आहारगसमुग्घाए, केवलिसमुग्घाए॥ ६८६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के चार समुद्घात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात और ४. वैक्रिय समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों के पांच समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात और ५. तैजस् समुद्घात। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के तीन समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात और ३. मारणांतिक समुद्घात। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि वायुकायिक जीवों के चार समुद्घात कहे गये हैं जो इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच यावत् वैमानिक तक कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनके पांच समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात और ५. तैजस समुद्घात। विशेषता यह है कि मनुष्यों के सात समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात ५. तैजस समुद्घात ६. आहारक समुद्घात ७. केवली समुद्घात।

विवेचन - नैरयिकों में प्रारम्भ की चार समुद्घात पाई जाती है। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहले से बारहवें देवलोक तक के देवों में पहली पांच समुद्घात पाई जाती है। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में पहली तीन समुद्घात होती है। इनमें शक्ति से पांचों समुद्घात होती है लेकिन ये करते नहीं हैं। चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पहली तीन समुद्घात होती हैं और वायुकाय में पहली चार समुद्घात होती हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रियों में प्रथम की पांच और मनुष्यों में सातों समुद्घात होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक एक जीव के अतीत-अनागत समुद्घात

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता, केवइया पुरेक्खडा? गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि जस्सऽत्थि तस्स जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा। एवं असुरकुमारस्स वि णिरंतरं जाव वेमाणियस्स एवं जाव तेयगसमुग्घाए एवमेए पंच चउवीसा दंडगा।

कठिन शब्दार्थ - **अतीता** - अतीत (भूतकाल में), **पुरेक्खडा** - पुरस्कृत भविष्य में-आगे होने वाले, **कस्सइ** - किसी के।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक एक नैरयिक के अतीत में कितने वेदना समुद्घात हुए?

उत्तर - हे गौतम! एक एक नैरयिक के अतीत में वेदना समुद्घात अनंत हुए हैं।

हे भगवन्! भविष्य में कितने होंगे?

हे गौतम! किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात या अनंत होते हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी समझना चाहिये, निरन्तर वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिये। इसी प्रकार यावत् तैजस समुद्घात तक समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार ये पांचों समुद्घात (वेदना, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस) भी चौबीस दण्डकों के क्रम से समझ लेने चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक एक जीव के अतीत-अनागत समुद्घात कितने हुए हैं इसका कथन किया गया है। नैरयिक जीवों के भूतकाल की अपेक्षा वेदना समुद्घात पूर्व में अनंत हुए हैं क्योंकि नारकादि स्थान अनंत बार प्राप्त हुए हैं और एक-एक नारक आदि स्थान की प्राप्ति के समय प्रायः अनेकबार वेदना समुद्घात होती है। यह कथन बाहुल्य (बहुलता) की अपेक्षा समझना चाहिये क्योंकि बहुत से जीव अव्यवहार राशि से निकले हुए अनन्तकाल तक होते हैं अतः उनकी अपेक्षा एक-एक नैरयिक के अनन्त वेदना समुद्घात अतीत में हुए घटित होते हैं। जिन जीवों को अव्यवहार राशि से निकले हुए थोड़ा समय व्यतीत हुआ है उनकी अपेक्षा संख्यात या असंख्यात वेदना समुद्घात समझने चाहिये किन्तु वे थोड़े ही होते हैं अतः उनकी यहाँ विवक्षा नहीं की गई है।

भविष्यकाल की अपेक्षा एक-एक नैरयिक के कितने समुद्घात होंगे? इसके उत्तर में कहा गया है कि किसी नैरयिक के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके समुद्घात होते हैं उनके जघन्य से एक, दो, तीन होते हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि जो कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव विवक्षित प्रश्न समय के पश्चात् वेदना समुद्घात किये बिना ही नरक से निकल कर मनुष्य भव में वेदना समुद्घात किये बिना ही सिद्ध होता है उसे भविष्य में एक भी वेदना समुद्घात नहीं होगा किन्तु जो जीव विवक्षित प्रश्न समय पश्चात् शेष आयुष्य काल में कितने काल तक नरक भव में आकर तत्पश्चात् मनुष्य भव पाकर सिद्ध होता है उसकी अपेक्षा एक आदि समुद्घात संभव है। संख्यात काल तक रहने वाले के संख्यात, असंख्यात काल तक संसार में रहने वाले के असंख्यात और अनंतकाल संसार में रहने वाले के अनन्त वेदना समुद्घात होते हैं। नैरयिकों की तरह असुरकुमार यावत् वैमानिक देवों तक कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सभी असुरकुमार आदि स्थानों में अतीत काल में अनंत वेदना समुद्घात कहना और अनागत काल में वेदना समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिनके होते हैं उन्हें भी जघन्य से एक, दो, तीन और उत्कृष्ट से संख्यात, असंख्यात और अनन्त समुद्घात कहने चाहिये। इसी प्रकार चौबीस दण्डक के क्रम से कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात और तैजस समुद्घात के विषय में समझ लेना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक दंडक के विषय में कहने से चौबीस दण्डकों के पांचों समुद्घात की अपेक्षा कुल २४×५=१२० सूत्र होते हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि। जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा, उक्कोसेणं तिण्णि।

केवइया पुरेक्खडा?

कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि। जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणियस्स। णवरं मणूसस्स अतीता वि पुरेक्खडा वि जहा णेरइयस्स पुरेक्खडा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के अतीत आहारक समुद्घात कितने हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक एक नैरयिक के अतीत आहारक समुद्घात किसी के होता है और किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके भी जघन्य एक या दो उत्कृष्ट तीन होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के अनागत (भविष्य) के आहारक समुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के अनागत आहारक समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार आहारक समुद्घात होते हैं। इसी प्रकार यावत् निरंतर वैमानिकों तक कहना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्य के अतीत और अनागत आहारक समुद्घात नैरयिक के अनागत आहारक समुद्घात के समान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - एक-एक नैरयिक के पूर्व के सम्पूर्ण अतीत काल की अपेक्षा कितने आहारक समुद्घात पूर्व में हुए हैं? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि - हे गौतम! किसी के आहारक समुद्घात पूर्व में किये हुए होते हैं और किसी के नहीं होते। जिस जीव ने पूर्व में मनुष्य भव प्राप्त कर तथा प्रकार की सामग्री के अभाव से चौदह पूर्वों का अध्ययन नहीं किया अथवा चौदह पूर्वों का ज्ञान होने पर भी आहारक लब्धि के अभाव से या तथाविध प्रयोजन के अभाव से आहारक शरीर किया नहीं, उनके नहीं होता। जिनके होता है उनके भी जघन्य से एक और दो, उत्कृष्ट से तीन होते हैं किन्तु चार नहीं होते। जिसने चार बार आहारक शरीर किया है वह नरक में नहीं जाता। इस विषय मे टीकाकार कहते हैं-

आहार समुग्घाया उक्कोसेणं तिण्णि, तदुवरि णियमा नरगं न गच्छइ जस्स चत्तारि भवंति त्ति।

अर्थात् आहारक समुद्घात उत्कृष्ट तीन होते हैं इसके ऊपर जिसके चार समुद्घात होते हैं वे अवश्य नरक में नहीं जाते।

भविष्यकाल में भी आहारक समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। उसमें भी जो मानवभव प्राप्त कर तथाप्रकार की सामग्री के अभाव से चौदह पूर्व का ज्ञान और आहारक समुद्घात के बिना सिद्ध होते हैं उनको नहीं होता। शेष जीवों को यथासंभव जघन्य से एक, दो, तीन और उत्कृष्ट से चार समुद्घात होते हैं। तत्पश्चात् अवश्य दूसरी गति में उत्पन्न नहीं होने के कारण आहारक समुद्घात के बिना सिद्धि गमन होता है।

नैरयिक के कहे अनुसार चौबीस दण्डकों के क्रम से निरंतर वैमानिक सूत्र तक कह देना चाहिये किन्तु मनुष्य के अतीत काल और अनागत काल की अपेक्षा नैरयिकों के भविष्यकाल में होने वाले समुद्घात की तरह कहना चाहिये अर्थात् मनुष्यों में भूतकाल की अपेक्षा उत्कृष्ट चार और भविष्यकाल की अपेक्षा भी उत्कृष्ट चार आहारक समुद्घात होते हैं। चौथी बार में आहारक शरीर करने वाला अवश्य उसी भव में ही मुक्ति प्राप्त करता है।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को, एवं जाव वेमाणियस्स, णवरं मणूसस्स अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को, एवं पुरेक्खडा वि॥ ६८७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के अतीत केवली समुद्घात कितने हुए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक भी नैरयिक के एक भी अतीत केवली समुद्घात नहीं हुआ है।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के अनागत केवलीसमुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! किसी नैरयिक के अनागत केवली समुद्घात होता है किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके एक ही होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्य के अतीत केवली समुद्घात किसी के होता है, किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके एक ही होता है। मनुष्य के अतीत केवली समुद्घात की तरह अनागत केवली समुद्घात के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - एक-एक नैरयिक के अतीत काल में एक भी केवली समुद्घात हुआ नहीं क्योंकि केवली समुद्घात करने के बाद जीव अवश्य ही अंतर्मुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है अतः यदि केवली समुद्घात हुआ हो तो जीव नरक में ही नहीं जाता परन्तु अभी नरक में है अतः एक भी नैरयिक के अतीत काल में केवली समुद्घात नहीं हुआ। नैरयिक के कितने केवली समुद्घात भविष्य में होने वाले हैं? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं - हे गौतम! किसी नैरयिक के भविष्य में केवली समुद्घात होता है और किसी के नहीं होता। जिसके केवली समुद्घात होता है उसके सर्वदा एक ही बार होता है, दो, तीन बार नहीं होता। जो मुक्तिपद प्राप्त करने के अयोग्य हैं अथवा योग्य होने पर भी जो केवली समुद्घात किये बिना मोक्ष में जाने वाले हैं उन जीवों की अपेक्षा कहा है कि केवली समुद्घात नहीं होता। केवली समुद्घात किये बिना मोक्ष में जाने वाले भी अनंत केवली होते हैं। कहा भी है - **'अगंतूण समुग्घायमणंता केवलि जिणा, जरमरण विप्पमुक्का सिद्धिंवरगइं गया।'** - समुद्घात प्राप्त हुए बिना अनन्त केवली जिन जरा और मरण से रहित होकर सिद्धि नाम की श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं। नैरयिक की तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डकों के विषय में समझ लेना चाहिये किन्तु मनुष्य की अपेक्षा अतीतकाल में किसी को केवली समुद्घात हुआ और किसी को नहीं हुआ। जिस मनुष्य को भूतकाल में केवली समुद्घात हुआ है उसे अवश्य एक ही बार हुआ है दो तीन बार नहीं क्योंकि एक ही समुद्घात से प्रायः सम्पूर्ण अघाती कर्मों का नाश होता है और भविष्य में भी किसी मनुष्य को केवली समुद्घात होगा और किसी को नहीं होगा। जिसको होगा उसको एक ही केवली समुद्घात होगा।

णेरइया णं भंते! केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अणंता। एवं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव तेयगसमुग्घाए एवं एए वि पंच चउवीसदंडगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने वेदना समुद्घात अतीत में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अतीत में अनंत वेदना समुद्घात हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! उनके अनागत वेदना समुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अनागत काल में भी अनंत वेदना समुद्घात होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये। इसी प्रकार यावत् तैजस समुद्घात तक समझना चाहिये। इस प्रकार इन पांचों समुद्घातों की वक्तव्यता चौबीस दण्डकों में समझ लेनी चाहिये।

विवेचन - विवक्षित प्रश्न के समय वर्तमान समुदित सभी नैरयिकों ने पूर्व में कितने वेदना समुद्घात किये हैं? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि हे गौतम! पूर्व में अनन्त वेदना समुद्घात हुए हैं क्योंकि बहुत जीव अनन्तकाल से अव्यवहार राशि से निकले हुए हैं और उन्होंने अतीत अनन्त काल की अपेक्षा नैरयिकों में अनन्त वेदना समुद्घात किये हैं। भविष्य में कितने वेदना समुद्घात होंगे? इसके उत्तर में प्रभु ने फरमाया - हे गौतम! अनंत वेदना समुद्घात होंगे? क्योंकि अत्यधिक नैरयिक अनंतकाल तक संसार में रहने वाले हैं। इस प्रकार चौबीस दंडक के क्रम से यावत् वैमानिक तक कह देना चाहिये। जिस प्रकार वेदना समुद्घात का चौबीस दंडक के क्रम से विचार किया उसी प्रकार कषाय, मरण, वैक्रिय और तैजस समुद्घातों का भी विचार करना चाहिये। इस प्रकार बहुवचन की अपेक्षा २४×५=१२० दंडक सूत्र होते हैं।

णेरइयाणं भंते! केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! असंखेज्जा।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! असंखेज्जा एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं वणस्सइकाइयाणं मणुस्साण य इमं णाणत्तं।

वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

मणूसाणं भंते! केवइया आहारग समुग्घाया अतीता?

गोयमा! सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा एवं पुरेक्खडा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने आहारक समुद्घात अतीत हुए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अतीत आहारक समुद्घात असंख्यात हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के अनागत आहारक समुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अनागत आहारक समुद्घात असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों एवं मनुष्यों की वक्तव्यता में नानत्व-भिन्नता है। यथा -

प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने आहारक समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक जीवों के अतीत आहारक समुद्घात अनन्त हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने आहारक समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के अतीत आहारक समुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात हुए हैं। इसी प्रकार उनके अनागत आहारक समुद्घात भी समझ लेने चाहिये।

विवेचन - प्रश्न के समय सभी नैरयिक मिल कर भी असंख्यात ही होते हैं उनमें से भी कुछ असंख्यात नैरयिक ऐसे होते हैं जो पूर्व में आहारक समुद्घात कर चुके हैं उनकी अपेक्षा नैरयिकों के अतीत आहारक समुद्घात असंख्यात कहे गये हैं। इसी प्रकार भविष्य में आहारक समुद्घात वाले नैरयिक भी असंख्यात ही समझने चाहिये। वनस्पतिकायिकों और मनुष्यों को छोड़ कर शेष सभी दण्डकों में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात असंख्यात हैं।

बहुवचन की अपेक्षा वनस्पतिकायिक जीवों में अतीत आहारक समुद्घात अनन्त हैं क्योंकि जिन्होंने पूर्व में आहारक समुद्घात किये हैं ऐसे अनन्त चौदह पूर्वधर प्रमाद के वश में संसार वृद्धि करके वनस्पति में हैं। भविष्यकाल में अनन्त आहारक समुद्घात करने वाले हैं क्योंकि अनन्त जीव वनस्पतिकाय से निकल कर चौदह पूर्वों का ज्ञान करके आहारक समुद्घात कर भविष्य में मोक्ष जाने वाले हैं।

मनुष्यों के अतीत आहारक समुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात कहे गये हैं। इसका कारण यह है कि सम्मूर्च्छिम और गर्भज मनुष्य उत्कृष्ट, अंगुल प्रमाण क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उसके प्रथम वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जो परिमाण आता है उतने प्रदेशों वाले खण्ड घनीकृत लोक की एक प्रदेश की श्रेणी में जितने मनुष्य होते हैं उनमें से एक कम करते हैं उतने ही हैं जो कि शेष नैरयिक आदि जीव राशि की अपेक्षा बहुत कम है उनमें भी ऐसे मनुष्य कितने हैं जिन्होंने पूर्व भव में आहारक शरीर बनाया हो वे कदाचित् विवक्षित प्रश्न के समय संख्यात होते हैं और कदाचित् असंख्यात होते हैं इसलिए ऐसा कहा गया है कि अतीत आहारक समुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। मनुष्यों के भविष्य के आहारक समुद्घात भी इसी तरह कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात समझने चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाणं भंते! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! असंखेज्जा, एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं वणस्सइकाइया मणूसेसु इमं णाणत्तं।

वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता।

मणूसाणं भंते! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! सिय अत्थि सिय णत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहुत्तं।

केवइया पुरेक्खडा?

सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा॥ ६८८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने केवलिसमुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अतीत केवली समुद्घात एक भी नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने अनागत केवलि समुद्घात हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अनागत केवलि समुद्घात असंख्यात हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिक जीवों और मनुष्यों में भिन्नता है। यथा -

प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के अतीत केवली समुद्घात कितने हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिकों के अतीत केवलिसमुद्घात नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के अनागत केवली समुद्घात कितने हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिकों के अनागत केवली समुद्घात अनन्त हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने केवली समुद्घात अतीत है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के अतीत केवली समुद्घात कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट शतपृथक्त्व हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने अनागत केवली समुद्घात हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के अनागत केवलि समुद्घात कदाचित् संख्यात हैं और कदाचित् असंख्यात हैं।

विवेचन - नैरयिकों के अतीत केवलि समुद्घात एक भी नहीं होता, क्योंकि जिन जीवों ने केवलिसमुद्घात किया है उनका नरक गमन नहीं होता। नैरयिकों के भविष्य के केवलिसमुद्घात असंख्यात हैं क्योंकि विवक्षित प्रश्न के समय वर्तते नैरयिकों में असंख्यात नैरयिकों के भविष्य में केवलि समुद्घात होना है इस प्रकार केवलज्ञानियों ने जाना है। वनस्पतिकायिकों और मनुष्यों को छोड़ कर वैमानिक पर्यंत सभी जीवों के अतीत और अनागत केवली समुद्घात के विषय में इसी प्रकार समझना चाहिये।

वनस्पतिकायिक जीवों के अतीत केवली समुद्घात नहीं होते किन्तु अनागत केवली समुद्घात अनन्त होते हैं क्योंकि वनस्पतिकायिकों में अनन्त जीव ऐसे होते हैं जो भविष्य में केवलि समुद्घात करेंगे।

मनुष्यों के अतीत केवलिसमुद्घात कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते। तात्पर्य यह है कि जब प्रश्न के समय समुद्घात से निवृत्त हुए प्राप्त होते हैं तब होते और शेष काल में नहीं होते। उनमें उस समय जिन मनुष्यों ने केवलि समुद्घात किया है वे जघन्य से एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट से शत पृथक्त्व (२०० से ६०० झाझेरी तक) होते हैं क्योंकि उत्कृष्ट पद में एक समय इतने केवलज्ञानी केवली समुद्घात प्राप्त हुए होते हैं। मनुष्यों के कितने केवलि समुद्घात भविष्य में होंगे? इसके उत्तर में प्रभु फरमाते हैं कि - कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होने वाले हैं क्योंकि सम्मूर्च्छिम और गर्भज मनुष्य मिल कर भी असंख्यात ही होते हैं और उनमें भी विवक्षित प्रश्न के समय वर्तते मनुष्यों में बहुत से अभव्य होने से कदाचित् संख्यात केवलि समुद्घात होते हैं, कदाचित् असंख्यात होते हैं क्योंकि जिनके भविष्य में केवलि समुद्घात होने हैं ऐसे जीव बहुत होते हैं।

अब नैरयिकत्व आदि भावों में वर्तते हुए एक-एक नैरयिक आदि के पूर्व काल में कितने वेदना समुद्घात हुए हैं और कितने भविष्य काल में होते हैं इसका निरूपण करने की इच्छा वाले सूत्रकार कहते हैं -

नैरयिक आदि भावों में वर्तते हुए एक एक जीव के अतीत अनागत समुद्घात

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा। एवं असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में (नरक पर्याय में रहते हुए) कितने वेदना समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में अतीत वेदना समुद्घात अनंत हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में कितने अनागत वेदना समुद्घात होते हैं?

हे गौतम! एक एक नैरयिक के नैरयिकत्व में अनागत वेदना समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते हैं जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं। इसी प्रकार एक-एक नैरयिक के असुरकुमारत्व यावत् वैमानिकत्व में रहते हुए अतीत और अनागत वेदना समुद्घात समझने चाहिये।

विवेचन - नैरयिक पर्याय में रहे हुए एक-एक नैरयिक के अनन्त वेदना समुद्घात अतीत में हुए हैं क्योंकि उसने अनन्त बार नैरयिक पर्याय प्राप्त की है और एक-एक नरक भव में जघन्य संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं। एक एक नैरयिक के संसार से लगा कर मोक्ष गमन तक अनागत काल की अपेक्षा किसी के वेदना समुद्घात होते हैं और किसी के नहीं होते। जिस नैरयिक की मृत्यु निकट है वह कदाचित् वेदना समुद्घात किये बिना ही नरक से निकल करके मनुष्य भव पाकर सिद्ध हो जाता है उस नैरयिक की अपेक्षा भविष्य में वेदना समुद्घात नहीं होता। शेष नैरयिकों के वेदना समुद्घात होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन होते हैं। यह भी उन जीवों की अपेक्षा समझना चाहिये जिनका क्षीम हुआ शेष आयुष्य बाकी है और बाद के भव में सिद्ध होने वाले हैं किन्तु उनकी अपेक्षा नहीं समझना चाहिये जो पुनः नरक में उत्पन्न होने वाले हैं क्योंकि उनको तो जघन्य से भी संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं। इस संबंध में मूल टीकाकार कहते हैं - **"नरकेषु जघन्य स्थितिषूत्पन्नस्य नियमतः संख्येया एव वेदना समुद्घाता भवंति, वेदना समुद्घात प्रचुरत्वानारकाणाम् इति"** अर्थात् जघन्य स्थिति वाले नरकों में उत्पन्न होने वाले में अवश्य संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं क्योंकि वेदना समुद्घात वाले नैरयिक होते हैं। उत्कृष्ट से संख्यात, असंख्यात और अनंत वेदना समुद्घात कहे हैं। उनमें भी जो एक बार जघन्य स्थिति वाले नरक में उत्पन्न होने वाला हो उसके संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं। जघन्य स्थिति वाले नरक में अनेक बार और दीर्घ स्थिति वाले नरकों में एक बार या बार-बार उत्पन्न होने वाले नैरयिक हैं उनके असंख्यात और अनन्त बार उत्पन्न होने वाले हैं उनके अनन्त वेदना समुद्घात होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों की तरह ही असुरकुमारत्व में और उसके बाद के चौबीस दण्डकों के क्रम से निरन्तर यावत् वैमानिकत्व में कह देना चाहिये।

एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स णेरइयत्ते केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि तस्स सिय संखेज्जा वा सिय असंखेज्जा वा सिय अणंता वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के नैरयिकत्व में रहते हुए कितने वेदना समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक असुरकुमार के नैरयिकत्व में रहते हुए अतीत वेदना समुद्घात अनंत हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के नैरयिकत्व में रहते हुए कितने अनागत वेदना समुद्घात होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक असुरकुमार के नैरयिकत्व में रहते हुए अनागत वेदना समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके कदाचित् संख्यात कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं।

विवेचन - पूर्व में नैरयिकत्व को प्राप्त एक-एक असुरकुमार को नैरयिक पर्याय में रहते हुए सम्पूर्ण अतीत काल की अपेक्षा सभी मिला कर कितने वेदना समुद्घात पूर्व में हुए हैं? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं - हे गौतम! अतीतकाल में अनन्त हुए हैं क्योंकि उन्होंने अनंत बार नैरयिक पर्याय प्राप्त की है और एक नैरयिक के भव में जघन्य से भी संख्यात वेदना समुद्घात हुए है। भविष्य की अपेक्षा किसी को वेदना समुद्घात होता है किसी को नहीं होता। जो असुरकुमार के भव से निकल कर नरक में नहीं जाने वाला है किन्तु शीघ्र या परम्परा से मनुष्य भव प्राप्त कर सिद्ध होगा उसे नैरयिक पर्याय में भविष्य काल में वेदना समुद्घात नहीं होता। जो उस भव के बाद परम्परा से नरक में जायेगा उसे वेदना समुद्घात होता है उनमें भी किसी को संख्यात, किसी को असंख्यात और किसी को अनंत वेदना समुद्घात होते हैं। जो एक बार जघन्य स्थिति वाले नैरयिक में उत्पन्न होगा उस असुरकुमार के भविष्य में जघन्य संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं क्योंकि सर्व जघन्य स्थिति वाले नरकों में भी संख्यात वेदना समुद्घात होते हैं कारण कि नैरयिकों को बहुत वेदना होती है। अनेक बार जघन्य स्थिति वाले नरकों में और एक बार या अनेक बार दीर्घ स्थिति वाले नरकों में उत्पन्न होने से असंख्यात वेदना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्घात और अनंतबार नरक में जाने की अपेक्षा अनंत वेदना समुद्घात होते हैं। नारकी के दण्डक में एक जीव की अपेक्षा पूरे नरक भव में कम से कम संख्याता बार वेदना समुद्घात होती ही है। शेष २३ दण्डकों में पूरे भव में वेदना समुद्घात होती या नहीं भी होती है।

एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, एवं णागकुमारत्ते वि जाव वेमाणियत्ते एवं जहा वेयणा समुग्घाएणं असुरकुमारे णेरइयाइवेमाणिय पज्जवसाणेसु भणिओ तहा णागकुमाराइया अवसेसेसु सट्ठाणेसु परट्ठाणेसु भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते। एवमेए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा भवंति॥ ६८९॥

कठिन शब्दार्थ - सट्ठाणेसु - स्व स्थानों में, **परट्ठाणेसु** - पर स्थानों में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के असुरकुमारत्व (असुरकुमार पर्याय) में कितने वेदना समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक एक असुरकुमार के असुरकुमारत्व में अतीत वेदना समुद्घात अनंत हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के असुरकुमार पर्याय में कितने अनागत वेदना समुद्घात होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक असुरकुमार के असुरकुमारत्व में अनागत वेदना समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं। इसी प्रकार नागकुमारत्व यावत् वैमानिकत्व में अतीत और अनागत वेदना समुद्घात समझने चाहिये। जिस प्रकार असुरकुमार के नैरयिकत्व (नैरयिक पर्याय) से लेकर वैमानिकत्व (वैमानिक पर्याय) पर्यन्त वेदना समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार नागकुमार आदि से लेकर शेष सभी स्व स्थानों और पर स्थानों में वेदना समुद्घात यावत् वैमानिक के वैमानिकत्व पर्यंत कहने चाहिये। इसी प्रकार चौबीस दण्डकों में से प्रत्येक के चौबीस दण्डक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक-एक जीव के नैरयिक आदि पर्याय में कितने-कितने अतीत और अनागत वेदना समुद्घात हुए हैं उसकी प्ररूपणा की गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक-एक असुरकुमार जब वह असुरकुमार पर्याय में था तब भूतकाल में अनन्त वेदना समुद्घात हुए हैं तथा भविष्य में किसी के वेदना समुद्घात होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त अनागत वेदना समुद्घात होते हैं। जो असुरकुमार संख्यात बार असुरकुमार पर्याय में उत्पन्न होगा उसके संख्यात अनागत वेदना समुद्घात होते हैं। इसी प्रकार जो असुरकुमार असंख्यात बार या अनन्त बार असुरकुमार के रूप में उत्पन्न होगा उसके क्रमशः असंख्यात और अनन्त वेदना समुद्घात होंगे। जिस प्रकार असुरकुमार के असुरकुमार पर्याय में वेदना समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार असुरकुमार के नागकुमार यावत् वैमानिक पर्याय में भी अतीत और अनागत वेदना समुद्घात कहने चाहिये।

जिस प्रकार असुरकुमार के नैरयिकत्व यावत् वैमानिकत्व में वेदना समुद्घात का कथन किया है उसी प्रकार नागकुमार आदि के वेदना समुद्घात के विषय में भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् असुरकुमार के असुरकुमार रूप स्वस्थान में और असुरकुमार के नैरयिक आदि परस्थान में जितने जितने अतीत और अनागत वेदना समुद्घात कहे हैं उतने-उतने वेदना समुद्घात नागकुमार आदि से लेकर वैमानिकों तक में भी समझ लेने चाहिये।

इस प्रकार चौबीस दण्डकों में से प्रत्येक दण्डक का चौबीस दण्डकों को लेकर कथन करने से २४×२४ = ५७६ आलापक (भंग) होते हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एगुत्तरियाए जाव अणंता।

कठिन शब्दार्थ - एगुत्तरियाए - एकोत्तर-एक से लेकर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व (नैरयिक पर्याय) में कितने कषाय समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में अतीत कषाय समुद्गात अनन्त हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में कितने अनागत कषाय समुद्घात होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके एक से लेकर यावत् अनंत होते हैं।

विवेचन - एक-एक नैरयिक के नैरयिक अवस्था में सम्पूर्ण अतीत काल की अपेक्षा अनंत कषाय समुद्घात हुए हैं। भविष्य काल की अपेक्षा कषाय समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं। जिसका शेष आयुष्य क्षीण हो चुका है ऐसा प्रश्न के समय भव के अंत में वर्तता हुआ नैरयिक कषाय समुद्घात किये बिना ही नरक भव से निकल कर अनन्तर मनुष्य भव में या परम्परा से मनुष्य भव प्राप्त कर सिद्ध होगा, पुनः नरक गामी नहीं होगा उसे नैरयिक अवस्था में भविष्य में कषाय समुद्घात नहीं होता। उत्कृष्ट से भावी कषाय समुद्घात संख्यात, असंख्यात या अनंत होते हैं। उनमें भी जिनका संख्यात वर्ष का आयुष्य शेष हैं उनके संख्यात, असंख्यात वर्ष का आयुष्य जिनका बाकी है उनके असंख्यात कषाय समुद्घात होते हैं। अथवा एक बार जघन्य स्थिति वाले नरक में उत्पन्न होने वाले में संख्यात, बारबार जघन्य स्थिति वाले नरक में उत्पन्न होने वाले में एक बार या अनेक बार दीर्घ स्थिति वाले नरक में उत्पन्न होने वाले में असंख्यात और अनन्त बार उत्पन्न होने वाले में भविष्य काल की अपेक्षा अनन्त कषाय समुद्घात समझने चाहिये।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया कसाय समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता, एवं जाव णेरइयस्स थणियकुमारत्ते। पुढविकाइयत्ते एगुत्तरियाए णेयव्वं एवं जाव मणुयत्ते, वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते। जोइसियत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि जस्सऽत्थि सिय असंखेज्जा सिय अणंता, एवं वेमाणियत्ते वि सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक एक नैरयिक के असुरकुमारत्व (असुरकुमार पर्याय) में कितने कषाय समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के असुरकुमार पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनन्त हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के असुरकुमार पर्याय में अनागत कषाय समुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के असुरकुमारत्व में भावी कषाय समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं। इसी प्रकार नैरयिक का यावत् स्तनितकुमार पर्याय में समझना चाहिये। नैरयिक का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वीकायत्व में एक से लेकर जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् मनुष्य पर्याय में समझना चाहिये। वाणव्यंतरत्व में नैरयिक के असुरकुमारत्व के समान समझना। ज्योतिषी पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनंत हैं तथा अनागत कषाय समुद्घात किसी के होता है किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनंत होते हैं। इसी प्रकार वैमानिकत्व में भी कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनंत अनागत कषाय समुद्घात होते हैं।

विवेचन - एक-एक नैरयिक के असुरकुमार पर्याय में भूतकाल में अनन्त कषाय समुद्घात हुए हैं। भविष्य में जो नैरयिक असुरकुमार में उत्पन्न होगा उसके कषाय समुद्घात होंगे और जो नरक से निकल कर असुरकुमार पर्याय में उत्पन्न नहीं होगा उसके कषाय समुद्घात नहीं होंगे। जिसके अनागत कषाय समुद्घात होते हैं उसके कदाचित् संख्यात, असंख्यात या अनंत होते हैं। जो नैरयिक भविष्य में जघन्य स्थिति वाला असुरकुमार होगा उसके संख्यात कषाय समुद्घात होते हैं क्योंकि जघन्य स्थिति में भी असुरकुमारों के संख्यात कषाय समुद्घात होते हैं इसका कारण यह है कि वह लोभ आदि बहु कषाय वाला होता है। जो नैरयिक एक बार दीर्घ स्थिति वाले या अनेक बार जघन्य स्थिति वाले असुरकुमार में उत्पन्न होगा उसके असंख्यात कषाय समुद्घात होंगे और जो नैरयिक भविष्य में अनंत बार असुरकुमार पर्याय में उत्पन्न होगा उसे अनन्त अनागत कषाय समुद्घात होंगे।

जिस प्रकार नैरयिक के असुरकुमार पर्याय में अनागत कषाय समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक में भी कहने चाहिये।

नैरयिक के पृथ्वीकाय पर्याय में भूतकाल की अपेक्षा अनंत कषाय समुद्घात हुए हैं और भविष्य काल की अपेक्षा किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते हैं। जिसके होते हैं उसके पूर्ववत् एक से लगा कर हैं अर्थात् जघन्य एक, दो या तीन हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होते हैं जो इस प्रकार है - तिर्यंच पंचेन्द्रिय भव से, मनुष्य के भव से या देव के भव से कषाय समुद्घात को प्राप्त होकर जो एक बार पृथ्वीकायिक में जाने वाला है उसके एक, दो बार जाने वाले के दो, तीन बार जाने वाले के तीन, संख्यात बार जाने वाले के संख्यात, असंख्यात बार जाने वाले के असंख्यात और अनंत बार जाने वाले के अनन्त कषाय समुद्घात होते हैं। जो नरक से निकल कर पुनः पृथ्वीकायिक में कभी नहीं जाएगा उसके अनागत कषाय समुद्घात नहीं होंगे। जिस प्रकार नैरयिक के पृथ्वीकाय पर्याय में कषाय समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार यावत् मनुष्य तक अतीत और अनागत कषाय समुद्घात के विषय में समझ लेना चाहिये।

नैरयिक के असुरकुमार पर्याय में जिस प्रकार अतीत और अनागत कषाय समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार वाणव्यंतर पर्याय में भी समझना चाहिये। नैरयिक के ज्योतिषी पर्याय और वैमानिक पर्याय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूतकाल की अपेक्षा अनन्त कषाय समुद्घात हुए हैं और भविष्य काल की अपेक्षा किसी के कषाय समुद्घात होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं।

असुरकुमारस्स णेरइयत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा सिय अणंता। असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा एगुत्तरिया, एवं णागकुमारत्ते जाव णिरंतरं वेमाणियत्ते जहा णेरइयस्स भणियं तहेव भाणियव्वं, एवं जाव थणियकुमारस्स वि वेमाणियत्ते, णवरं सव्वेसिं सट्ठाणे एगुत्तरियाए, परट्ठाणे जहेव असुरकुमारस्स।

भावार्थ - असुरकुमार के नैरयिकत्व (नैरयिक पर्याय) में अतीत कषाय समुद्घात अनन्त होते हैं। अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं। असुरकुमार के असुरकुमार पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनन्त हैं और अनागत कषाय समुद्घात एक से लेकर कहने चाहिये। इसी प्रकार नागकुमार पर्याय से लगातार यावत् वैमानिक पर्याय तक जिस प्रकार नैरयिक के विषय में कहा है उसी प्रकार कह देना चाहिये। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक भी यावत् वैमानिकत्व (वैमानिक पर्याय) में पूर्ववत् समझना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इन सब के स्वस्थान में अनागत कषाय समुद्घात एक से लगा कर अनन्त तक है और परस्थान में असुरकुमार के अनागत कषाय समुद्घात के समान हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमारों के स्वस्थान और परस्थान की अपेक्षा कषाय समुद्घात का विचार किया गया है। असुरकुमारों का असुरकुमार पर्याय और नागकुमारों का नागकुमार पर्याय स्वस्थान हैं। शेष तेईस दण्डक परस्थान हैं। असुरकुमार के नैरयिकत्व (नैरयिक पर्याय) में कषाय समुद्घात अतीत काल में अनन्त होते हैं। भविष्यकाल में किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जो असुरकुमार के भव से निकल कर नरक में नहीं जाने वाला है उसके भविष्य में कषाय समुद्घात नहीं होते। जो नरक में जाने वाला है उसके भी जघन्य से संख्यात होते हैं क्योंकि जघन्य स्थिति वाले नरकों में भी संख्यात कषाय समुद्घात होते हैं। उत्कृष्ट से असंख्यात और अनन्त होते हैं। उनमें भी जघन्य स्थिति वाले नरकों में बारबार और दीर्घ स्थिति वाले नरकों में एक बार या अनेक बार जाने वाले के असंख्यात और अनन्त बार जाने वाले के अनन्त होते हैं।

असुरकुमार के असुरकुमार पर्याय में भूतकाल में अनन्त कषाय समुद्घात हुए हैं और भविष्यकाल में एक से लगा कर अनन्त तक होते हैं अर्थात् अनागत काल में जिसके कषाय समुद्घात होते हैं उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त कहने चाहिये। असुरकुमार के अतीत और अनागत कषाय समुद्घात के समान नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भी नैरयिक पर्याय से लेकर वैमानिक पर्याय तक के चौबीस दण्डकों में अतीत और अनागत कषाय समुद्घात समझने चाहिये। विशेषता यह है कि इन सब ꠰ ग्त्र स्थानों में अनागत कषाय समुद्घात जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त कहने चाहिये।

पुढविकाइयस्स णेरइयत्ते जाव थणियकुमारत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा सिय अणंता। पुढविकाइयस्स पुढविकाइयत्ते जाव मणूसत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि एगुत्तरिया।

वाणमंतरत्ते जहा णेरइयत्ते। जोइसियवेमाणियत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि सिय असंखिज्जा, सिय अणंता एवं जाव मणूसे वि णेयव्वं।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा असुरकुमारा, णवरं सट्ठाणे एगुत्तरियाए भाणियव्वे जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते। एवं एए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा ॥ ६९० ॥

भावार्थ - पृथ्वीकायिक जीव के नैरयिक पर्याय में यावत् स्तनितकुमार पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनन्त हुए हैं। अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते, जिसके होते हैं उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं। पृथ्वीकायिक के पृथ्वीकायिक पर्याय में यावत् मनुष्य पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनंत हुए हैं। अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके एक से लगा कर अनंत होते हैं।

वाणव्यंतर पर्याय में नैरयिकत्व के समान समझना चाहिये। ज्योतिषी और वैमानिक पर्याय में अतीत कषाय समुद्घात अनन्त हुए हैं। अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होते हैं। इसी प्रकार यावत् मनुष्य पर्याय तक में भी समझ लेना चाहिये।

वाणव्यंतरों, ज्योतिषियों और वैमानिकों का वर्णन असुरकुमारों के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि स्व स्थान में एक से लेकर समझना यावत् वैमानिक के वैमानिक पर्याय पर्यन्त कहना चाहिये। इसी प्रकार चौबीस दण्डक चौबीस दण्डकों में कहने चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पृथ्वीकायिक के नैरयिक पर्याय में यावत् स्तनितकुमार पर्याय में भूतकाल में अनंत कषाय समुद्घात हुए हैं। भविष्य में कषाय समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। उनमें जो पृथ्वीकाय के भव से निकल कर नरक में, असुरकुमार में यावत् स्तनितकुमार में जाने वाला नहीं है किन्तु मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष में जायेगा उसके कषाय समुद्घात नहीं होते। अन्य के होते हैं। जिसके होते हैं उसके जघन्य संख्यात होते हैं क्योंकि जघन्य स्थिति वाले नरक आदि में भी संख्यात कषाय समुद्घात होते हैं। उत्कृष्ट से असंख्यात अथवा अनंत होते हैं। पृथ्वीकायिक पर्याय में यावत् मनुष्य पर्याय में भूतकाल में अनंत कषाय समुद्घात हुए है। अनागत कषाय समुद्घात किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनंत होते हैं। उसका वर्णन जिस प्रकार नैरयिक का पृथ्वीकायिक पर्याय में कहा है उसी प्रकार समझना चाहिये।

वाणव्यंतर पर्याय में जिस प्रकार नैरयिक पर्याय में कहा उसी प्रकार कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि यहाँ एक से लगा कर अनन्त नहीं कहना परन्तु कदाचित् संख्यात होते हैं, कदाचित् असंख्यात होते हैं और कदाचित् अनंत होते हैं कहना चाहिये।

ज्योतिषी और वैमानिक पर्याय में भूतकाल में अनंत कषाय समुद्घात हुए हैं और भविष्यकाल में यदि कषाय समुद्घात होते हैं तो जघन्य असंख्यात और उत्कृष्ट अनंत समझने चाहिये। इसी प्रकार अप्कायिक यावत् मनुष्य के विषय में समझना चाहिये। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक के असुरकुमार की तरह कहना किन्तु भविष्य काल की अपेक्षा स्व स्थान में एक से लगाकर अनंत तक कहना चाहिये। पर स्थान की अपेक्षा जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा है उसी प्रकार कह देना चाहिये।

इस प्रकार कषाय समुद्घात के विषय में चौबीस संख्यात वाले चौबीस दंडक कहना चाहिये यानी प्रत्येक दण्डक का चौबीस दण्डकों को लेकर कथन करने से कुल २४×२४=५७६ भंग होते हैं।

मारणंतिय समुग्घाओ सट्ठाणे वि परट्ठाणे वि एगुत्तरियाए णेयव्वो जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते, एवमेव चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

वेउव्विय समुग्घाओ जहा कसाय समुग्घाओ तहा णिरवसेसो भाणियव्वो, णवरं जस्स णत्थि तस्स ण वुच्चइ, एत्थ वि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

तेयगसमुग्घाओ जहा मारणंतिय समुग्घाओ, णवरं जस्सऽत्थि एवं एए वि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा॥ ६९१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - मारणांतिक समुद्घात स्व स्थान में भी और पर स्थान में भी एकोत्तरिका-एक से लगा कर समझ लेना चाहिये यावत् वैमानिक का वैमानिकत्व में कहना चाहिये इसी प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीस दण्डकों में कह देना चाहिये।

वैक्रिय समुद्घात का कथन कषाय समुद्घात की तरह कहना चाहिये। विशेषता यह है कि जिसके वैक्रिय समुद्घात नहीं होता उसके विषय में कथन नहीं करना चाहिये। यहाँ भी चौबीस दण्डक चौबीस दण्डकों में कहने चाहिये।

तैजस समुद्घात का कथन मारणांतिक समुद्घात के समान कहना चाहिये। विशेषता यह है कि जिसके वह होता है उसी के कहना चाहिये। इसी प्रकार चौबीस दण्डक चौबीस दण्डकों में कहने चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों की चौबीस दण्डक पर्यायों में मारणांतिक समुद्घात वैक्रिय समुद्घात और तैजस समुद्घात प्ररूपणा की गयी है। नैरयिक के स्वस्थान नैरयिक पर्याय और परस्थान असुरकुमार आदि यावत् वैमानिक तक भूतकाल में अनन्त मारणांतिक समुद्घात हुए हैं। भविष्य में किसी के होते हैं और किसी के नहीं होते। जिसके अनागत मारणांतिक समुद्घात होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात और अनन्त होते हैं। जिस प्रकार नैरयिक के नैरयिकत्व आदि चौबीस स्वस्थानों-परस्थानों में अतीत और अनागत मारणांतिक समुद्घात की वक्तव्यता कही है उसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिकों तक चौबीस दण्डकों के स्वस्थानों और परस्थानों में अतीत और अनागत मारणांतिक समुद्घात कह देने चाहिये। कुल मिलाकर २४×२४=५७६ भंग होते हैं।

वैक्रिय समुद्घात का वर्णन कषाय समुद्घात की तरह ही समझना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि जिन जीवों में वैक्रिय समुद्घात संभव है उन्हीं में कहना चाहिये, जिन जीवों में वैक्रिय लब्धि नहीं होने से वैक्रिय समुद्गात नहीं होता उनमें यह कथन नहीं करना चाहिये। वैक्रिय समुद्घात में भी चौबीस दण्डकों की चौबीस दण्डकों में प्ररूपणा करनी चाहिये। इस प्रकार कुल मिला कर २४×२४=५७६ भंग होते हैं।

तैजस समुद्घात की प्ररूपणा मारणांतिक समुद्घात के समान समझनी चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि नैरयिकों, पांच स्थावरों और तीन विकलेन्द्रियों में तैजस समुद्घात संभव नहीं है अतएव उनमें कथन नहीं करना चाहिये। इनके अलावा जिसमें तैजस समुद्घात हो उसी का कथन करना चाहिये। इसी प्रकार चौबीस दण्डकों की चौबीस दण्डकों में प्ररूपणा करनी चाहिये। इसके भी कुल २४×२४=५७६ आलापक होते हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णत्थि। केवइया पुरेक्खडा? गोयमा! णत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा, उक्कोसेणं तिण्णि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि एवं सव्वजीवाणं मणुस्साणं भाणियव्वं।

मणूस्स मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं चत्तारि, एवं पुरेक्खडा वि। एवमेए चउवीसं चउवीसा दंडगा जाव वेमाणियत्ते॥ ६९२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक एक नैरयिक के नैरयिकत्व में कितने आहारक समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिक पर्याय में अतीत आहारक समुद्घात नहीं होते।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिकत्व में कितने अनागत आहारक समुद्घात होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक के नैरयिक पर्याय में अनागत आहारक समुद्घात भी नहीं होते। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्याय में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात का कथन समझना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्यत्व (मनुष्य पर्याय) में अतीत आहारक समुद्घात किसी के होता है और किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके जघन्य एक अथवा दो और उत्कृष्ट तीन होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक के मनुष्य पर्याय में अनागत आहारक समुद्घात कितने होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक के मनुष्य पर्याय में अनागत आहारक समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं। इसी प्रकार सभी जीवों और मनुष्यों के अतीत और अनागत आहारक समुद्घात के विषय में समझना चाहिये।

मनुष्य के मनुष्यत्व (मनुष्य पर्याय) में अतीत आहारक समुद्घात किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं। इसी प्रकार अनागत आहारक समुद्घात के विषय में समझना चाहिये। इस प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीस दण्डकों में यावत् वैमानिक के वैमानिकत्व में आहारक समुद्घात कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - नैरयिक के नैरयिक पर्याय में आहारक समुद्घात संभव नहीं होने से अतीत आहारक समुद्घात नहीं होते। इसी प्रकार अनागत आहारक समुद्घात भी नहीं होते क्योंकि नैरयिक पर्याय में जीव को आहारक लब्धि नहीं होती है और आहारक लब्धि के अभाव में आहारक समुद्घात संभव नहीं है। इसी प्रकार असुरकुमार आदि पर्याय में, पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर पर्यायों में, विकलेन्द्रिय पर्याय में, तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याय में, वाणव्यंतर पर्याय में, ज्योतिषी पर्याय में तथा वैमानिक पर्याय में अनागत आहारक समुद्घात नहीं होते क्योंकि इन सब पर्यायों में आहारक लब्धि नहीं होती। विशेषता यह है कि जब कोई नैरयिक पूर्व काल में मनुष्य पर्याय में रहा उसकी अपेक्षा किसी के आहारक समुद्घात होते हैं किसी के नहीं होते, जिसके होते हैं उसके जघन्य एक या दो उत्कृष्ट तीन होते हैं।

किसी नैरयिक के मनुष्यत्व में अनागत आहारक समुद्घात किसी के होते हैं किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट चार होते हैं। जिस प्रकार नैरयिक के मनुष्यत्व में आहारक समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार असुरकुमार आदि सभी जीवों में भी कह देना चाहिये किन्तु मनुष्य पर्याय में किसी मनुष्य के अतीत आहारक समुद्घात होते हैं किसी के नहीं होते, जिस के होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन होते हैं। इसी प्रकार अनागत आहारक समुद्घात भी किसी के होते हैं, किसी के नहीं होते। जिसके होते हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होते हैं। इस प्रकार इन चौबीस दण्डकों के चौबीस दण्डकों में कुल मिला कर २४×२४=५७६ आलापक होते हैं।

चौबीस दण्डकों में बहुत्व की अपेक्षा अतीत आदि समुद्घात

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि। एवं जाव वेमाणियत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को मणूसस्स मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को, एवं पुरेक्खडा वि। एवमेए चउवीसं चउवीसा दंडगा॥ ६९३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिक पर्याय में कितने केवलि समुद्घात अतीत हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिक पर्याय में अतीत केवलि समुद्घात नहीं हुए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के नैरयिक पर्याय में अनागत केवलि समुद्घात कितने होंगे?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के नैरयिक पर्याय में अनागत केवली समुद्घात नहीं होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिकत्व में केवली समुद्घात कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्यत्व में अतीत केवलि समुद्घात नहीं हुआ। अनागत केवली समुद्घात किसी के होता है किसी के नहीं होता। जिसके होता है, उसके एक होता है। मनुष्य के मनुष्यत्व में अतीत केवली समुद्घात किसी के होता है किसी के नहीं होता। जिसके होता है उसके एक होता है। इसी प्रकार अनागत केवलि समुद्घात के विषय में कह देना चाहिये। इसी प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीसों दण्डकों में समझना चाहिये।

विवेचन - मनुष्य पर्याय के अलावा सभी स्व-पर स्थानों में केवलि समुद्घात का अभाव होता है। अर्थात् मनुष्य पर्याय में ही केवलि समुद्घात होता है और वह भी एक ही बार होता है।

णेरइयाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया वेयणा समुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता। एवं जाव वेमाणियत्ते। एवं सव्वजीवाणं भाणियव्वं जाव वेमाणिया वेमाणियत्ते, एवं जाव तेयगसमुग्घाया णवरं उवउज्जिऊण णेयव्वं जस्स अत्थि वेउव्वियतेयगा॥ ६९४॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते हुए कितने वेदना समुद्घात अतीत काल में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते हुए अतीत काल में वेदना समुद्घात अनन्त हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अनागत वेदना समुद्घात कितने होंगे?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में भविष्य काल में अनंत वेदना समुद्घात होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिकत्व में कह देना चाहिये। इसी प्रकार सर्व जीवों के यावत् वैमानिकों के वैमानिक पर्याय में अतीत और अनागत वेदना समुद्घात कह देने चाहिये। इसी प्रकार यावत् तैजस समुद्घात तक कहना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि उपयोग लगा कर जिसके वैक्रिय और तैजस समुद्घात संभव हो उसी के कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बहुवचन की अपेक्षा नैरयिक आदि के उस उसपर्याय में रहे हुए अतीत-अनागत वेदना आदि समुद्घातों का निरूपण किया गया है। नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए भूतकाल में अनन्त वेदना समुद्घात हुए हैं क्योंकि अनेक नैरयिकों को अव्यवहार राशि से निकले अनंतकाल व्यतीत हो चुका है। भविष्यकाल म होने वाले वेदना समुद्घात भी अनन्त हैं क्योंकि वर्तमान में जो नैरयिक हैं उनमें से बहुत से नैरयिक अनन्तबार पुनः नरक में उत्पन्न होंगे। नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में वेदना समुद्घात कहे हैं उसी प्रकार असुरकुमार आदि यावत् वैमानिक पर्याय में नैरयिकों के अतीत और अनागत समुद्घात कह देने चाहिये।

नैरयिकों के समान ही वैमानिक तक के सभी जीवों के स्व स्थान में और परस्थान में अतीत और अनागत वेदना समुद्घात कहने चाहिये। वेदना समुद्घात के समान ही अतीत और अनागत कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात और तैजस समुद्घात चौबीस दण्डकों में समझना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि उपयोग लगा कर जिन जीवो में जो समुद्घात संभव है उनहीं का कथन करना चाहिये किन्तु जिन जीवों में जो समुद्घात नहीं है उनमें वे समुद्घात नहीं कहने चाहिये। जैसे - नैरयिक आदि या असुरकुमार आदि में वैक्रिय और तैजस समुद्घात संभव है उनका कथन करना जबकि शेष पृथ्वीकाय आदि स्थानों में उनका निषेध करना क्योंकि वे उनमें संभव नहीं है।

णेरइया णं भंते! णेरइयत्ते केवइया आहारग समुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते। णवरं मणूसत्ते अतीता असंखिज्जा पुरेक्खडा असंखिज्जा, एवं जाव वेमाणियाणं। णवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा अणंता। मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा एवं पुरेक्खडा वि। सेसा सव्वे जहा णेरइया, एवं एए चउवीसं चउवीसा दंडगा॥ ६९५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते हुए कितने आहारक समुद्घात अतीत काल में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते हुए भूतकाल में एक भी आहारक समुद्घात नहीं हुआ है।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में रहते हुए भविष्यकाल में कितने आहारक समुद्घात होंगे?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में भविष्यकाल में आहारक समुद्घात नहीं होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्याय में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात का कथन करना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्य पर्याय में असंख्यात अतीत और असंख्यात अनागत आहारक समुद्घात होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये। विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्य पर्याय में अनन्त अतीत और अनन्त अनागत आहारक समुद्घात होते हैं। मनुष्यों के मनुष्य पर्याय में अतीत आहारक समुद्घात कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार भविष्य काल के आहारक समुद्घात के विषय में समझना चाहिये। शेष सभी जीवों का कथन नैरयिकों के समान कह देना चाहिये। इसी प्रकार इन चौबीसों के चौबीस दण्डक होते हैं।

विवेचन - नैरयिकों में नैरयिक पर्याय में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात नहीं होते क्योंकि आहारक लब्धि होने पर ही आहारक शरीर से आहारक समुद्घात होता है। आहारक लब्धि चौदह पूर्वों का ज्ञान होने पर होती है और चौदह पूर्वों का ज्ञान मनुष्य पर्याय में ही होता है अतः मनुष्य पर्याय के अलावा अन्य पर्यायों में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात संभव नहीं है। जैसे नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में आहारक समुद्घात संभव नहीं है उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्याय में नैरयिकों के अतीत और अनागत आहारक समुद्घात संभव नहीं है। नैरयिकों के मनुष्य पर्याय में असंख्यात अतीत आहारक समुद्घात कहे गए हैं क्योंकि प्रश्न के समय वर्तते नैरयिकों में असंख्यात नैरयिक ऐसे हैं जिन्होंने पूर्व काल में मनुष्य पर्याय प्राप्त कर चौदह पूर्वों का अध्ययन किया है और एक बार दो बार या तीन बार आहारक समुद्घात भी किया है। भविष्यकाल में भी असंख्यात आहारक समुद्घात होंगे क्योंकि प्रश्न के समय विद्यमान नैरयिकों में से असंख्यात नैरयिक ऐसे हैं जो नरक से निकल कर अनन्तर भव में या परम्परा से मनुष्य भव प्राप्त करके चौदह पूर्वों का अध्ययन करके एक बार, दो बार या तीन बार या चार बार आहारक समुद्घात करेंगे। जिस प्रकार नैरयिकों का चौबीस दण्डक के क्रम से कथन किया है उसी प्रकार असुरकुमार आदि का भी प्रत्येक की अपेक्षा चौबीस दंडक के क्रम से यावत् वैमानिकों तक कथन करना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्य पर्याय में अतीत और अनागत आहारक समुद्घात अनन्त कहना चाहिये क्योंकि पूर्व में चौदह पूर्वों का अध्ययन कर जिन्होंने यथासंभव एक बार, दो बार या तीन बार आहारक समुद्घात किया है ऐसे अनन्त जीव वनस्पतिकाय में रहे हुए हैं। अनन्त जीव ऐसे भी हैं जो वनस्पतिकाय से निकल कर भविष्य में मनुष्य भव धारण कर यथासंभव एक बार, दो बार, तीन बार या चार बार आहारक समुद्घात करेंगे।

मनुष्यों के मनुष्य पर्याय में अतीत काल और अनागत काल में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात आहारक समुद्घात होते हैं। क्योंकि प्रश्न समय वर्तमान मनुष्य उत्कृष्ट रूप से भी सबसे थोड़े हैं क्योंकि वे श्रेणि के असंख्यातवें भाग की प्रदेश राशि प्रमाण है इसलिए विवक्षित प्रश्न के समय वर्तमान मनुष्यों में कदाचित् असंख्यात मनुष्य ऐसे हैं जिन्होंने यथासंभव एक बार, दो बार या तीन बार आहारक समुद्घात किया है या भविष्य में करेंगे। मनुष्यों के अलावा शेष सभी जीवों का कथन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिकों के समान समझना चाहिये। इस प्रकार आहारक समुद्घात के विषय में चौबीस दण्डकों के प्रत्येक २४×२४=५७६ आलापक होते हैं।

णेरइयाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया केवलि समुग्घाया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि, एवं जाव वेमाणियत्ते। णवरं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा असंखिज्जा, एवं जाव वेमाणिया, णवरं वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा अणंता। मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय अत्थि सिय णत्थि, जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं सयपुहुत्तं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! सिय संखिज्जा, सिय असंखिज्जा, एवं एए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा सव्वे पुच्छाए भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते॥ ६९६॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में कितने केवलि समुद्घात अतीत काल में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अतीत काल में केवलि समुद्घात नहीं हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में कितने केवलि समुद्घात अनागत काल में होंगे?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अनागत काल में केवलि समुद्घात नहीं होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्याय तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि मनुष्य पर्याय में अतीत काल में केवलि समुद्घात नहीं हुए किन्तु भविष्यकाल में असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये। विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्य पर्याय में अतीत केवलि समुद्घात नहीं हुए किन्तु भविष्यकाल में अनन्त होते हैं। मनुष्यों के मनुष्य पर्याय में अतीत केवलिसमुद्घात कदाचित् होते हैं कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत पृथक्त्व होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के अनागत काल में कितने केवलि समुद्घात होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के भविष्य काल में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात केवलि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्घात होते हैं। इसी प्रकार चौबीस दण्डकों में चौबीस दण्डकों का यावत् वैमानिकों के वैमानिक पर्याय तक कथन कर देना चाहिये।

विवेचन - केवलि समुद्घात् मनुष्य पर्याय में ही होती है, अन्य पर्यायों में नहीं और जिसने केवलि समुद्घात किया है वह संसार परिभ्रमण नहीं करता क्योंकि केवलि समुद्घात के अंतर्मुहूर्त बाद अवश्य मोक्षपद की प्राप्ति होती है। अतः नैरयिकों के मनुष्य पर्याय के अलावा शेष पर्यायों में अतीत और अनागत केवलि समुद्घात ही नहीं है। नैरयिकों के मनुष्य पर्याय में भी अतीत केवलिसमुद्घात नहीं है क्योंकि जिस जीव ने केवलि समुद्घात किया है उसका नरक गमन नहीं होता। भविष्यकाल में केवलि समुद्घात होगा क्योंकि प्रश्न समय में वर्तमान नैरयिकों में असंख्यात नैरयिक मुक्ति गमन के योग्य है अतः भविष्यकाल में असंख्यात केवलिसमुद्घात कहे गए हैं। जिस प्रकार नैरयिकों के केवलिसमुद्घात के विषय में कहा है उसी प्रकार असुरकुमार आदि यावत् वैमानिकों तक कह देना चाहिये, विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों के मनुष्य पर्याय में अतीत केवलि समुद्घात नहीं होते क्योंकि जिसने केवलि समुद्घात किया है उसका संसार नहीं होता किन्तु भविष्यकाल में अनंत केवलि समुद्घात होंगे क्योंकि प्रश्न समय में वर्तते वनस्पतिकायिकों में अनंत वनस्पतिकायिक जीव ऐसे हैं जो वनस्पतिकाय से निकल कर अनन्तर भव में या परम्परा से केवलि समुद्घात कर मोक्ष जाने वाले हैं।

मनुष्यों के मनुष्य पर्याय में भूतकाल में केवलि समुद्घात कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता क्योंकि जिसने केवलि समुद्घात किया है वह सिद्ध हुआ है और अन्य जीवों ने अभी केवलि समुद्घात किया नहीं है जब भूतकाल में केवलिसमुद्घात होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत पृथक्त्व-दो सौ से छह सौ झाझेरी होते हैं। भविष्यकाल में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात केवलि समुद्घात होते हैं क्योंकि प्रश्न समय वर्तमान मनुष्यों में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात यथासंभव अनन्तर भव अथवा परम्परा से केवलि समुद्घात कर सिद्ध होने वाले हैं। इस प्रकार चौबीस दण्डकों के चौबीस दण्डकों में कुल २४×२४=५७६ आलापक होते हैं।

समवहत एवं असमवहत जीवों के अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! जीवाणं वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतिय समुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं तेयगसमुग्घाएणं आहारगसमुग्घाएणं केवलिसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसमुग्घाएणं समोहया, केवलि समुग्घाएणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समोहया संखिज्जगुणा तेयगसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, वेउव्विय समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया अणंतगुणा, कसाय समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया संखिज्जगुणा॥ ६९७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से, मारणांतिक समुद्घात से, वैक्रिय समुद्घात से, तैजस समुद्घात से, आहारक समुद्घात से और केवलिसमुद्घात से समवहत और असमवहत जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े आहारक समुद्घात से समवहत जीव हैं, उनसे केवलिसमुद्घात से समवहत जीव संख्यात गुणा हैं, उनसे तैजस समुद्घात से समवहत जीव असंख्यात गुणा हैं उनसे वैक्रिय समुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणा हैं, उनसे मारणांतिक समुद्घात से समवहत जीव अनन्तगुणा हैं, उनसे कषाय समुद्घात से समवहत जीव असंख्यात गुणा हैं उनसे वेदना समुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं और उनसे भी असमवहत जीव संख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुद्घात वाले और समुद्घात से रहित जीवों का परस्पर अल्प बहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है -

सबसे थोड़े आहारक समुद्घात वाले जीव हैं क्योंकि आहारक शरीर कदाचित् इस लोक में छह माह तक होता भी नहीं (आहारक शरीर का विरह छह मास का है) और होता भी है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्र पृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार तक) ही होता है। आहारक समुद्घात आहारक शरीर के प्रारम्भ काल में ही होता है अन्य समयों में नहीं। आहारक समुद्घात के प्रारम्भ वाले जीव सम्पूर्ण आहारक समुद्घात वालों के संख्यातवें भाग जितने ही होते हैं। अर्थात् आहारक शरीर वाले सहस्र पृथक्त्व होने पर भी समुद्घात वाले जीव शत पृथक्त्व अर्थात् दो सौ-तीन सौ जितने ही होते हैं। अतः आहारक समुद्घात से समवहत जीव सबसे थोड़े कहे गये हैं। उनसे केवलि समुद्घात वाले जीव संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे एक समय शत पृथक्त्व (दो सौ से छह सौ झाझेरी तक) होते हैं। केवलि समुद्घात् वालों से तैजस समुद्घात वाले जीव असंख्यातगुणा होते हैं क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों और देवों में तैजस समुद्घात संभव हैं। उनसे भी वैक्रिय समुद्घात वाले जीव असंख्यातगुणा हैं क्योंकि नैरयिकों, देवों, वायुकायिकों, तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में भी वैक्रिय समुद्घात संभव है। वैक्रिय समुद्घात वालों से भी मारणांतिक समुद्घात वाले अनंतगुणा हैं क्योंकि अनंत निगोद जीवों के असंख्यातवें भाग सदैव विग्रहगति में होते हैं और वे अधिकांश मारणांतिक समुद्घात वाले होते हैं। मारणांतिक समुद्घात वालों से भी कषाय समुद्घात वाले जीव असंख्यात गुणा होते हैं क्योंकि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विग्रहगति को प्राप्त जीवों से भी असंख्यातगुणा अनन्त निगोद जीव कषाय समुद्घात वाले सदैव होते हैं। उनसे भी वेदना समुद्घात वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि अनन्त निगोद जीव सदैव वेदना समुद्घात वाले होते हैं। वेदना समुद्घात वालों से भी समुद्घात से रहित जीव संख्यातगुणा * हैं क्योंकि वेदना, कषाय और मरण समुद्घात वालों की अपेक्षा भी संख्यातगुणा * निगोद जीव सदैव समुद्घात रहित होते हैं।

एएसि णं भंते! णेरइयाणं वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतिय-समुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया, वेउव्विय समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया संखिज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से, मारणांतिक समुद्घात से एवं वैक्रिय समुद्घात से समवहत और असमवहत नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मारणांतिक समुद्घात से समवहत नैरयिक हैं उनसे वैक्रिय समुद्घात से समवहत नैरयिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय समुद्घात से समवहत नैरयिक संख्यातगुणा हैं, उनसे वेदना समुद्घात से समवहत नैरयिक संख्यातगुणा हैं और उनसे भी असमवहत (समुद्घात से रहित) नैरयिक संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुद्घात सहित और समुद्घात से रहित नैरयिकों की अल्प बहुत्व का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है -

सबसे थोड़े नैरयिक मारणांतिक समुद्घात वाले हैं क्योंकि मारणांतिक समुद्घात मरण के समय ही होता है और मरने वाले नैरयिकों की संख्या जीवित नैरयिकों की अपेक्षा अल्प होती है। मृत्यु प्राप्त करने वाले सभी नैरयिकों को सामान्य रूप से मरण समुद्घात नहीं होता किन्तु कितनेक को होता है क्योंकि **'समोहया वि मरंति, असमोहया मरंति'** - समुद्घात वाले भी मरते हैं और समुद्घात के बिना भी मरते हैं-ऐसा शास्त्र वचन है। इसलिए सबसे थोड़े मारणांतिक समुद्घात वाले नैरयिक होते हैं।

---

* किन्हीं किन्हीं प्रतियों में '**असंख्यात गुणा**' पाठ दिया है किन्तु यहाँ पर '**संख्यात गुणा**' का पाठ होना ही उचित है क्योंकि तीसरे पद में (२५६ ढिगले के वर्णन में) समुद्घात वालों से असमवहत जीवों को संख्यातगुणा ही बताया है तथा आगे आने वाले कषाय समुद्घातों की अल्पबहुत्वों से भी संख्यात गुणा पाठ होना ही उचित लगता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनसे भी वैक्रिय समुद्घात वाले नैरयिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि रत्नप्रभा आदि सातों नरक पृथ्वियों में परस्पर दुःख उत्पन्न करने के लिए अनेकों नैरयिक निरन्तर उत्तर वैक्रिय करते रहते हैं। उनसे भी कषाय समुद्घात वाले नैरयिक संख्यातगुणा हैं क्योंकि उत्तर वैक्रिय करने वाले और उत्तरवैक्रिय नहीं करने वालों से भी क्रोधादि कषाय वाले नैरयिक संख्यातगुणा होते हैं। कषाय समुद्घात वाले नैरयिकों से भी वेदना समुद्घात वाले नैरयिक संख्यातगुणा अधिक होते हैं क्योंकि क्षेत्रजन्य, परमाधार्मिकों द्वारा उत्पन्न की हुई और परस्पर उत्पन्न की हुई वेदना के कारण प्रायः बहुत से नैरयिक वेदना समुद्घात वाले होते हैं। उनसे भी समुद्घात रहित नैरयिक संख्यात गुणा अधिक हैं क्योंकि बहुत से नैरयिक वेदना समुद्घात के बिना भी वेदना का अनुभव करते रहते हैं इसलिए असमवहत नैरयिक सबसे ज्यादा हैं।

एएसि णं भंते! असुरकुमाराणं वेयणा समुग्घाएणं कसाय समुग्घाएणं मारणंतिय समुग्घाएणं वेउव्विय समुग्घाएणं तेयगसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा असुरकुमारा तेयगसमुग्घाएणं समोहया, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, वेयणा समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, कसाय-समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया असंखिज्जगुणा एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से, मारणांतिक समुद्घात से, वैक्रिय समुद्घात से तथा तैजस समुद्घात से समवहत और असमवहत असुरकुमारों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े तैजस समुद्घात से समवहत असुरकुमार हैं, उनसे मारणांतिक समुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं उनसे वेदना समुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय समुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं उनसे वैक्रिय समुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं और उनसे भी असमवहत असुरकुमार असंख्यातगुणा अधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार आदि में समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े असुरकुमार तैजस समुद्घात वाले हैं क्योंकि अत्यन्त तीव्र क्रोध उत्पन्न होने पर ही कदाचित् कोई असुरकुमार तैजस समुद्घात करते हैं। उनसे मारणांतिक समुद्घात वाले असुरकुमार असंख्यातगुणा अधिक हैं क्योंकि मारणांतिक समुद्घात मरण काल में होता है। उनसे वेदना समुद्घात वाले असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं क्योंकि परस्पर युद्ध आदि करने में बहुत से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमार वेदना समुद्घात करते हैं। उनसे भी कषाय समुद्घात वाले असुरकुमार संख्यातगुणा हैं क्योंकि चाहे जिस कारण से उनमें कषाय समुद्घात संभव है। कषाय समुद्घात वाले असुरकुमार से भी वैक्रिय समुद्घात वाले असुरकुमार संख्यातगुणा हैं क्योंकि परिचारणा आदि अनेकों निमित्तों से बहुत से असुरकुमारों में उत्तरवैक्रिय शरीर का आरंभ संभव है। उनसे भी समुद्घात रहित असुरकुमार असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बहुत से उत्तम जाति वाले और सुखसागर में लीन देव पूर्व की अपेक्षा असंख्यातगुणा किसी भी समुद्घात से रहित सदैव होते हैं। जिस प्रकार असुरकुमार का अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार सभी भवनपति देवों यावत् स्तनितकुमारों का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिये।

एएसि णं भंते! पुढवीकाइयाणं वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतिय-समुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुढवीकाइया मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया, कसाय समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, वेयणा समुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखिज्जगुणा। एवं जाव वणस्सइकाइया, णवरं सव्वत्थोवा वाउक्काइया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया, मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, कसाय समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, वेयणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया असंखिज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से एवं मारणांतिक समुद्घात से समवहत और असमवहत पृथ्वीकायिकों में कौन किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मारणांतिक समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक हैं उनसे कषाय समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक संख्यातगुणा है उनसे वेदना समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं और उनसे भी असमवहत पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक समझना चाहिये। विशेषता यह है कि वायुकायिक जीवों में सबसे कम वैक्रिय समुद्घात से समवहत हैं, उनसे मारणांतिक समुद्घात से समवहत वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय समुद्घात से समवहत वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं, उनसे वेदना समुद्घात से समवहत वायुकायिक विशेषाधिक हैं और उनसे भी असमवहत वायुकायिक जीव असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - वायुकाय को छोड़ कर पृथ्वीकाय आदि चार स्थावरों में सबसे थोड़े मारणांतिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्घात वाले हैं क्योंकि यह समुद्घात मरण के समय ही होता है और किसी को होता है किसी को नहीं। उनसे कषाय समुद्घात वाले पृथ्वीकायिक आदि जीव संख्यातगुणा हैं, उनसे वेदना समुद्घात वाले संख्यातगुणा हैं और उनसे भी समुद्घात से रहित पृथ्वीकायिक आदि जीव असंख्यातगुणा हैं।

वायुकायिक जीवों की अल्पबहुत्व इस प्रकार है - सबसे थोड़े वायुकायिक वैक्रिय समुद्घात वाले हैं क्योंकि बादर पर्याप्त के संख्यातवें भाग मात्र को ही वैक्रिय लब्धि संभव है। उनसे मारणांतिक समुद्घात वाले वायुकायिक असंख्यातगुणा हैं क्योंकि पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर भेद वाले सभी वायुकायिकों में मरण समुद्घात संभव है। उनसे भी कषाय समुद्घात वाले वायुकायिक संख्यातगुणा हैं, उनसे भी वेदना समुद्घात वाले वायुकायिक विशेषाधिक हैं। उनसे भी समुद्घात रहित असंख्यातगुणा हैं क्योंकि सर्व समुद्घातों को प्राप्त वायुकायिकों की अपेक्षा स्वभाव स्थित वायुकायिक जीव स्वभाव से ही असंख्यातगुणा हैं।

बेइंदियाणं भंते! वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बेइंदिया मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया, वेयणासमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा असमोहया संखिज्जगुणा एवं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से तथा मारणांतिक समुद्घात से समवहत और असमवहत बेइन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मारणांतिक समुद्घात से समवहत बेइन्द्रिय जीव हैं उनसे वेदना समुद्घात से समवहत बेइन्द्रिय जीव असंख्यातगुणा हैं उनसे कषाय समुद्घात से समवहत संख्यात गुणा हैं और उनसे भी असमवहत बेइन्द्रिय जीव संख्यातगुणा हैं, इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकलेन्द्रिय जीवों का समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े बेइन्द्रिय जीव मारणांतिक समुद्घात वाले हैं क्योंकि प्रश्न समय अमुक बेइन्द्रियों का ही मरण संभव है। उनसे वेदना समुद्घात वाले बेइन्द्रिय असंख्यातगुणा हैं क्योंकि सर्दी गर्मी आदि से बहुत बेइन्द्रियों में वेदना समुद्घात होता है। उनसे कषाय समुद्घात वाले संख्यातगुणा हैं क्योंकि बहुत से बेइन्द्रिय जीवों मे लोभ आदि कषाय समुद्घात का सद्भाव है। उनसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी समुद्घात रहित बेइन्द्रिय जीव संख्यातगुणा हैं। जिस प्रकार बेइन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व भी समझ लेना चाहिये।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! वेयणा समुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतिय समुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं तेयासमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया तेयासमुग्घाएणं समोहया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, वेयणा समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा कसायसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया संखिज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से, मारणांतिक समुद्घात से, वैक्रिय समुद्घात से, तैजस समुद्घात से समवहत एवं असमवहत पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कौन किनसे अल्प, बहुत्त्व, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े तैजस समुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं उनसे वैक्रिय समुद्घात से समवहत असंख्यातगुणा हैं, उनसे मारणांतिक समुद्घात से समवहत असंख्यातगुणा हैं उनसे वेदना समुद्घात से समवहत असंख्यातगुणा हैं, उनसे कषाय समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा हैं और उनसे भी असमवहत पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में समुद्घात की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, जो इस प्रकार है - सबसे थोड़े तैजस समुद्घात वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच है क्योंकि बहुत थोड़ों में तेजोलब्धि होती है। उनसे वैक्रिय समुद्घात वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा हैं क्योंकि बहुत से जीवों को वैक्रिय लब्धि होती है। उनसे मारणांतिक समुद्घात वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्यातगुणा हैं क्योंकि वैक्रिय लब्धि से रहित सम्मूर्च्छिम जलचर, स्थलचर और खेचर भी तथा कितनेक वैक्रिय लब्धि रहित और वैक्रिय लब्धि वाले गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों में भी मरण समुद्घात संभव है। उनसे वेदना समुद्घात वाले असंख्यातगुणा हैं क्योंकि मरने वाले जीवों की अपेक्षा भी नहीं मरने वाले असंख्यातगुणा तिर्यंचों में भी वेदना समुद्घात संभव है। उनसे कषाय समुद्घात वाले संख्यातगुणा हैं। उनसे भी समुद्घात रहित तिर्यंच पंचेन्द्रिय संख्यात गुणा हैं।

मणुस्साणं भंते! वेयणासमुग्घाएणं कसायसमुग्घाएणं मारणंतियसमुग्घाएणं वेउव्वियसमुग्घाएणं तेयगसमुग्घाएणं आहारगसमुग्घाएणं केवलिसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा आहारगसमुग्घाएणं समोहया, केवलि समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, तेयगसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, वेयणा समुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा, कसायसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया असंखिज्जगुणा। वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं ॥ ६९८ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना समुद्घात से, कषाय समुद्घात से, मारणांतिक समुद्घात से, वैक्रिय समुद्घात से, तैजस समुद्घात से, आहारक समुद्घात से तथा केवलि समुद्घात से समवहत और असमवहत मनुष्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े आहारक समुद्घात से समवहत मनुष्य हैं। उनसे केवलि समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा, उनसे तैजस समुद्घात से समवहत संख्यात गुणा, उनसे वैक्रिय समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा, उनसे मारणांतिक समुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणा, उनसे वेदना समुद्घात से समवहत असंख्यातगुणा और उनसे कषाय समुद्घात से समवहत मनुष्य संख्यातगुणा हैं और उनसे भी असमवहत मनुष्य असंख्यातगुणा हैं।

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिकों की समुद्घात विषयक अल्पबहुत्व असुरकुमारों के समान समझ लेनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य में पाये जाने वाले समुद्घात विषयक अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। जो इस प्रकार है -

सबसे थोड़े आहारक समुद्घात वाले मनुष्य हैं क्योंकि सबसे थोड़े मनुष्यों को एक काल में आहारक शरीर का प्रारम्भ संभव है। उनसे केवलि समुद्घात वाले मनुष्य संख्यात गुणा हैं क्योंकि वे शत पृथक्त्व-दो सौ से छह सौ झाझेरी तक की संख्या में पाये जाते हैं। उनसे तैजस समुद्घात वाले संख्यातगुणा हैं क्योंकि वे संख्या में लाखों प्रमाण पाये जाते हैं। उनसे वैक्रिय समुद्घात वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि वे करोड़ों प्रमाण होते हैं। उनसे मारणांतिक समुद्घात वाले असंख्यातगुणा हैं क्योंकि सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को भी मरण समुद्घात संभव हैं और वे असंख्याता हैं। उनमें भी वेदना समुद्घात वाले मनुष्य असंख्यात गुणा हैं क्योंकि मरण पाते हुए जीवों की अपेक्षा मरण नहीं पाने वाले असंख्यातगुणा जीवों को वेदना समुद्घात संभव है। उनसे भी कषाय समुद्घात वाले मनुष्य संख्यात गुणा हैं क्योंकि वे बहुत हैं। उनसे भी समुद्घात रहित मनुष्य असंख्यातगुणा हैं क्योंकि उत्कृष्ट कषाय करने वालों की अपेक्षा असंख्यातगुणा अल्पकषाय वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य सदैव पाये जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की वक्तव्यता असुरकुमारों के समान कह देनी चाहिये। इस प्रकार समुद्घात वाले और समुद्घात से रहित जीवों की अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

कषाय समुद्घात के भेद

कइ णं भंते! कसायसमुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसाय समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा-कोह समुग्घाए, माण समुग्घाए, माया समुग्घाए, लोह समुग्घाए।

णेरइयाणं भंते! कइ कसाय समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसायसमुग्घाया पण्णत्ता, एवं जाव वेमाणियाणं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कषाय समुद्घात कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! कषाय समुद्घात चार कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. क्रोध समुद्घात २. मान समुद्घात ३. मायाँ समुद्घात और ४. लोभ समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने कषाय समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के चारों कषाय समुद्घात कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कषाय समुद्घात के चार भेद तथा नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डकों में चारों प्रकार के कषाय समुद्घातों के अस्तित्व की प्ररूपणा की गयी है।

चौबीस दण्डकों में कषाय समुद्घात

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया कोहसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा, एवं जाव वेमाणियस्स, एवं जाव लोहसमुग्घाए, एए चत्तारि दंडगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के अतीत (भूतकाल) में कितने क्रोध समुद्घात हुए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के भूतकाल में अनन्त क्रोध समुद्घात हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के पुरस्कृत (भविष्यकाल में) कितने क्रोध समुद्घात होंगे?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के भविष्यकाल में किसी के क्रोध समुद्घात होगा किसी के नहीं होगा, जिसके होगा उसके जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक समझना चाहिये। इसी प्रकार यावत् लोभ समुद्घात तक नैरयिक से लेकर वैमानिक तक कथन कर देना चाहिये। इस प्रकार ये चार दण्डक हुए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डक के क्रम से वैमानिक पर्यन्त एक एक नैरयिक आदि की कषाय समुद्घात के विषय में वक्तव्यता कही है। एक-एक नैरयिक के अतीत काल में अनंत क्रोध समुद्घात हुए हैं। भविष्य काल की अपेक्षा किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे। जो नैरयिक नरकभव के अंतिम समय में वर्तमान है और स्वभाव से ही अल्पकषायी है वह कषाय समुद्घात किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त होकर नरक से निकल कर मनुष्य भव में उत्पन्न होने वाला है और कषाय समुद्घात किये बिना ही सिद्ध हो जायगा, उस के एक भी कषाय समुद्घात भविष्य में नहीं होगा। जिसके भविष्य में कषाय समुद्घात होंगे उसके जघन्य एक, दो या तीन होंगे और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त होंगे। संख्यात काल तक संसार में रहने वाले के संख्यात, असंख्यात काल तक संसार में रहने वाले के असंख्यात और अनंतकाल तक संसार में रहने वाले के अनंत कषाय समुद्घात भविष्यकाल में होंगे। इस प्रकार एक वचन की अपेक्षा चौबीस दण्डकों के २४×४=९६ आलापक हुए।

णेरइया णं भंते! केवइया कोहसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता। एवं जाव वेमाणियाणं, एवं जाव लोह समुग्घाए एवं एए वि चत्तारि दंडगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने क्रोध समुद्घात अतीत काल में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अतीतकाल में अनंत क्रोध समुद्घात हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के पुरस्कृत (भविष्यकाल में) कितने क्रोध समुद्घात होंगे?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अनागत क्रोध समुद्घात अनंत होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना चाहिये। इसी प्रकार यावत् लोभ समुद्घात तक कह देना चाहिये। इस प्रकार ये चार दंडक हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - बहुवचन की अपेक्षा नैरयिकों से लगा कर वैमानिकों तक के अतीत और अनागत क्रोध आदि समुद्घात अनन्त हैं। भविष्यकाल में भी अनंत कषाय समुद्घात इसलिए कहे हैं कि प्रश्न के समय बहुत से नैरयिक ऐसे हैं जो अनन्तकाल तक संसार में रहेंगे। इस प्रकार सभी नैरयिकों के चौबीस दण्डकों की अपेक्षा २४×४=९६ आलापक होते हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता। एवं जहा वेयणा समुग्घाओ भणिओ तहा कोह समुग्घाओ वि भाणियव्वो णिरवसेसं जाव वेमाणियत्ते। माणसमुग्घाए मायासमुग्घाए वि णिरवसेसं जहा मारणंतिय समुग्घाए, लोह समुग्घाओ जहा कसाय समुग्घाओ, णवरं सव्वजीवा असुराइणेरइएसु लोह कसाएणं एगुत्तरियाए णेयव्वा॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में कितने क्रोध समुद्घात अतीतकाल में हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अतीत काल में अनन्त क्रोध समुद्घात हुए हैं। जिस प्रकार वेदना समुद्घात का कथन किया है उसी प्रकार यहां क्रोध समुद्घात का भी सम्पूर्ण रूप से यावत् वैमानिक पर्याय तक कथन करना चाहिये। इसी प्रकार मान समुद्घात और माया समुद्घात के विषय में सारा वर्णन मारणांतिक समुद्घात के समान कहना चाहिये। लोभ समुद्घात की वक्तव्यता कषाय समुद्घात के समान कहनी चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि असुरकुमार आदि सभी जीवों का नैरयिक पर्याय में लोभ कषाय समुद्घात की प्ररूपणा एक से लेकर करनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि नैरयिक पर्याय को प्राप्त एक-एक नैरयिक ने सर्व संख्या से भूतकाल में अनंत क्रोध समुद्घात किये हैं क्योंकि उसने नरक गति अनंत बार प्राप्त की है और एक नरक भव में जघन्य रूप से संख्यात क्रोध समुद्घात होते हैं। जिस प्रकार वेदना समुद्घात के विषय में कहा है उसी प्रकार यावत् वैमानिक के वैमानिकत्व तक चौबीस दण्डकों में निरवशेष-समस्त रूप से कह देना चाहिये। जिस प्रकार मारणांतिक समुद्घात के विषय में पूर्व में सूत्र कहे हैं उसी प्रकार मान समुद्घात और माया समुद्घात के विषय में भी समझ लेना चाहिये अर्थात् मान समुद्घात के चौबीस सूत्र चौबीस दंडक के क्रम से और माया समुद्घात के चौबीस सूत्र चौबीस दंडक के क्रम से कह देना चाहिये। जिस प्रकार कषाय समुद्घात कहा उसी प्रकार लोभ समुद्घात भी कहना चाहिये परन्तु असुरकुमार आदि सर्व जीव नैरयिकों में एकोत्तर रूप से-एक से लगा कर अनन्त समुद्घात समझने चाहिये। अतिशय दुःख की वेदना से पीड़ित हमेशा उद्वेग को प्राप्त नैरयिकों में प्रायः लोभ समुद्घात असंभव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता?

गोयमा! अणंता।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता, एवं जाव वेमाणियत्ते, एवं सट्ठाण परट्ठाणेसु सव्वत्थ भाणियव्वा, सव्वजीवाणं चत्तारि वि समुग्घाया जाव लोहसमुग्घाओ जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते ॥ ६९९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में कितने क्रोध समुद्घात अतीत (भूतकाल में) हुए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अतीतकाल में अनन्त क्रोध समुद्घात हुए हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में अनागत काल में कितने क्रोध समुद्घात होंगे?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के नैरयिक पर्याय में भविष्यकाल में अनन्त क्रोध समुद्घात होंगे। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्याय तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार स्व स्थान, पर स्थानों में सर्वत्र क्रोध समुद्घात से लेकर यावत् लोभ समुद्घात तक यावत् वैमानिकों के वैमानिक पर्याय में रहते हुए सभी जीवों के चारों समुद्घात कह देने चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों संबंधी नैरयिक आदि स्व पर्यायों और परपर्यायों में बहुवचन की अपेक्षा से क्रोध आदि चारों समुद्घातों का अतीत और अनागत काल की अपेक्षा निरूपण किया गया है।

एएसि णं भंते! जीवाणं कोहसमुग्घाएणं माणसमुग्घाएणं मायासमुग्घाएणं लोभसमुग्घाएण य समोहयाणं अकसायसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पवा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा अकसायसमुग्घाएणं समोहया, माणसमुग्घाएणं समोहया अणंतगुणा, कोह समुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, माया समुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, लोभ समुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया संखिज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रोध समुद्घात से, मान समुद्घात से, माया समुद्घात से और लोभ समुद्घात से तथा अकषाय समुद्घात से समवहत और असमवहत जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े अकषाय समुद्घात (केवली समुद्घात वाले तथा कषाय से रहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सभी जीव अर्थात् ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक के सभी जीव) से समवहत जीव हैं, उनसे मान कषाय से समवहत अनंतगुणा, उनसे क्रोध समुद्घात से समवहत विशेषाधिक, उनसे माया समुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक, उनसे लोभ समुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक और उनसे भी असमवहत जीव संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्रोधादि समुद्घात वाले, अकषाय समुद्घात वाले और समुद्घात रहित जीवों का सामान्य रूप से अल्पबहुत्त्व कहा गया है जो इस प्रकार है- सबसे थोड़े अकषाय समुद्घात वाले (केवली समुद्घात वाले तथा कषाय से रहित सभी जीव अर्थात् ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक के सभी जीव) जीव हैं। उनसे मान समुद्घात वाले जीव अनंतगुणा हैं क्योंकि अनन्त वनस्पति जीव पूर्व भव के संबंध से मान समुद्घात में वर्तते होते हैं। उनसे क्रोध समुद्घात वाले जीव विशेषाधिक हैं क्योंकि मानी की उपेक्षा क्रोधी बहुत होते हैं। उनसे माया समुद्घात वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि क्रोधी की अपेक्षा मायावी बहुत होते हैं। उनसे लोभ समुद्घात वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि मायावी से भी लोभी बहुत होते हैं। लोभ समुद्घात वाले से समुद्घात रहित जीव संख्यातगुणा हैं क्योंकि चारों गतियों में समुद्घात युक्त जीवों की अपेक्षा समुद्घात रहित जीव संख्यातगुणा अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ समुच्चय जीव और मनुष्य के वर्णन में ही अकषाय समुद्घात बताई है। अत: वीतरागी जीवों को ही यहां पर ग्रहण किया गया है। यदि अकषाय समुद्घात से कषाय समुद्घात के सिवाय अन्य समुद्घातों का ग्रहण होता तो अन्य दण्डकों में भी उसे बताया जाता परन्तु बताया नहीं है।

जैसे प्रज्ञापना सूत्र के १५ वें पद के उद्देशक १ में मारणांतिक समुद्घात से मरण को ही ग्रहण किया गया है, इसी प्रकार यहाँ पर भी अकषाय समुद्घात से कषाय रहित (वीतरागी) जीवों का ही ग्रहण हुआ है। शेष समुद्घात वाले जीवों का ग्रहण तो सबसे अन्त में आये हुए 'असमवहत' शब्द से हुआ है।

एएसि णं भंते! णेरइयाणं कोहसमुग्घाएणं माणसमुग्घाएणं मायासमुग्घाएणं लोभसमुग्घाएणं समोहयाणं असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइया लोभसमुग्घाएणं समोहया, माया समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, माणसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, कोह समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया संखिज्जगुणा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन क्रोध समुद्घात से, मान समुद्घात से, माया समुद्घात से और लोभ समुद्घात से समवहत और असमवहत नैरयिकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े नैरयिक लोभ समुद्घात से समवहत हैं उनसे माया समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा, उनसे मान समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा, उनसे क्रोध समुद्घात से समवहत संख्यात गुणा और उनसे भी समुद्घात से रहित नैरयिक संख्यातगुणा हैं।

विवेचन - नैरयिकों में लोभ समुद्घात वाले सबसे कम हैं क्योंकि नैरयिकों को इष्ट वस्तु के संयोग का अभाव होने से प्रायः लोभ समुद्घात नहीं होता और होती भी है तो बहुत कम होता है। उनसे माया समुद्घात, मान समुद्घात, क्रोध समुद्घात और समुद्घात से रहित नैरयिक उत्तरोत्तर संख्यातगुणा अधिक हैं।

असुरकुमाराणं पुच्छा?

गोयमा! सव्वत्थोवा असुरकुमारा कोहसमुग्घाएणं समोहया, माणसमुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, माया समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, लोभ समुग्घाएणं समोहया संखिज्जगुणा, असमोहया संखिज्जगुणा, एवं सव्वदेवा जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रोध आदि से समवहत और असमवहत असुरकुमारों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े क्रोध समुद्घात से समवहत असुरकुमार हैं, उनसे मान समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा हैं, उनसे माया समुद्घात से समवहत संख्यातगुणा हैं और उनसे लोभसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणा है उनसे भी असमवहत असुरकुमार संख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी देवों के विषय में समझ लेना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवों में कषाय समुद्घात का अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है-असुरकुमार आदि देवों में सबसे थोड़े क्रोध समुद्घात वाले हैं, उनसे मान समुद्घात वाले संख्यात गुणा हैं उनसे माया समुद्घात वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे लोभ समुद्घात वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि देवों में स्वभावतः लोभ की प्रचुरता होती है। उनसे भी समुद्घात से रहित असुरकुमार देव संख्यातगुणा हैं। असुरकुमार के समान ही शेष सभी देवों का अल्प बहुत्व भी समझ लेना चाहिये।

पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुढवीकाइया माणसमुग्घाएणं समोहया, कोहसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, मायासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, लोभसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया, असमोहया संखिज्जगुणा। एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा जीवा, णवरं माणसमुग्घाएणं समोहया असंखिज्जगुणा॥ ७००॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - पृथ्वीकायिकों के संबंध में पृच्छा?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मान समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक हैं, उनसे क्रोध समुद्घात से समवहत विशेषाधिक, उनसे माया समुद्घात से समवहत विशेषाधिक और उनसे लोभ समुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं तथा उनसे भी असमवहत पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणा हैं। इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के अल्पबहुत्व के विषय में समझना चाहिये। मनुष्यों के अल्प बहुत्व की वक्तव्यता समुच्चय जीवों के समान है किन्तु विशेषता यह है कि मानसमुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणा हैं।

विवेचन - पृथ्वीकायिकों में मान समुद्घात वाले सबसे थोड़े हैं, उनसे क्रोध समुद्घात वाले विशेषाधिक, उनसे माया समुद्घात वाले विशेषाधिक और उनसे लोभ समुद्घात वाले विशेषाधिक हैं उनसे भी समुद्घात रहित पृथ्वीकायिक जीव संख्यात गुणा हैं। पृथ्वीकायिकों की अल्प बहुत्व के समान शेष एकेन्द्रियों, विकलेन्द्रियों एवं तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अल्प बहुत्व भी समझ लेनी चाहिये। मनुष्यों की अल्प बहुत्व समुच्चय जीवों के समान समझनी चाहिये किन्तु उसमें विशेषता यह है कि अकषाय समुद्घात (कषाय समुद्घात से रहित) वाले मनुष्यों से भी मान समुद्घात वाले मनुष्य असंख्यात गुणा कहने चाहिये क्योंकि मनुष्यों में मान की प्रचुरता पायी जाती है।

अकषाय समुद्घात में तो मात्र वीतरागी मनुष्यों का ही ग्रहण हुआ है। मान आदि कषायों में सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का भी ग्रहण होता है अतः अकषाय समुद्घात वालों से मान समुद्घात वाले मनुष्य असंख्यात गुणे बताये हैं। इसके बाद क्रमशः क्रोध, माया, लोभ समुद्घात में वर्तने वाले मनुष्य अधिक-अधिक होने से विशेषाधिक बताये गये हैं।

छाद्मस्थिक समुद्घात

कइ णं भंते! छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए, तेयग समुग्घाए, आहारग समुग्घाए।

कठिन शब्दार्थ - छाउमत्थिया - छाद्मस्थिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छाद्मस्थिक समुद्घात कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! छाद्मस्थिक समुद्घात छह कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात ५. तैजस समुद्घात और ६. आहारक समुद्घात।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - छद्मस्थ (जिसे केवल ज्ञान नहीं हुआ हो) को होने वाले समुद्घात छाद्मस्थिक समुद्घात कहलाते हैं। केवली समुद्घात को छोड़ कर शेष छहों समुद्घात छाद्मस्थिक समुद्घात कहलाते हैं।

चौबीस दण्डकों में छाद्मस्थिक समुद्घात

णेरइयाणं भंते! कइ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए।

असुरकुमाराणं पुच्छा?

गोयमा! पंच छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए, तेयग समुग्घाए।

एगिंदिय विगलिंदियाणं पुच्छा?

गोयमा! तिण्णि छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, णवरं वाउकाइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए, तेयग समुग्घाए।

मणूसाणं भंते! कइ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता?

गोयमा! छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता। तंजहा - वेयणा समुग्घाए, कसाय समुग्घाए, मारणंतिय समुग्घाए, वेउव्विय समुग्घाए, तेयग समुग्घाए, आहारग समुग्घाए ॥ ७०१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों में कितने छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों में चार छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात और ४. वैक्रिय समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों में कितने छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों में पांच छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात और ५. तैजस समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में कितने छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में तीन समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात और ३. मारणांतिक समुद्घात। किन्तु वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात कहे गये हैं जो इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात और ४. वैक्रिय समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में पांच छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं। यथा - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात और ५. तैजस समुद्घात।

प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों में कितने छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों में छह छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात ३. मारणांतिक समुद्घात ४. वैक्रिय समुद्घात ५. तैजस समुद्घात और ६. आहारक समुद्घात।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाये जाने वाले छाद्मस्थिक समुद्घात की प्ररूपणा की गयी है। नैरयिकों में तेजोलब्धि और आहारक लब्धि का अभाव होने से तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात को छोड़ शेष ४ छाद्मस्थिक समुद्घात होते हैं। असुरकुमार आदि सभी देवों में आहारक समुद्घात को छोड़ कर शेष पांच समुद्घात पाये जाते हैं क्योंकि उनमें तैजोलब्धि होने से तैजस समुद्घात तो संभव है किन्तु आहारक समुद्घात संभव नहीं है क्योंकि देवों में चौदह पूर्वों का ज्ञान नहीं होता है अतः उनकी आहारक लब्धि नहीं होती है। वायुकाय को छोड़ कर शेष एकेन्द्रिय जीवों और विकलेन्द्रियों में प्रथम के तीन-वेदना, कषाय और मारणांतिक समुद्घात होते हैं। वायुकायिक जीवों में ये तीन समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात सरित कुल चार समुद्घात पाये जाते हैं क्योंकि बादर पर्याप्त वायुकायिकों में वैक्रिय लब्धि संभव होने से उनमें वैक्रिय समुद्घात होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में आहारकलब्धि संभव नहीं होने से आहारक समुद्घात को छोड़ शेष पांच छाद्मस्थिक समुद्घात पाये जाते हैं। मनुष्यों में छहों छाद्मस्थिक समुद्घात होते हैं क्योंकि मनुष्यों में सर्वभाव संभव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदना समुद्घात आदि से समवहत जीवों के क्षेत्र, काल एवं क्रिया

जीवे णं भंते! वेयणा समुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ, तेहि णं भंते! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभ बाहल्लेणं णियमा छद्दिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे एवइए खेत्ते फुडे।

कठिन शब्दार्थ - णिच्छुभइ - निक्षिपति-बाहर निकालता है, **अप्फुण्णे** - आपूर्ण-व्याप्त हुआ, **फुडे** - स्पृष्ट हुआ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेदना समुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है। हे भगवन्! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण-परिपूर्ण (व्याप्त) होता है और कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! विस्तार (विष्कंभ) और जाडाई (बाहल्य) की अपेक्षा शरीर प्रमाण क्षेत्र को नियम से छहों दिशाओं से आपूर्ण (व्याप्त) करता है। इतना क्षेत्र आपूर्ण होता है और इतना ही क्षेत्र स्पृष्ट होता है।

से णं भंते! खेत्ते केवइकालस्स अफुण्णे केवइकालस्स फुडे?

गोयमा! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण वा एवइकालस्स अफुण्णे एवइकालस्स फुडे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण और कितने काल में स्पृष्ट हुआ?

उत्तर - हे गौतम! एक समय, दो समय अथवा तीन समय के विग्रह में जितना काल होता है इतने काल में आपूर्ण हुआ और इतने काल में स्पृष्ट होता है।

ते णं भंते! पोग्गला केवइकालस्स णिच्छुभइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव उन पुद्गलों को कितने काल में बाहर निकालता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव उन पुद्गलों को जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त में आत्म-प्रदेशों से बाहर निकालता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वेदना समुद्घात से समवहत जीव के क्षेत्र एवं काल की प्ररूपणा की गयी है। वेदना समुद्घात वाला जीव वेदना समुद्घात द्वारा जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है उनसे छहों दिशाओं में शरीर प्रमाण लम्बा चौड़ा मोटा क्षेत्र आपूरित (आने जाने रूप से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याप्त) एवं स्पृष्ट (अंतर्मुहूर्त तक वहाँ रहने रूप स्पर्श) होता है। ये पुद्गल शेष क्षेत्र को स्पर्श नहीं करते। एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से जीव उक्त क्षेत्र को आपूरित एवं स्पृष्ट करता है।

जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक वेदना समुद्घात द्वारा जीव पुद्गलों को बाहर निकालता है। आशय यह है कि जो पुद्गल जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक वेदना उत्पन्न करने में समर्थ हैं उनकी वेदना से दुःखी जीव शरीर में रहे हुए पुद्गलों को बाहर फैंकता है। बाहर फैंके गये पुद्गल आत्मप्रदेशों से अलग हो जाते हैं। यहाँ पर पुद्गलों को निकालने का आशय इस प्रकार हैं - तैजस कार्मण शरीर सहित आत्मप्रदेशों को निकालना एवं वेदना आदि समुद्घात रूप पुद्गलों को भी निकालना समझना चाहिये।

ते णं भंते! पोग्गला णिच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणंति वत्तेंति लेसेंति संघाएंति संघट्टेंति परियावेंति किलामेंति उद्दवेंति तेहिंतो णं भंते! से जीवे कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

ते णं भंते! जीवा ताओ जीवाओ कइ किरिया?

गोयमा! सिय तिकिरिया, सिय चउकिरिया, सिय पंचकिरिया।

से णं भंते! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कइ किरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पंचकिरिया वि॥ ७०२॥

कठिन शब्दार्थ - अभिहणंति - अभिहनन करते हैं - सामने हुए का घात करते हैं, **वत्तेंति** - वर्तयंति-गोल गोल चक्कर खिलाते हैं, **लेसेंति** - कुछ स्पर्श करते हैं, **संघाएंति** - परस्पर इकट्ठा करते हैं, **संघट्टेंति** - परस्पर मर्दन करते हैं, **परियावेंति** - पीड़ा करते हैं, **किलामेंति** - मूर्च्छित करते हैं, **उद्दवेंति** - उद्विग्न (भयभीत) करते हैं या निष्प्राण करते हैं, **परंपराघाएणं** - परंपरा से घात करने से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बाहर निकले हुए पुद्गल वहाँ स्थित जिन प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का हनन करते हैं, चक्कर खिलाते हैं, कुछ स्पर्श करते हैं, एकत्रित करते हैं विशेष रूप से एकत्रित करते हैं, परिताप-पीड़ा पहुँचाने हैं, मूर्च्छित करते हैं और जीवन से रहित करते हैं, हे भगवन्! इनसे वह जीव कितनी क्रिया वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! वे जीव वेदना समुद्घात वाले उस जीव के निमित्त से कितनी क्रिया वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! वह जीव और वे जीव, अन्य जीवों का परम्परा से घात करने से कितनी क्रिया वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे तीन क्रिया वाले भी होते हैं, चार क्रिया वाले भी होते हैं और पांच क्रिया वाले भी होते हैं।

विवेचन - वेदना समुद्घात करने वाला जीव वेदना समुद्घात द्वारा जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है उन पुद्गलों से **प्राण** - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीव, **भूत** - वनस्पतिकायिक जीव, **जीव** - पंचेन्द्रिय प्राणी तथा **सत्त्व** - पृथ्वीकायिक आदि जीवों का हनन आदि होने के कारण वेदना समुद्घात करने वाले जीव को कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियाएं लगती हैं अर्थात् जब वह किसी जीव को परिताप आदि नहीं पहुँचाता है तब तीन क्रिया वाला होता है,, जब किसी जीव को परिताप आदि पहुँचाता है तो चार क्रियाओं वाला होता है और जब किन्हीं जीवों का घात करता है तो पांच क्रियाओं वाला होता है।

उन जीवों को भी वेदना समुद्घात करने वाले जीव की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती है। जैसे एक पुरुष को बिच्छू सर्प आदि ने काट खाया और इस कारण पुरुष ने वेदना समुद्घात की तो बिच्छू सर्प आदि को भी कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। वेदना समुद्घात करने वाला जीव और वेदना समुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीव द्वारा परम्परा से अन्य जीवों की घात होती है उससे वेदना समुद्घात करने वाले जीव को तथा वेदना समुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट जीवों को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं।

णेरइए णं भंते! वेयणा समुग्घाएणं समोहए एवं जहेव जीवे, णवरं णेरइयाभिलावो, एवं णिरवसेसं जाव वेमाणिए। एवं कसायसमुग्घाओ वि भाणियव्वो।

भावार्थ - हे भगवन्! वेदना समुद्घात से समवहत हुआ नैरयिक इत्यादि जिस प्रकार जीव के विषय में कहा है उसी प्रकार कह देना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि नैरयिक के संबंध में पाठ कहना चाहिये। इसी प्रकार सम्पूर्ण वक्तव्यता वैमानिक तक कह देनी चाहिये। वेदना समुद्घात के समान कषाय समुद्घात के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - वेदना समुद्घात के विषय में जिस प्रकार समुच्चय जीव संबंधी वक्तव्यता कही है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी प्रकार नैरयिक के विषय में भी समझ लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहाँ 'जीव' के स्थान पर 'नैरयिक' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। नैरयिक के समान ही यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डकों के विषय में समझना चाहिये। कषाय समुद्घात संबंधी संपूर्ण वर्णन वेदना समुद्घात के समान कह देना चाहिये।

जीवे णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अप्फुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणांतिक समुद्घात के द्वारा समवहत हुआ जीव, समवहत होकर जिन पुद्गलों को आत्म प्रदेशों से बाहर निकालता है, उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र व्याप्त होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! विस्तार और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण क्षेत्र तथा लम्बाई की अपेक्षा जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग क्षेत्र तथा उत्कृष्ट असंख्यात योजन तक का क्षेत्र एक दिशा में व्याप्त होता है। इतना क्षेत्र एक दिशा में व्याप्त होता है और इतना क्षेत्र स्पृष्ट होता है।

से णं भंते! खेत्ते केवइकालस्स अप्फुण्णे केवइकालस्स फुडे?

गोयमा! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं एवइकालस्स अप्फुण्णे, एवइकालस्स फुडे, सेसं तं चेव जाव पंच किरिया वि।

एवं णेरइए वि, णवरं आयामेणं जहण्णेणं साइरेगं जोयणसहस्सं, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अप्फुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे, विग्गहेणं एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा, णवरं चउसमइएण वा ण भण्णइ, सेसं तं चेव जाव पंच किरिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह क्षेत्र कितने काल में पुद्गलों से आपूर्ण (व्याप्त) होता है तथा कितने काल में स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! वह क्षेत्र एक समय, दो समय, तीन समय और चार समय के विग्रह से इतने काल में उन पुद्गलों से व्याप्त होता है और इतने काल में स्पृष्ट होता है। शेष सारा वर्णन यावत् पांच क्रियाएं लगती है तक कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार नैरयिक के विषय में समझना चाहिये विशेषता यह है कि लम्बाई में जघन्य कुछ अधिक हजार योजन और उत्कृष्ट असंख्यात योजन एक ही दिशा में व्याप्त होता है और इतना ही स्पृष्ट होता है तथा एक समय, दो समय, तीन समय के विग्रह से कहना चाहिये किन्तु चार समय के विग्रह से नहीं कहना चाहिये। शेष सारा वर्णन यावत् पांच क्रियाएं लगती हैं तक कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मारणांतिक समुद्घात से समवहत जीव के क्षेत्र काल एवं क्रिया की प्ररूपणा की गयी है। मारणांतिक समुद्घात द्वारा जीव जो पुद्गल बाहर निकालता है वे पुद्गल मोटाई तथा चौडाई में शरीर प्रमाण और लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट असंख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र एक दिशा में आपूरित करते हैं एवं स्पृष्ट करते हैं। यह क्षेत्र एक, दो, तीन अथवा चार समय * की विग्रहगति से आपूरित एवं स्पृष्ट करता है। मारणांतिक समुद्घात में जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त का काल लगता है। मारणांतिक समुद्घात से बाहर निकले हुए पुद्गलों से प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का अभिहनन यावत् प्राण व्यपरोण तथा उससे तीन, चार, पांच क्रियाएं लगना आदि सभी वर्णन वेदना समुद्घात की तरह कह देना चाहिये।

नैरयिक मारणांतिक समुद्घात कर जो पुद्गल बाहर निकालता है वे पुद्गल मोटाई और चौड़ाई में शरीर प्रमाण एवं लम्बाई में जघन्य एक हजार योजन से कुछ अधिक उत्कृष्ट असंख्यात योजन का क्षेत्र एक दिशा में आपूरित एवं स्पृष्ट करते हैं। यह क्षेत्र एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रह से आपूरित एवं स्पृष्ट करते हैं।

असुरकुमारस्स जहा जीवपए, णवरं विग्गहो तिसमइओ जहा णेरइयस्स, सेसं तं चेव। जहा असुरकुमारे एवं जाव वेमाणिए, णवरं एगिंदिए जहा जीवे णिरवसेसं॥ ७०३॥

भावार्थ - असुरकुमार का वर्णन समुच्चय जीव पद के अनुसार समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि असुरकुमार का विग्रह नैरयिक के विग्रह के समान तीन समय का समझ लेना चाहिये। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् है। जिस प्रकार असुरकुमार के विषय में कहा उसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि एकेन्द्रिय का कथन समुच्चय जीव के समान कहना चाहिये।

विवेचन - असुरकुमारों से लेकर दूसरे देवलोक तक के देव पृथ्वी, पानी और वनस्पति में जीव रूप से उत्पन्न होते हैं उस समय मारणांतिक समुद्घात करे तो लम्बाई की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र को ही व्याप्त करता है। शेष वर्णन समुच्चय जीव की तरह कहना। अन्तर

---

* विग्रहगति पांच समय की भी संभव है किन्तु इस तरह से उत्पन्न होने वाले जीव नहीं मिलते हैं, इसलिए पांच समय की नहीं बतायी गयी है अथवा कदाचित् होने से उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतना है कि इनमें एक समय, दो समय और तीन समय की विग्रह गति कहना चाहिये। चार समय की विग्रह गति नहीं कहना चाहिये। एकेन्द्रिय का वर्णन भी समुच्चय जीव के समान ही समझ लेना चाहिये।

जीवे णं भंते! वेउव्विय समुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छूभइ तेहि णं भंते! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

गौयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं विदिसिं वा एवइए खेत्ते अप्फुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को बाहर निकालता है उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण (व्याप्त) होता है, कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! जितना शरीर का विस्तार और बाहल्य है उतना क्षेत्र तथा लम्बाई में जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट संख्यात योजन जितना क्षेत्र एक दिशा या विदिशा में व्याप्त होता है और उतना ही क्षेत्र स्पृष्ट होता है।

से णं भंते! केवइकालस्स अप्फुण्णे, केवइकालस्स फुडे?

गोयमा! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं एवइकालस्स अप्फुण्णे, एवइकालस्स फुडे, सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया वि। एवं णेरइए वि णवरं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं उक्कोसेणं संखिज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं। एवइए खेत्ते। केवइकालस्स०? तं चेव जहा जीवपए, एवं जहा णेरइयस्स तहा असुरकुमारस्स, णवरं एगदिसिं विदिसिं वा एवं जाव थणियकुमारस्स।

वाउकाइयस्स जहा जीवपए, णवरं एगदिसिं। पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स णिरवसेसं जहा णेरइयस्स। मणूस वाणमंतरजोइसिय वेमाणियस्स णिरवसेसं जहा असुरकुमारस्स॥ ७०४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! वह क्षेत्र एक समय, दो समय या तीन समय के विग्रह से आपूर्ण और स्पृष्ट होता है शेष सारा कथन पूर्ववत् यावत् पांच क्रियाएं लगती है तक कहना चाहिये। इसी प्रकार नैरयिकों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के विषय में भी समझना चाहिये, विशेषता यह है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट संख्यात योजन जितना क्षेत्र एक दिशा में आपूर्ण और स्पृष्ट होता है। यह क्षेत्र कितने काल में आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है? इसके उत्तर में जीवपद के समान कहना चाहिये। जैसे नैरयिक का वैक्रिय समुद्घात के विषय में कथन किया है उसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि एक दिशा में या विदिशा में उतना क्षेत्र आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमार के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

वायुकायिक के वैक्रिय समुद्घात का कथन समुच्चय जीव पद के समान समझना चाहिये विशेषता है कि एक दिशा में ही उक्त क्षेत्र आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच का संपूर्ण वर्णन नैरयिक के समान समझना चाहिये। मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक की सम्पूर्ण वक्तव्यता असुरकुमार के समान कहनी चाहिये।

विवेचन - नैरयिक और तिर्यंच पंचेन्द्रिय में वैक्रिय समुद्घात का वर्णन समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिये किन्तु इतना अंतर है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट संख्यात योजन तथा एक दिशा में कहना चाहिये।

असुरकुमार आदि भवनपतियों, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों तथा मनुष्य में भी समुच्चय जीव की तरह कहना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि लम्बाई में जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट संख्यात योजन तथा एक दिशा या विदिशा कहना चाहिये। वायुकाय समुच्चय जीव की तरह कहना किन्तु इसमें एक दिशा कहना चाहिये।

जीवे णं भंते! तेयग समुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे? एवं जहेव वेउव्विए समुग्घाए तहेव णवरं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, सेसं तं चेव, एवं जाव वेमणियस्स णवरं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स एगदिसिं एवइए खेत्ते अप्फुण्णे एवइए खेत्ते फुडे॥ ७०५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तैजस समुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को बाहर निकालता है हे भगवन्! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण और कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार वैक्रिय समुद्घात के विषय में कहा है - उसी प्रकार तैजस समुद्घात के विषय में भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि लम्बाई में जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग क्षेत्र आपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है। शेष सारा वर्णन वैक्रिय समुद्घात के समान है। इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार यावत् वैमानिक पर्यंत समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच एक ही दिशा में पूर्वोक्त क्षेत्र को आपूर्ण एवं स्पृष्ट करते हैं।

विवेचन - तैजस समुद्घात चारों प्रकार के देवों, तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में ही होता है शेष जीवों में नहीं। अत: समुच्चय जीव, पन्द्रह दण्डक (१३ देवता के, १ मनुष्य का व १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय) में तैजस समुद्घात वैक्रिय समुद्घात की तरह कह देना चाहिये किन्तु इतना अंतर है कि इसमें लम्बाई जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग कहना और तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक दिशा में कहना चाहिये।

जीवे णं भंते! आहारगसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अप्फुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते०। एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं एवइकालस्स अप्फुण्णे, एवइकालस्स फुडे।

ते णं भंते! पोग्गला केवइकालस्स णिच्छुब्भइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तस्स॥ ७०६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक समुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को अपने शरीर से बाहर निकालता है हे भगवन्! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र आपूर्ण और कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उत्तर - हे गौतम! विष्कंभ और बाहल्य से शरीर प्रमाण मात्र तथा लम्बाई में जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट संख्यात योजन क्षेत्र एक दिशा में इतना क्षेत्र एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति से इतने काल में आपूर्ण और स्पृष्ट होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! आहारक समुद्घात करने वाला जीव उन पुद्गलों को किनते समय में बाहर निकालता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त में और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त में उन पद्गलों को बाहर निकालता है।

विवेचन - आहारक समुद्घात मनुष्यों में ही हो सकता है और मनुष्यों में भी उन्हीं मुनियों को होता है जो चौदह पूर्वधारी और आहारक लब्धि के धारक हों। ऐसे मुनिराज जब आहारक समुद्घात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं तब विष्कंभ और बाहल्य की अपेक्षा शरीर प्रमाण तथा लम्बाई में जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट संख्यात योजन क्षेत्र को पुद्गलों से एक दिशा में आपूर्ण और स्पृष्ट करते हैं विदिशा में नहीं। विदिशा में जो आपूर्ण तथा स्पृष्ट होता है उसके लिए दूसरे प्रयत्न की आवश्यकता होती है किन्तु आहारक लब्धि के धारक मुनि इतने गंभीर होते हैं कि उन्हें वैसा कोई प्रयोजन नहीं होता अतः वे दूसरा प्रयत्न नहीं करते।

आहारक समुद्घात को प्राप्त कोई जीव काल करता है और विग्रह गति से उत्पन्न होता है तो विग्रहगति उत्कृष्ट तीन समय की होती है।

ते णं भंते! पोग्गला णिच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणंति जाव उद्दवेंति तेणं भंते! जीवे कइकिरिए?

गोयमा! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए।

ते णं भंते! जीवा ताओ जीवाओ कइ किरिया?

गोयमा! एवं चेव।

से णं भंते! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कइ किरिया?

गोयमा! तिकिरिया वि चउकिरिया वि पंच किरिया वि, एवं मणूसे वि॥ ७०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बाहर निकाले हुए वे पुद्गल जिन प्राण, भूत जीव और सत्त्वों का घात करते हैं या उन्हें प्राण रहित कर देते हैं हे भगवन्! उनसे जीव को कितनी क्रियाएं लगती हैं?

उत्तर - हे गौतम! वह समुद्घात करने वाला जीव कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच क्रियाओं वाला होता है।

प्रश्न - हे भगवन्! वे आहारक समुद्घात द्वारा बाहर निकाले हुए पुद्गलों से आपूर्ण स्पृष्ट हुए जीव आहारक समुद्घात करने वाले जीव के निमित्त से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार समझना चाहिये।

प्रश्न - हे भगवन्! आहारक समुद्घात करने वाला वह जीव तथा आहारक समुद्घात के पुद्गलों से स्पृष्ट वे जीव, अन्य जीवों का परम्परा से घात करने के कारण कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे तीन क्रियाओं वाले, चार क्रियाओं वाले अथवा पांच क्रियाओं वाले भी होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के आहारक समुद्घात के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आहारक समुद्घात से समवहत जीवादि को लगने वाली क्रियाओं की प्ररूपणा की गयी है जिसका सारा वर्णन वैक्रिय समुद्घात के समान समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलिसमुद्घात समवहत भावितात्मा अनगार के चरम निर्जरा पुद्गल

अणगारस्स णं भंते! भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरा पोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो! सव्वलोगं पि य णं ते फुसित्ताणं चिट्ठंति?

हंता गोयमा! अणगारस्स भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरा पोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो। सव्वलोगं पि य णं ते फुसित्ताणं चिट्ठंति॥ ७०८॥

कठिन शब्दार्थ - चरमा णिज्जरापोग्गला - केवलिसमुग्घात के चौथे समय के निर्जीर्ण पुद्गल।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवलि समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनागर के जो चरम निर्जरा पुद्गल हैं हे आयुष्मन् श्रमण! क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं? क्या वे समस्त लोक को स्पर्श करके रहते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! केवलि समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा पुद्गल होते हैं हे आयुष्मन् श्रमण। वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गये हैं तथा वे समस्त लोक को स्पर्श (व्याप्त) करके रहते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में केवलि समुद्घात से समवहत अनगार के चरम निर्जरा पुद्गल विषयक कथन किया गया है। वे पुद्गल (चरम-चतुर्थ समयवर्ती निर्जरा पुद्गल) अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और वे समग्र लोक को व्याप्त करके रहते हैं।

छउमत्थे णं भंते! मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं वा फासं जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ- 'छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणइ पासइ?'

गोयमा! अयण्णं जंबूद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूय संठाण संठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाण संठिए वट्टे पुक्खरकण्णिया संठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्ण चंद संठाण संठिए एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

देवे णं महिड्डिए जाव महासोक्खे एगं महं सविलेवणं गंधसमुग्गयं गहाय तं अवदालेइ, तं महं एगं सविलेवण गंधसमुग्गयं अवदालइत्ता इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबूद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाएहिं तिसतक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छिज्जा से णूणं गोयमा! से केवलकप्पे जंबूद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे?

हंता फुडे, छउमत्थे णं गोयमा! मणूसे तेसिं घाणपुग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणइ पासइ?

भगवं! णो इणट्ठे समट्ठे, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं गंधेणं गंधं रसेणं रसं फासेणं फासं जाणइ पासइ, एसुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो। सव्वलोगं पि य णं फुसित्ताणं चिट्ठंति॥ ७०९॥

कठिन शब्दार्थ - वण्णेणं - वर्ण ग्राहक चक्षुरिन्द्रिय से, **घाणेणं** - गंध ग्राहक घ्राणेन्द्रिय से, **रसेणं** - रस ग्राहक रसनेन्द्रिय से, **फासेणं** - स्पर्श ग्राहक स्पर्शनेन्द्रिय से, **सव्वब्भंतराए** - सबके बीच में, **सव्वखुड्डाए** - सबसे छोटे, **तेला पूयसंठाणसंठिए** - तेल के मालपूए के समान आकार का, **रहचक्कवालसंठाण संठिए** - रथ के चक्र के समान गोलाकार, **पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए** - कमल के कर्णिका के आकार का, **वट्टे** - वृत-गोल, **परिक्खेवेणं** - परिधि से युक्त, **केवलकप्पं** - सम्पूर्ण, **अच्छराणिवाएहिं** - चुटकियां बजा कर, **अणुपरियट्टित्ता** - चक्कर लगा कर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के चक्षु इन्द्रिय से वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गंध को, रसनेन्द्रिय से रस को अथवा स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श को जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के चक्षुइन्द्रिय से वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गंध को, रसनेन्द्रिय से रस को, स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श को किंचित् भी नहीं जानता देखता ?

उत्तर - हे गौतम! यह जंबूद्दीप नाम का द्वीप सभी द्वीप समुद्रों के बीच में है सबसे छोटा है, वृताकार (गोल) है, तेल के पूए के आकार का है, रथ के चक्र (पहिये) के आकार सा गोल है। लम्बाई और चौड़ाई में एक लाख योजन है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक सौ अट्ठाईस धनुष साढ़े तरह अंगुल से कुछ विशेषाधिक परिधि वाला है। एक महर्द्धिक यावत् महासुखी देव विलेपन सहित सुगंध की एक बड़ी डिबिया को खोलता है फिर विलेपन युक्त सुगंध की खुली हुई उस डिबिया को हाथ में लेकर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के तीन चुटकियों में इक्कीस बार चक्कर लगा कर वापस शीघ्र आ जाय तो हे गौतम! क्या उन गंध के पुद्गलों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हो जाता है? हाँ भगवन्! स्पृष्ट हो जाता है।

हे गौतम! क्या छद्मस्थ मनुष्य सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में स्पृष्ट उन घ्राणपुद्गलों के वर्ण को चक्षु से, गंध को नासिका से, रस को रसनेन्द्रिय से और स्पर्श को स्पर्शनेन्द्रिय से किंचित् भी जान देख सकता है?

हे भगवन्! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों के वर्ण को नेत्र से, गंध को नाक से, रस को रसनेन्द्रिय से और स्पर्श को स्पर्शनेन्द्रिय से किंचित् भी नहीं जान देख सकता। हे आयुष्मन् श्रमण! वे निर्जरा पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं तथा वे सम्पूर्ण लोक को स्पर्श कर के रहे हुए हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्पष्ट किया गया है कि छद्मस्थ मनुष्य केवलि समुद्घात से समवहत केवली भगवान् द्वारा निर्जीर्ण अंतिम पुद्गलों को जान-देख नहीं सकता क्योंकि वे अत्यंत सूक्ष्म हैं तथा सर्वत्र फैले हुए हैं। अर्थात् केवलि समुद्घात के समय शरीर से बाहर निकाले हुए चरम निर्जरा पुद्गलों से सारा लोक व्याप्त होता हैं जिसे केवली ही जान देख सकते हैं, छद्मस्थ मनुष्य नहीं।

यहाँ 'छद्मस्थ मनुष्य' का आशय इन्द्रियों से देखने वाला तथा सामान्य मति आदि ज्ञान वाला मनुष्य समझना चाहिये। विशिष्ट अवधिज्ञान वाले मनुष्य उन पुद्गलों को जान सकते हैं। विशेषावश्यक भाष्य में बताया है - '**संखिज्ज कम्मदव्वे लोगे थोवुणगं पलियं**।' अर्थात् लोक के बहुत संख्याता भागों जितने क्षेत्र को तथा देशोन पल्योपम जितने भूतकाल और भविष्यत् काल को जानने वाला अवधिज्ञानी कर्म द्रव्यों को भी जान सकता है।

केवली समुद्घात क्यों और क्यों नहीं?

कम्हा णं भंते! केवली समुग्घायं गच्छइ?

गोयमा! केवलिस्स चत्तारि कम्मंसा अक्खीणा अवेइया अणिज्जिणा भवंति, तंजहा - वेयणिज्जे, आउए, णामे, गोए। सव्वबहुप्पएसे से वेयणिज्जे कम्मे हवइ, सव्वत्थोवे आउए कम्मे हवइ, विसमं समं करेइ बंधणेहिं ठिईहि य विसमसमीकरणयाए बंधणेहिं ठिईहि य। एवं खलु केवली समोहणइ एवं खलु समुग्घायं गच्छइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वे वि णं भंते! केवली समोहणंति, सव्वे वि णं भंते! केवली समुग्घायं गच्छंति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

जस्साऽऽउएण तुल्लाइं बंधणेहिं ठिईहि य।

भवोवग्गहकम्माइं, समुग्घायं से ण गच्छइ॥ १॥

अगंतूणं समुग्घायं अणंता केवली जिणा।

जरमरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया॥ २॥ ७१०॥

कठिन शब्दार्थ - **कम्मंसा** - कर्मांश, **अक्खीणा** - क्षीण नहीं हुए हैं, **सव्वबहुप्पएसे** - सबसे अधिक प्रदेशों वाला, **विसमसमीकरणयाए** - विषम कर्मों का समीकरण (सम) करने के लिए, **भवोवग्गहकम्माइं** - भवोपग्राही कर्मों का, **जरमरणविप्पमुक्का** - जरा और मरण से सर्वथा रहित।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! किस प्रयोजन (कारण) से केवली समुद्घात करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! केवली के चार कर्मांश क्षीण नहीं हुए हैं, वेदन नहीं किये गये हैं अनिर्जीर्ण (निर्जरा को प्राप्त नहीं) हुए हैं वे चार कर्म इस प्रकार हैं - १. वेदनीय २. आयु ३. नाम और गोत्र। उनका वेदनीय कर्म सबसे अधिक प्रदेशों वाला होता है और सबसे कम प्रदेशों वाला आयु कर्म होता है। वे बंधनों और स्थितियों से विषम कर्म को सम करते हैं। वास्तव में बंधनों और स्थितियों से विषम कर्मों को सम करने के लिए ही केवली केवलि समुद्घात करते हैं तथा इसी प्रकार केवलि समुद्घात को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या सभी केवली भगवान्, केवली समुद्घात करते हैं? क्या सब केवलि समुद्घात को प्राप्त होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

गाथार्थ - जिसके भवोपग्राही कर्म बंधन एवं स्थिति से आयु कर्म के तुल्य (समान) होते हैं वह केवली केवलि समुद्घात नहीं करता॥ १॥

समुद्घात किये बिना ही अनन्त केवलज्ञानी जिनेन्द्र जरा और मरण से सर्वथा रहित हुए हैं तथा श्रेष्ठ सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में केवलि समुद्घात करने का कारण स्पष्ट किया गया है। केवली समुद्घात वे ही केवली करते हैं जिनकी आयु कम होती है और वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की स्थिति एवं प्रदेश अधिक होते हैं। उन सबको समान करने के लिए केवलि समुद्घात किया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिन केवलियों के आयुष्य कर्म की स्थिति छह महीने से कम शेष हो एवं वेदनीय, नाम, गोत्र इन तीन कर्मों की स्थिति अधिक शेष हो ऐसे केवलज्ञानी ही केवलि समुद्घात करते हैं। छह महीने एवं छह महीने से अधिक आयु शेष हो तथा तीन कर्मों की स्थिति अधिक भी हो वे केवली तथाविध प्रयत्न से चारों कर्मों को साथ में क्षय कर सकते हैं अतः वे केवली समुद्घात नहीं करते हैं।

सभी केवली केवलि समुद्घात नहीं करते हैं क्योंकि जिनके स्वभाव से ही चारों कर्म समान होते हैं वे एक साथ उनका क्षय करके समुद्घात किये बिना ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

आवर्जीकरण का समय

कइ समइए णं भंते! आउज्जीकरणे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पण्णत्ते।

केवलि समुद्घात की प्रक्रिया

कइ समइए णं भंते! केवलि समुग्घाए पण्णत्ते?

गोयमा! अट्ठ समइए पण्णत्ते। तंजहा - पढमे समए दंडं करेइ, बीए समए कवाडं करेइ, तइए समए मंथं करेइ, चउत्थ समए लोगं पूरेइ, पंचमे समए लोयं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ, सत्तमए समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ, दंडं पडिसाहरेत्ता तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ॥ ७११॥

कठिन शब्दार्थ - **आउज्जीकरणे** - आवर्जीकरण, **दंडं** - दण्ड, **कवाडं** - कपाट, **मंथं** - मंथान, **पूरेइ** - पूरता (व्याप्त करता) है, **पडिसाहरइ** - संहरण करता है (सिकोड़ता) **सरीरत्थे** - शरीरस्थ ।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! आवर्जीकरण कितने समय का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! आवर्जीकरण असंख्यात समय के अंतर्मुहूर्त्त का कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! केवलि समुद्घात कितने समय का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! केवलि समुद्घात आठ समय का कहा गया है। वह इस प्रकार है - प्रथम समय में दंड करता है दूसरे समय में कपाट करता है, तीसरे समय में मन्थान करता है, चौथे समय में लोक को पूरता है, पांचवें समय में लोक का संहरण करता है (सिकोड़ता है) छठे समय में मन्थान को सिकोड़ता है, सातवें समय में कपाट को सिकोड़ता है और आठवें समय में दण्ड को सिकोड़ता है और दण्ड को संकुचित करने के बाद शरीरस्थ हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में केवली समुद्घात की प्रक्रिया समझाई गयी है।

शंका - आवर्जीकरण किसे कहते हैं? क्या सभी केवली भगवान् आवर्जीकरण करते हैं?

समाधान - आवर्जीकरण का अर्थ अभिमुख करना है अर्थात् आत्मा को मोक्ष की ओर अभिमुख करना आवर्जीकरण है। केवली समुद्घात आदि के द्वारा यथायोग्य कर्मों की उदीरणा आदि करके उदयावलिका में प्रक्षेपण (डालने) रूप शुभ योगों के व्यापार के द्वारा स्वयं को मोक्ष के साथ अभियोजित करना (जोड़ना) आवर्जीकरण कहलाता है। सभी केवली भगवान् आवर्जीकरण अवश्य करते हैं। केवली समुद्घात वाले केवली समुद्घात करने के पहले आवर्जीकरण करते हैं इसलिए आवर्जीकरण का दूसरा नाम आवश्यक करण भी है। जो केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं वे पहले आवर्जीकरण करते हैं और उसके बाद केवली समुद्घात करते हैं। आवर्जीकरण का काल असंख्यात समय प्रमाण अंतर्मुहूर्त्त का है।

केवली समुद्घात की प्रक्रिया - केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं पहले समय में केवली भगवान् लम्बाई में ऊपर और नीचे लोक पर्यन्त, चौड़ाई में अपनी शरीर प्रमाण दण्ड करते हैं। दूसरे समय में कपाट, तीसरे समय में मन्थान करते हैं और चौथे समय में सारा लोक भर देते हैं। पांचवें समय में लोक का संहरण करते हैं, छठे समय में मन्थान का, सातवें समय में कपाट का और आठवें समय में दण्ड का संहरण करते हैं और तत्पश्चात् नवमें समय में केवली भगवान् शरीरस्थ हो जाते हैं।

आठवें समय में दण्ड संहरण करना और शरीरस्थ होना ये दो क्रियाएं होती हैं। नवमें समय में दण्ड संहरण की क्रिया नहीं होती है, संहरण रहित (पूर्ववत्) शरीरस्थ अवस्था हो जाती है।

केवली समुद्घात में कर्म प्रकृतियों के क्षपणा की प्रक्रिया - केवली भगवन् के वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु-इन चार कर्मों की ८५ प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं। नाम कर्म की ८० प्रकृतियां-शुभ नाम कर्म की ५२ और अशुभ नाम कर्म की २८, वेदनीय की दो - साता वेदनीय और असाता वेदनीय, गोत्र कर्म की दो-उच्च गोत्र और नीच गोत्र तथा आयु की एक-मनुष्यायु।

केवली समुद्घात के पहले समय में केवली भगवान् अशुभ नाम कर्म की २८ प्रकृतियां, असाता वेदनीय और नीच गोत्र इन ३० प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खण्ड करते हैं तथा स्थिति और अनुभाग का एक एक खण्ड बाकी रख कर शेष खण्डों का क्षय करते हैं। दूसरे समय में केवली भगवान् शुभ नाम कर्म की ५२ साता वेदनीय और उच्च गोत्र इन ५४ प्रकृतियों की स्थिति के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के अनन्त खंड करते हैं। स्थिति का खण्ड स्थिति में और अनुभाग का खण्ड अनुभाग में मिलाते हैं और एक खण्ड स्थिति का और एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खण्ड अनुभाग का शेष रख कर बाकी सभी खण्ड दूसरे समय में क्षय करते हैं। तीसरे समय में स्थिति के एक खण्ड के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के एक खण्ड के अनन्त खण्ड करते हैं तथा स्थिति और अनुभाग का एक एक खण्ड शेष रख कर बाकी सभी खण्ड तीसरे समय में क्षय कर देते हैं। इसी तरह चौथा समय और पांचवां समय कहना। छठे समय में केवली भगवान् स्थिति के एक खण्ड के असंख्यात खण्ड करते हैं और अनुभाग के एक खण्ड के भी असंख्यात खण्ड करते हैं। ये असंख्यात खण्ड उतने होते हैं जितने केवली भगवान् की आयु के समय बाकी होते हैं। छठे समय में एक खण्ड स्थिति का एक खण्ड अनुभाग का और एक समय आयु का क्षय करते हैं। इसी तरह सातवें समय में, आठवें समय में यावत् मुक्त हों तब तक एक खण्ड स्थिति का, एक खण्ड अनुभाग का और एक समय आयु का क्षय करते रहते हैं।

केवली द्वारा योग निरोध का क्रम

से णं भंते! तहा समुग्घायगए किं मणजोगं जुंजइ, वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ?

गोयमा! णो मणजोगं जुंजइ, णो वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ।

कायजोगं णं भंते! जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ओरालिय-मीसासरीरकायजोगं जुंजइ, किं वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ वेउव्वियमीसा-सरीरकायजोगं जुंजइ, आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ, आहारगमीसासरीरकायजोगं जुंजइ, किं कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ?

गोयमा! ओरालिय-सरीरकायजोगं पि जुंजइ ओरालियमीसासरीरकायजोगं पि जुंजइ, णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ णो वेउव्वियमीसासरीरकायजोगं जुंजइ, णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ णो आहारगमीसासरीरकायजोगं जुंजइ, कम्मगसरीरकायजोगं पि जुंजइ, पढमऽट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ, बिइय-छट्ठ-सत्तमेसु समएसु ओरालियमीसासरीरकायजोगं जुंजइ, तइय-चउत्थ-पंचमेसु समएसु कम्मगसरीर कायजोगं जुंजइ॥ ७१२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तथारूप से समुद्घात प्राप्त केवली क्या मनोयोग का व्यापार करता है, वचनयोग का व्यापार करता है या काययोग का व्यापार करता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर – हे गौतम! वह मनोयोग का व्यापार नहीं करता, वचन योग का व्यापार नहीं करता किन्तु काययोग का व्यापार करता है।

प्रश्न – हे भगवन्! काययोग का व्यापार करता हुआ क्या औदारिक काययोग का व्यापार करता है? औदारिक मिश्र शरीर काय योग का व्यापार करता है? क्या वैक्रिय शरीर काय योग का व्यापार करता है? क्या वैक्रिय मिश्र शरीर काय योग का व्यापार करता है? आहारक शरीरकाय योग का व्यापार करता है? आहारक मिश्र शरीरकाय योग का व्यापार करता है? क्या कार्मण शरीर काययोग का व्यापार करता है?

उत्तर – हे गौतम! औदारिक शरीर काययोग का भी व्यापार करता है औदारिक मिश्र शरीर काययोग का भी व्यापार करता है और कार्मण शरीर काय योग का भी व्यापार करता है किन्तु वैक्रिय शरीर काय योग का व्यापार नहीं करता, वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग का व्यापार नहीं करता, आहारक शरीर काय योग का व्यापार नहीं करता और आहारक मिश्र शरीर काय योग का व्यापार नहीं करता है। प्रथम और आठवें समय में औदारिक शरीर काय योग का व्यापार करता है। दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिक मिश्र शरीर काय योग का व्यापार करता है। तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मण शरीर काय योग का व्यापार करता है।

विवेचन – केवली समुद्घात में केवली भगवान् के मनयोग, वचनयोग का व्यापार नहीं होता केवल काययोग की प्रवृत्ति होती है। काय योग में भी औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काययोग इन तीन की प्रवृत्ति होती है शेष चार काय योग की प्रवृत्ति नहीं होती। पहले और आठवें समय में औदारिक काय योग प्रवर्तता है दूसरे छठे और सातवें समय * में औदारिक मिश्र काय योग प्रवर्तता है और तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मण काय योग प्रवर्तता है।

यहाँ केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पांचवें समय में कार्मण योग बताया गया है तथा इन तीन समयों में अनाहारकपना होता है ऐसा काय स्थिति पद में बताया है। छठे समय में औदारिक शरीर और कार्मण शरीर की सम्मिलित प्रवृत्ति होती है इसलिए उसे औदारिक मिश्र योग बताया है तथा आहारक भी बताया है इसी प्रकार सातवें समय में भी समझना चाहिये। इस आधार से केवली समुद्घात के तीन समयों (तीसरा, चौथा, पांचवां) में होने वाले कार्मण योग तथा सभी दण्डकों के अपर्याप्त अवस्था में विग्रह गति में होने वाले कार्मण योग को अनाहारक ही समझा जाता है।

---

* दूसरे और सातवें समय में औदारिक से औदारिक का मिश्र होता है तथा छठे समय में कार्मण व औदारिक का मिश्र होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योग निरोध के बाद सिद्ध होने तक की स्थिति

से णं भंते! तहा समुग्घायगए सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से णं तओ पडिणियत्तइ पडिणियत्तित्ता तओ पच्छा मणजोगं पि जुंजइ, वइजोगं पि जुंजइ, काययोगं पि जुंजइ। मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ, मोसमणजोगं जुंजइ, सच्चामोसमणजोगं जुंजइ असच्चामोसमणजोगं जुंजइ?

गोयमा! सच्चमणजोगं जुंजइ, णो मोसमणजोगं जुंजइ णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमण जोगं पि जुंजइ।

वइजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजइ, मोसवइजोगं जुंजइ, सच्चामोसवइजोगं जुंजइ असच्चामोसवइजोगं जुंजइ?

गोयमा! सच्चवइजोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ, णो सच्चामोसवइजोगं जुंजइ असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ।

कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा गच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्टेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पलंघेज्ज वा पाडिहारियं पीढ फलग सेज्जा संथारगं पच्चप्पिणेज्जा॥ ७१३॥

कठिन शब्दार्थ - पडिणियत्तइ - प्रतिनिवृत्त होता है, **उल्लंघेज्ज** - उल्लंघन करता है - लांघता है, **पलंघेज्ज** - प्रलंघन (अति विकट चरण न्यास) करता है, **पच्चप्पिणेज्जा** - वापस लौटाता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तथारूप समुद्घात को प्राप्त केवली क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है क्या वह सभी दुःखों का अंत कर देता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। पहले वह केवलि समुद्घात से प्रतिनिवृत्त होता है तत्पश्चात् वह मनोयोग का व्यापार करता है, वचन योग का व्यापार करता है और काययोग का भी व्यापार करता है।

प्रश्न - हे भगवन्! मनोयोग का व्यापार करता हुआ क्या सत्यमनोयोग का व्यापार करता है मृषामनोयोग का व्यापार करता है, सत्यामृषा मनोयोग का व्यापार करता है या असत्यामृषा मनोयोग का व्यापार करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सत्यमनोयोग का व्यापार करता है, मृषामनोयोग का व्यापार नहीं करता, सत्यामृषा मनोयोग का व्यापार नहीं करता किन्तु असत्यामृषा मनोयोग का व्यापार करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! वचन योग का व्यापार करता हुआ क्या सत्य वचन योग का व्यापार करता है, मृषा वचन योग का व्यापार करता है, सत्यमृषावचन योग का व्यापार करता है या असत्यामृषावचन योग का व्यापार करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सत्यवचन योग का व्यापार करता है, मृषा वचन योग का व्यापार नहीं करता, सत्यमृषा वचन योग का व्यापार नहीं करता किन्तु असत्यामृषा वचन योग का व्यापार करता है।

काययोग का व्यापार करता हुआ केवली आता है, जाता है, ठहरता है, बैठता है, लेटता है, लांघता है, विशेष रूप से लांघता है या वापस लौटाये जाने वाले पीठ, पाट (तख्ता) शय्या (वसतिस्थान) तथा संस्तारक वापस लौटाता है।

विवेचन - केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हुए सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं होते, निर्वाण को प्राप्त नहीं होते यावत् सभी दुःखों का अन्त नहीं करते किन्तु वे केवली समुद्घात से निवृत्त होते हैं और निवृत्त होकर मन योग, वचन योग और काययोग प्रवर्ताते हैं। मनयोग में सत्य मनोयोग और व्यवहार मनोयोग में प्रवर्ताते हैं। वचनयोग में सत्य वचन योग और व्यवहार वचन योग प्रवर्ताते हैं। काययोग (औदारिक काययोग) प्रवर्ताते हुए आते जाते हैं, उठते बैठते हैं सोते हैं यावत् प्रतिहारी (पडिहारी) वापिस लौटाने योग्य पाट पाटले शय्या संस्तारक को वापिस लौटाते हैं अर्थात् केवली समुद्घात के बाद अंतर्मुहूर्त्त तक-कुछ मिनटों तक योगों की प्रवृत्ति करने के बाद अयोगी बनते हैं।

से णं भंते! तहा सजोगी सिज्झइ जाव अंतं करेइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचिंदियपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखिज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ, तओ अणंतरं च णं बेइंदिस्स पज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखिज्जगुणपरिहीणं दोच्चं वइजोगं णिरुंभइ, तओ अणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखिज्जगुणपरिहीणं तच्चं कायजोगं णिरुंभइ, से णं एएणं उवाएणं - पढमं मणजोगं णिरुंभइ, मणजोगं णिरुंभित्ता वइजोगं णिरुंभइ, वइजोगं णिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभइ, कायजोगं णिरुंभित्ता जोगणिरोहं करेइ, जोगणिरोहं करेत्ता अजोगत्तं पाउणइ, अजोगत्तं पाउणित्ता ईसिं हस्स पंचक्खरुच्चारणद्धाए असंखिज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ, पुव्वरइयगुणसेढीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्धाए असंखिज्जाहिं गुणसेढीहिं असंखिज्जे कम्मखंधे खवयइ, खवइत्ता वेयणिज्जाऽऽउयणामगोत्ते इच्चेए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ, जुगवं खवेत्ता ओरालियतेयाकम्मगाइं सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्जुसेढीपडिवण्णो अफुसमाणगई एग समएणं अविग्गहेणं उड्ढं गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ० तत्थ सिद्धो भवइ॥

कठिन शब्दार्थ - असंखिज्जगुण परिहीणं - असंख्यातगुणहीन, **णिरुंभइ** - निरोध करता है, **उवाएणं** - उपाय से, **जोगणिरोहं** - योग निरोध, **अजोगयं** - अयोगत्व, **पाउणइ** - प्राप्त करता है, **हस्सपंचक्खरुच्चारणद्धाए** - पांच ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण में जितना समय लगे, **असंखिज्जसमइयं** - असंख्यात समयिक, **पुव्वरइयगुणसेढियं** - पूर्व रचित गुण श्रेणी को, **सेलेसिमद्धाए** - शैलेशी काल में, **खवयइ** - क्षय करता है, **उज्जुसेढीपडिवण्णो** - ऋजु श्रेणी को प्राप्त हो कर, **अफुसमाणगई** - अस्पर्शत गति से, **अविग्गहेणं** - अविग्रह से, **सागारोवउत्ते** - साकारोपयोग से युक्त होकर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह तथारूप सयोगी सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त कर देता है?

उत्तर - हे गौतम! वह ऐसा करने में समर्थ नहीं है। वह सर्वप्रथम संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जघन्य योग वाले के मनोयोग से भी नीचे (कम) असंख्यात गुणहीन मनोयोग का पहले निरोध करता है तदनन्तर बेइन्द्रिय पर्याप्तक जघन्य योग वाले के वचन योग से भी नीचे असंख्यातगुण हीन वचन योग का निरोध करता है। तत्पश्चात् अपर्याप्तक सूक्ष्म पनकजीव जो जघन्य योग वाला हो, उससे भी कम असंख्यातगुणहीन तीसरे काययोग का निरोध करता है, वह केवली इस उपाय से सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करता है। मनोयोग का निरोध कर वचन योग का निरोध करता है, वचन योग निरोध के पश्चात् काययोग का निरोध करता है काययोग निरोध करके वह सर्वथा योग निरोध कर देता है। योग निरोध करके वह अयोगत्व प्राप्त कर लेता है। अयोगत्व प्राप्त करने के पश्चात् ही पांच ह्रस्व अक्षरों (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण जितने काल में असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक होने वाले शैलेशीकरण को अंगीकार करता है। पूर्वरचित गुण श्रेणियों वाले कर्म को उस शैलेशीकाल में असंख्यात कर्म स्कन्धों का क्षय कर डालता है। क्षय करके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मों का एक साथ क्षय कर देता है। चार कर्मों का एक साथ क्षय करते ही औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर का सदा के लिए त्याग कर देता है, त्याग करके ऋजुश्रेणी को प्राप्त होकर अस्पर्शत गति से एक समय में अविग्रह (बिना मोड़ की गति) से ऊर्ध्व गमन कर साकारोपयोग (केवलज्ञान के उपयोग) से उपयुक्त होकर वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत्त हो जाता है सर्व दुःखों का अंत कर देता है और वह वहाँ (सिद्ध शिला में पहुँच कर) सिद्ध हो जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में केवली द्वारा योग निरोध का क्रम तथा योग निरोध करने के पश्चात् सिद्ध होने तक की स्थिति का निरूपण किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोयोग का पूर्ण निरोध करने के बाद ही वचन योग का निरोध करते ही ऐसी बात नहीं है। सभी योगों को एक साथ पतला करके (अत्यंत मंद करके) फिर उन्हें एक साथ नष्ट करते हैं। जैसे - वृक्ष को काटने के लिये पहले उस पूरे वृक्ष को छील कर पतला कर देते हैं। बाद में पूरा काट देते हैं वैसे ही यहां भी समझना चाहिए।

सिद्धों का स्वरूप

ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - 'ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति'?

गोयमा! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण वि कम्मबीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ- ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति त्ति।

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधण विमुक्का।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता॥ १॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छत्तीसइमं समुग्घायपयं समत्तं॥

॥ पण्णवणा सुत्तं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - जीवघणा - जीवघन-सघन आत्मप्रदेशों वाले, **दंसणणाणोवउत्ता** - दर्शनज्ञान उपयोग वाले, **णिट्ठियट्ठा** - निष्ठितार्थ, **णीरया** - नीरज, **णिरेयणा** - निष्कम्प, **वितिमिरा** - तिमिर से रहित, **सासयं** - शाश्वत, **अणागयद्धं कालं** - अनागत (भविष्य) काल में, **अग्गिदड्ढाणं** - अग्नि से जले हुए, **अंकुरुप्पत्ती** - अंकुर की उत्पत्ति, **जम्मुप्पत्ती** - जन्म से उत्पत्ति, **णिच्छिण्णसव्वदुक्खा** - सर्व दुःखों से पार हो चुके, **जाइजरामरणबंधणविमुक्का** - जन्म, जरा, मृत्यु और बंधन से विमुक्त।

भावार्थ - वे सिद्ध वहाँ अशरीरी, जीवघन-सघन आत्म प्रदेशों वाले, दर्शन और ज्ञान में उपयुक्त निष्ठितार्थ, नीरज (कर्म रज से रहित), निष्कम्प, अज्ञान तिमिर से रहित और पूर्व शुद्ध होते हैं तथा शाश्वत भविष्य काल में रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि वे सिद्ध वहां अशरीर, जीवघन, दर्शनज्ञानोपयुक्त, निष्ठितार्थ (कृतार्थ), नीरज, निष्कम्प, वितिमिर, शुद्ध तथा शाश्वत अनागत काल तक रहते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! जैसे अग्नि में जले हुए बीजों से फिर अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती वैसे ही सिद्धों के भी कर्म बीजों के जल जाने पर पुनः जन्म से उत्पत्ति नहीं होती। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सिद्ध अशरीरी, सघन, आत्म प्रदेश युक्त, दर्शन ज्ञानोपयुक्त, कृतार्थ, नीरज निष्कंप, वितिमिर, विशुद्ध तथा शाश्वत भविष्यकाल तक रहते हैं।

गाथा का अर्थ - सिद्ध भगवान् सभी दुःखों को पार हो चुके हैं। वे जन्म, जरा, मृत्यु और बन्धन से विमुक्त हो चुके हैं. सुख को प्राप्त अत्यंत सुखी वे सिद्ध शाश्वत और बाधा रहित हो कर रहते हैं।

विवेचन - केवली भगवान् मन, वचन और काया के योगों का निरोध करके अयोगी होते हैं। अयोगी अवस्था को प्राप्त होकर पांच ह्रस्व अक्षर उच्चारण करने में जितने समय लगते हैं, उतने असंख्यात समय प्रमाण अंतर्मुहूर्त्त काल की शैलेशी अवस्था को प्राप्त करते हैं एवं वेदनीय आदि चार अघाती कर्मों को भोगने हेतु पूर्व रचित गुण श्रेणी को अंगीकार करते हैं। शैलेशी अवस्था में असंख्यातगुण श्रेणियों से प्राप्त तीनों कर्मों के असंख्यात कर्म स्कन्धों की प्रदेश और विपाक से निर्जरा कर सिद्धत्व के प्रथम समय में चारों कर्मांशों को एक साथ क्षय करते हैं और औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर का सर्वथा सदा के लिए त्याग करते हैं। यहाँ जितने आकाश प्रदेशों को अवगाह कर रहे हुए हैं उतने ही आकाश प्रदेशों को ऊपर ऋजुश्रेणी से अवगाहते हुए अस्पृश्यमान गति से (दूसरे समय और प्रदेश का स्पर्श न करते हुए अर्थात् नहीं रुकते हुए) एक समय की अविग्रह गति से ऊपर सिद्धि गति में जाकर साकार उपयोग-केवलज्ञान से उपयुक्त सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं।

जैसे अग्नि से जले हुए बीजों से पुनः अंकुर उत्पन्न नहीं होते उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने से सिद्ध पुनः जन्म ग्रहण नहीं करते। सिद्धि गति में सिद्ध भगवान् सदा के लिए अशरीरी, जीवघन (घनीभूत जीव प्रदेश वाले) दर्शन ज्ञान से उपयुक्त, कृतकृत्य, नीरज, निष्कम्प, वितिमिर (कर्म रूप अंधकार से रहित) और विशुद्ध बने रहते हैं। सभी दुःखों से निस्तीर्ण, जन्म जरा और मरण के बन्धन से मुक्त, ये सिद्ध शाश्वत अव्याबाध सुख से सदैव सुखी रहते हैं।

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का छत्तीसवां समुद्घात पद समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र भाग-४ सम्पूर्ण ॥

प्रज्ञापना सूत्र समाप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	४०-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	४००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका-पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १-२	८०-००
२.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००

१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१६-१८.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२,३	४५-००
१९.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२०.	दशवैकालिक सूत्र	१५-००
२१.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
२९-३१.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	६०-००
३७.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०.	नवतत्वों का स्वरूप	१५-००
४१.	अगार-धर्म	१०-००
४२.	Saarth Saamaayik Sootra	अप्राप्य
४३.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४४.	तेतली-पुत्र	५०-००
४५.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४६.	जैन स्वाध्याय माला	२०-००
४७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१८-००
४९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	नाम	मूल्य
५१.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५२.	बड़ी साधु वंदना	१५-००
५३.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५५.	आनुपूर्वी	१-००
५६.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५७.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८.	जैन स्तुति	८-००
५९.	सिद्ध स्तुति	८-००
६०.	संसार तरणिका	१०-००
६१.	आलोचना पंचक	२-००
६२.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३.	भवनाशिनी भावना	२-००
६४.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६५.	सामायिक सूत्र	१-००
६६.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८.	जैन सिद्धांत परिचय	अप्राप्य
६९.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३.	तीर्थंकरों का लेखा	अप्राप्य
७४.	जीव-धड़ा	२-००
७५.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६.	लघुदण्डक	३-००
७७.	महादण्डक	१-००
७८.	तेतीस बोल	२-००
७९.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८०.	गति-आगति	१-००
८१.	कर्म-प्रकृति	१-००
८२.	समिति-गुप्ति	२-००
८३.	समकित के ६७ बोल	२-००
८४.	पच्चीस बोल	३-००
८५.	नव-तत्त्व	८-००
८६.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९०.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९२.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	५-००
९३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ५	२०-००
९४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ६	२०-००
९५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ७	२०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं,तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org